प्रथम संस्करण : 2017

द्वीपीय कृषि संदेश

संपादक

आनन्दमय कुंडू, राज कुमार गौतम, शिब नारायण दाम रॉय,
पूजा बोहरा, सुबेदार यादव, एस.के. ज़मीर अहमद

भा.कृ.अनु.प.-केन्द्रीय द्वीपीय कृषि अनुसंधान संस्थान
(आई.एस/आई.एस.ओ 9001:2008 प्रमाणित)
पोर्ट ब्लेयर - 744101
अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह

प्रथम संस्करण : 2017

द्वीपीय कृषि संदेश

संपादक

आनन्दमय कुंडू , राज कुमार गौतम, शिब नारायण दाम रॉय,
पूजा बोहरा, सुबेदार यादव, एस. के. ज़मीर अहमद

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय द्वीपीय कृषि अनुसंधान संस्थान
(आई.एस/आई.एस.ओ 9001:2008 प्रमाणित)
पोर्ट ब्लेयर–744101
अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह

द्वीपीय कृषि संदेश

प्रथम संस्करण : 2017

प्रकाशक
निदेशक, भा.कृ.अनु.प. - के.द्वी.कृ.अनु.सं., पोर्ट ब्लेयर

मुख्य संपादक
डॉ. आनन्दमय कुंडू

संपादक
डॉ. राज कुमार गौतम
डॉ. शिब नारायण दाम रॉय
डॉ. पूजा बोहरा
डॉ. सुबेदार यादव
डॉ. एस. के. ज़मीर अहमद

संकलन
श्रीमती सुलोचना

आवरण पृष्ठ
श्री जग जीवन राम

स्थिर चित्र
श्री के. अली अकबर

सहयोग
श्री श्याम सुंदर राव
श्रीमती अर्चना शर्मा
श्री जगदीश कुमार

ISBN : 978-93-85418-36-5

Citation
"द्वीपीय कृषि संदेश (2017). आनन्दमय कुंडू ,राज कुमार गौतम, शिब नारायण दाम रॉय,
पूजा बोहरा, सुबेदार यादव, एस.के.ज़मीर अहमद (संपादक), के.द्वी.कृ.अ.स., पोर्ट ब्लेयर, भारत, 206 पृष्ठ."

प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों एवं आंकड़ो आदि के लिए लेखक पूर्णरुपेण उत्तरदायी हैं। इस संकलन में प्रकाशित सामग्री की अन्यत्र प्रकाशन या प्रस्तुति के लिए संस्थान के निदेशक की अनुमति अनिवार्य है।

डॉ. आनन्दमय कुंडू
निदेशक (कार्यकारी)

Dr. Anandmoy Kundu
Director (Acting)

निदेशक (कार्यकारी)
भा.कृ.अनु.प.– केंद्रीय द्वीपीय कृषि अनुसंधान संस्थान
पोर्ट ब्लेयर

Director (Acting)
ICAR- Central Island Agricultural Research Institute
Port Blair

संदेश

बंगाल की खाड़ी में स्थित अंडमान एवं निकोबार द्वीप न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से विशिष्ट हैं, बल्कि राष्ट्रीय सीमा सुरक्षा एवं जैवविविधता के लिए भी महत्त्वपूर्ण हैं। भौमिक एवं समुद्रीय जैव विविधता के भंडार के कारण यह द्वीप समूह भारतवर्ष के 22 कृषि विविधता केन्द्रों में से एक हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से देश के विभिन्न प्रान्तों से लोगों का यहाँ आना और बसना इन द्वीपों को "लघु भारत" की संज्ञा देता है। हिंदी भाषा यहाँ के निवासियों में बोलचाल तथा सामूहिक तालमेल के लिए एक कारगर कड़ी हैं। यहाँ लगभग 46000 हैक्टेयर भूमि में कृषि की जाती है। भौगोलिक स्थिति के कारण द्वीपों के समुद्र तटीय क्षेत्रों में मात्स्यिकी आजिविका का मुख्य स्त्रोत है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के केंद्रीय द्वीपीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पोर्ट ब्लेयर ने पिछले लगभग चार दशकों के दौरान स्थानीय कृषि, बागानी, पशुपालन और मात्स्यिकी के क्षेत्रों में सराहनीय अनुसंधान किये हैं जिनके फलस्वरूप कई वैज्ञानिक तकनीकियों के अवलोकन और प्रचार–प्रसार से द्वीपों की कृषि उत्पादकता एवं आमदनी में वृद्धि हुई है। इसी प्रकार कुछ अन्य नवीन तकनीकियाँ इस दिशा में प्रगति के लिए सक्षम हैं।

"द्वीपीय कृषि संदेश" के इस संकलन में हमने संस्थान द्वारा विकसित एवं संस्तुत कृषि तकनीकियों एवं प्रणालियों का समावेश करने का प्रयत्न किया है जो कि हिंदी भाषा में प्रस्तुत की गई है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह प्रकाशन द्वीपों के किसानों की कृषि, बागानी, पशुपालन और मात्स्यिकी के क्षेत्रों की उत्पादकता एवं आर्थिक विकास को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगी।

यह पुस्तक पोर्ट ब्लेयर स्थित आकाशवाणी और दूरदर्शन से प्रसारित किसानों के लिए कार्यक्रम में भी सहायक होगी। इस प्रकाशन के लिए मैं संकलन एवं सम्पादक मंडल के सभी सदस्यों, वैज्ञानिकों, तकनीकी तथा सहायक–स्टाफ का उनके परोक्ष एवं अपरोक्ष योगदान के लिए हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

डॉ. आनन्दमय कुंडू
निदेशक (कार्यकारी)

भूमिका

भारत एक कृषि प्रधान देश है | अंडमान एवं निकोबार भारतवर्ष में बंगाल की खाड़ी में स्थित अनूठा एवं महत्त्वपूर्ण द्वीपसमूह है | यह द्वीपसमूह देश की न केवल प्रभुसत्ता तथा एकता के लिए महत्त्वपूर्ण है परन्तु कृषि जैव विविधता से भी भरपूर हैं | हालांकि द्वीपों का लगभग 85 प्रतिशत क्षेत्रफल वनों के अंतर्गत है, 15 प्रतिशत भूमि द्वीपों में कृषि योग्य है | जलवायु परिवर्तन का प्रभाव द्वीपों में सबसे अधिक अपेक्षित है |

एक सीमित क्षेत्र से द्वीपों की कृषि आवश्यकताओं को पूरा करना एक चुनौती है | परन्तु कृषि की आत्मनिर्भरता की ओर की यात्रा में द्वीपों के प्राकृतिक संसाधनों और जैवविविधता की सुरक्षा अत्यंत महत्त्वपूर्ण पहलू है | भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का द्वीपीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पोर्ट ब्लेयर द्वीपों के कृषि अनुसंधान और विकास के लिए समर्पित है | विगत 4 दशकों के अनुसंधान कार्यों के फलस्वरूप कृषि के विभिन्न क्षेत्रों में काफी प्रगति हुई और कई प्रौद्योगिकियों/ तकनीकियों का विकास और प्रचार एवं प्रसार हुआ है | यह तकनीकियाँ द्वीपों के किसानों और उद्यमियों की कृषि उत्पादकता एवं आय को बढ़ाने में सक्षम होंगी |

इस पुस्तक में हमने बागवानी, खेत फसलों, उन्नत प्रजातियों, प्राकृतिक संसाधन, मृदा विज्ञान, पशु विज्ञान एवं मात्स्यिकी विज्ञान से संबंधित उन्नत तकनीकियों का संकलन किया है | हमें पूर्ण विश्वास है कि "द्वीपीय कृषि संदेश" पुस्तक अंडमान एवं निकोबार के किसानों की कृषि पैदावार बढ़ोत्तरी में सहायक होगी | इस संकलन के मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन के लिए हम डॉ. आनन्दमय कुंडू , निदेशक, केंद्रीय द्वीपीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पोर्ट ब्लेयर का हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

हम संस्थान के सभी विभागाध्यक्षों और वैज्ञानिकों को उनके इस पुस्तक में लेखों एवं बहुमूल्य योगदान के लिए आभार व्यक्त करते हैं। इस संदर्भ में यह भी उल्लेख किया जाता है कि इस पुस्तक में संकलित अध्यायों के तकनीकी तथ्यों की प्रामाणिकता के लिए उनके लेखक स्वंय जिम्मेदार होंगे। अंत में हम उन सभी का हार्दिक धन्यवाद करते हैं जिन्होंने परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से इस पुस्तक के लिए सहायता एवं सहयोग प्रदान किया। हम पाठकों से पुस्तक के भविष्य में सुधार के लिए सुझावों का भी स्वागत करते हैं।

सम्पादक मंडल

विषय सूची

क्र. सं.	शीर्षक	पृ. सं.
बागानी– उत्पादन प्रौद्योगिकी		
1.	नारियल	1
2.	सुपारी	5
3.	काली मिर्च	8
4.	दालचीनी	11
5.	लौंग	13
6.	जायफल	15
7.	अदरक	17
8.	हल्दी	20
9.	आम–हल्दी या आम–अदरक	23
10.	आम	25
11.	कागज़ी नींबू	29
12.	पपीता	31
13.	अमरूद	34
14.	अननास	38
15.	चीकू	41
16.	कटहल	43
17.	केला	45
18.	शरीफा/ सीताफल	48
19.	बेल	50
20.	कैरमबोला/ कामरख	52
21.	रामबूटान	54
22.	मैंगोस्टीन	56
23.	ब्रेड फ्रूट	58
24.	ड्रैगन फ्रूट (पिताया फल)	60
25.	गोभी वर्गीय फसलें	62
26.	टमाटर	65
27.	लोबिया	68
28.	डॉलिकॉस बीन	70
29.	चौलाई/ अमरेन्थस	72
30.	बर्मा धनिया	74
31.	कद्दू वर्गीय सब्जियाँ	76
32.	भिन्डी	81
33.	पोई	83
34.	पालक	85
35.	मिर्च	87
36.	बैंगन	89
37.	कसावा	92
38.	शकरकंद	94

39.	बड़ा रतालू (ग्रेटर याम)	96
40.	जिमीकंद	98
41.	अरबी	100
42.	अंडमान निकोबार द्वीपों में फूलों की फसलों को उगाने के अवसर	102
43.	चमेली	104
44.	जरबेरा	106
45.	गुलाब	108
46.	कनेर	112
47.	सॉलिडैगो	113
48.	चाईना एस्टर	114
49.	क्रॉसेन्ड्रा	116
50.	ग्लैडियोलस	118
51.	गॉमफ्रेना	120
52.	हेलीकोनिया	121
53.	गेंदा	123
54.	ऑर्किड्स	125
55.	रजनीगंधा	128
56.	गुलदाउदी	129
57.	तुलसी	131
58.	पिप्पली	133
59.	कालमेघ	135
60.	मंडूकपर्णी	137
61.	घृतकुमारी (एलोवेरा)	139
62.	गिलोय (टिनोस्पोयरा)	141
63.	ब्राम्ही	143
64.	लेमन ग्रास	145
फसल सुधार एवं सुरक्षा		
65.	धान	149
66.	द्वीपों में मशरूम उत्पादन	152
67.	मूंग	154
68.	उर्द / उड़द	158
69.	अरहर	161
70.	फसल एवं भण्डारण में चूहा प्रबंधन	164
71.	मक्का	166
72.	जैव–नियंत्रण कारकों के माध्यम से पादप रोग प्रबंधन	170
पशु विज्ञान		
73.	मुर्गियों की नस्लें	173
74.	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में मवेशी पालन	176
75.	द्वीपों में बकरी पालन	179
76.	पशुधन एवं कुक्कुट पालन में जठरांत्रिय परजीविता प्रबंधन	183
77.	द्वीपीय स्थितियों में वैज्ञानिक शूकर पालन	184

मात्स्यिकी विज्ञान		
78.	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में मात्स्यिकी एवं जलजीव पालन	189
79.	अंतर्स्थलीय मत्स्य उत्पादन बढ़ाने के अवसर	197
प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन		
80.	द्वीपीय परितंत्र में आजीविका सुरक्षा के लिए समेकित पालन पद्धतियां	203
81.	मृदा स्वास्थ्य कार्ड	205

1.नारियल

वी.दामोदरन

संक्षिप्त परिचय और महत्व

नारियल का ताड़, विश्व में महत्त्वपूर्ण और उपयोगी ताड़ों में से एक है। यह भोजन, ईंधन और इमारती लकड़ी जैसे अनेक प्रकार के उत्पाद उपलब्ध कराता है। चूंकि इस पेड़ के प्रत्येक हिस्से का उपयोग किसी न किसी रूप में किया जा रहा है, इसलिए इसे 'स्वर्ग का पेड़' कहा जाता है – एक ऐसा पेड़ जो जीवन की सभी आवश्यकताओं को पूरा करता है। नारियल अंडमान और निकोबार द्वीप समूह की एक अनूठी रोपण फसल है और इन द्वीप समूहों के सामाजिक सांस्कृतिक तथ्यों से जुड़ी हुई है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के लगभग 50 प्रतिशत कृषि योग्य क्षेत्र में नारियल की खेती की जाती है और यह आबादी के एक बड़े हिस्से खासतौर पर निकोबारी जनजातियों की आजीविका का निर्वाहन करता है।

मृदा/भूमि का चयन

नारियल को विभिन्न प्रकार की जलवायुवीय स्थितियों एवं मृदाओं में उगाया जा सकता है। अच्छी पैदावार के लिए 27^0–32^0 सेल्सियस के बीच का औसत तापमान अनुकूल है। ताड़ को 1000 से 3000 मि.मी. की भारी और व्यापक बारिश की जरूरत होती है। जैविक तत्वों से समृद्ध, भली–भांति सूखी हुई मृदा इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। तट की बलुई और कृषि योग्य बनाई गई मृदा, जिसका पी.एच. 5.2 से 8.0 तक हो, भी उपयुक्त है।

प्रजातियां

ऊँची : अंडमान ऑर्डिनरी टॉल, कचाल टॉल और अंडमान जाइंट

बौनी : अंडमान ऑरेंज ड्वार्फ, ग्रीन ड्वार्फ, येलो ड्वार्फ, सी.ए.आर.आई.–अन्नपूर्णा, सी.ए.आर.आई.–

सूर्या, सी.ए.आर.आई.–ओंकार और सी.ए.आर.आई.–चंदन।

(i) सी.ए.आर.आई – अन्नपूर्णा

इस प्रजाति की खास विशेषता यह है कि अंडमान ऑर्डिनरी, जिसकी ऊँचाई 12.90 मी. तथा पैदावार 63.5 फल/वृक्ष/वर्ष है, की तुलना में यह बौनी (4.7 मी.) होती है और इसकी पैदावार 51.60 फल/वृक्ष/वर्ष है। इस प्रजाति के छोटे होने का अपना महत्त्व है क्योंकि फलों की कटाई की मजदूरी लागत कम होती है। वर्षा आधारित स्थितियों में भी उत्पादकता अधिक होती है। 7.5 मी. x 7.5 मी. के बजाय 6 मी. x 6 मी. के स्थान में भी इसे रोपा जा सकता है। यह अच्छी गुणवत्ता की गरी वाली बौनी प्रजाति है जिसमें गरी की मात्रा 245 ग्रा./नट होती है। यह द्वीपों के लिए और भारतीय उपमहाद्वीप के लिए आशाजनक प्रजाति है।

(ii) सी.ए.आर.आई–सूर्या

यह नारियल की बौनी प्रजाति है। गिरी फल गोलाकार होते हैं और पूरी तरह सूख जाने पर भी नहीं झड़ते हैं। इसका शीर्ष गोलाकार होता है। फल नारंगी रंग का होता है। वर्षाजल सिंचित स्थितियों में भी इसकी पैदावार काफी अधिक होती है। इसमें सूखे के प्रभाव को सहने की भी क्षमता है। यह इस ताड़ को द्वीपीय तथा तटीय परिस्थितियों के लिए एक अच्छी कृषि प्रजाति बना देती है। निकटस्थ पोरों, संपीडित शीर्ष और अपेक्षाकृत छोटे वृंतों वाले ये ताड़ बौने होते हैं। ये ताड़ अत्यंत आकर्षक होते हैं और साज सज्जा की दृष्टि से इसका अच्छा महत्व है। नरम गिरी और आलंकारिक महत्व की दृष्टि से इसे बढ़ावा दिया जा सकता है। इस गिरी की पैदावार प्रति ताड़ प्रति वर्ष 110–120 है।

(iii) सी.ए.आर.आई– ओंकार

ये निकटस्थ पोरों, संपीडित शीर्ष और छोटे वृंतों वाले बौने ताड़ हैं। शीर्ष अर्धगोलाकार होता है तथा शीर्ष पर 20 से कम पत्तियां होती हैं। फल का आकार नाशपाती के रूप में होता है जिसमें गूदे की मात्रा कम होती है। ये ताड़ अत्यंत आकर्षक होते हैं और आलंकारिक दृष्टि से इसका अच्छा महत्व है। इस गिरी की पैदावार प्रति ताड़ प्रति वर्ष 125–130 है।

(iv) सी.ए.आर.आई–चंदन

ये निकटस्थ पोरों, छोटे वृंतों और अर्द्धगोलाकार संपीडित शीर्ष वाले बौने ताड़ होते हैं। फल का आकार लंबा और चिकना होता है और इस पर कोई स्पष्ट उभार नहीं होते हैं। गिरी का आकार गोल होता है। ये ताड़ अत्यंत आकर्षक होते हैं और आलंकारिक दृष्टि से इनका अच्छा महत्त्व है। गिरी की पैदावार प्रति ताड़ प्रति वर्ष 100–110 है।

बीज नटों के चयन के मानदंड

पूरी तरह पकी हुई गिरी अर्थात, लगभग 12 माह पुरानी गिरी की कटाई की जानी चाहिए। चुनिंदा मातृ ताड़ों (मदर पॉम) से बीजों को जनवरी से मई के बीच एकत्र करें। भारी गुच्छे (12 गिरी से अधिक) से गिरी का चयन करें जो कि हल्के गुच्छे (6 गिरी से कम) की अपेक्षा अधिक तेजी से अंकुरित होंगी। कम से कम 680 ग्राम वजन वाली मध्यम आकार की छिल्कायुक्त गिरी, जो कि गोल आकृति की हो, का चयन करें। अनियमित आकृति और आकार की गिरी का चयन न करें। गुच्छे के बीच से गिरियों का चयन करें।

नर्सरी संवर्धन

सिंचाई के लिए जल स्रोत के समीप भली–भांति सूखी, खुरदुरी बनावट वाली मृदा का चयन करें। जहां नर्सरी लगाई जाती है, उस स्थान में पहली बार प्रति हेक्टेयर 120 कि.ग्रा. की दर से मृदा पर क्लोरडेन 5% डस्ट का छिड़काव किया जाए ताकि व्हाइट ग्रब्स और दीमक के ग्रसन की रोकथाम हो सके। कृत्रिम छांव वाले खुले स्थान में या ऐसे बागानों में नर्सरी लगाई जा सकती है जहां ऊँचे–ऊँचे ताड़ हैं और जमीन पूरी तरह से छांवदार नहीं है। बीजों को मई–जून के दौरान 20–25सें.मी. की दूरी पर लंबी और पतली क्यारियों में लंबवत या क्षैतिज रूप से रोपा जाना चाहिए। गर्मी के दौरान 3 या 4 दिन में एक बार नर्सरी की सिंचाई की जानी चाहिए।

नर्सरी में नवोद्–भिद पौध के चयन के मानदंड

- ऐसे नवोद्–भिद पौध, जो पहले अंकुरित हुए हैं यानि जो बुवाई के 3 महीने के भीतर हुए हैं, रोपण के लिए उपयुक्त हैं और ऐसे सभी अंकुरों को छांट देने की सलाह दी जाती है जो बुवाई के 5 माह बाद अंकुरित हुए हैं।
- एक वर्ष पुरानी नर्सरी से, कम से कम छ: पत्तियों और कॉलर पर 10 सें.मी. के घेरे वाले मजबूत पौधों का चयन करें।
- ऐसे पौधों का चयन करें जिनके अप्रस्फुटित पत्ते पहले ही पर्णक में विभक्त हो गए हों।
- कीटों और रोगों से मुक्त स्वस्थ पौध का चयन करें।

बागान की स्थापना

रोपण प्रणाली

अधिकांशत: नारियल पौधों को 7.5 मी. x 7.5 मी. की दूरी पर रोपण की वर्गाकार प्रणाली के अनुसार लगाया जाता है। इसमें प्रति हेक्टेयर 177 ताड़ लगाए जाते हैं। तथापि बौने नारियल के पौधों को 6.0 मी. x 6.0 मी. के अंतराल पर लगाया जा सकता है, जिससे अन्य लम्बी प्रजातियों की तुलना में प्रति हेक्टेयर 277 ताड़ लगाए जा सकते हैं। गर्मी के मौसम के दौरान 1.0 मी. x 1.0 मी. x 1.0 मी. आकार के गड्ढे खोदे जाते हैं और 60 सें.मी. की गहराई तक टॉप सॉयल, गाय का गोबर भरा जाता है और मानसून प्रारंभ होने के साथ ही गड्ढों में पौधे लगा दिए जाते हैं।

रोपण का समय

आमतौर पर मानसून शुरू होने के दौरान अर्थात जून से सितंबर तक रोपण कार्य किया जाता है। जल जमाव वाले क्षेत्रों में मानसून थम जाने के बाद रोपण का कार्य किया जा सकता है।

तरूण ताड़ों की देखभाल

प्रारम्भिक विकास अवधि के दौरान, ग्रीष्म ऋतु में पौध के लिए उचित तरीके से छांव की व्यवस्था की जाए। गर्मी के महिनों में 4 दिनों में एक बार 45 लीटर जल से सिंचाई की जाए। गड्ढों से खरपतवार की नियमित रूप से सफाई की जानी चाहिए।

पोषक प्रबंधन

मई–जून के दौरान लगाए गए नवोधभिद पौधों के लिए रोपण के पश्चात् तीसरे महीने (सितंबर–अक्टूबर) में उर्वरक की पहली खुराक दी जाती है। दूसरे वर्ष के दौरान, वयस्क ताड़ के लिए सिफारिश की गई मात्रा का एक तिहाई भाग मई–जून और सितंबर–अक्टूबर के दौरान दो बार में दिया जा सकता है। तीसरे वर्ष के दौरान इसे दो गुणा कर दिया जाता है। चौथे वर्ष के बाद से उर्वरकों की सामान्यत: सिफारिश की गई मात्रा दी जाती है। एक वयस्क ताड़ के लिए उपर्युक्त मात्रा में पोषक तत्वों की आपूर्ति हेतु लगभग 1 कि.ग्रा. यूरिया, अम्लीय मृदा में 1.5 कि.ग्रा. रॉक फॉस्फेट या अन्य मृदाओं में 2 कि.ग्रा. सुपर फॉस्फेट तथा 2 कि.ग्रा. पोटाश दो बार अलग–अलग देना होता है। ग्रीष्म ऋतु में बारिश होने पर ताड़ों के लगभग 1.8 मी. के दायरे में उर्वरक की सिफारिश की गई मात्रा का एक तिहाई भाग चारों ओर डाला जाता है और इसे मिला दिया जाता है। सितम्बर में 18 मी. व्यास और 25 सें.मी. गहराई का गोलाकार कुण्ड खोदा जाता है और प्रति ताड़ 50 कि.ग्रा. की दर से हरी पत्ती या कम्पोस्ट के साथ उर्वरक की सिफारिश की गई मात्रा का दो–तिहाई भाग डाला जाता है।

सिंचाई और मृदा नमी संरक्षण

गर्मी के मौसम में सिंचाई, नारियल के लिए अधिक अनुकूल है। भीषण गर्मी के दौरान 4 दिन में एक बार प्रति ताड़ 200 लीटर के हिसाब से कुण्डभ में पानी डालना ताड़ों के लिए लाभदायक हो सकता है। कुण्ड में प्रति ताड़ 25 कि.ग्रा. की दर से नारियल के छिलके के उत्तल भाग को ऊपर रखते हुए बेसिन की मल्चिंग कर देना मृदा नमी को संरक्षित रखने में सहायक होगा। मृदा क्षरण को रोकने, खरपतवार पर नियंत्रण रखने, मृदा के तापमान को नियमित रखने और मृदा में जैविक तत्वों की आपूर्ति की दृष्टि से नारियल के बागानों में उष्णकटिबंधीय कुडजू इत्यादि का इस्तेमाल करते हुए फसल को ढकना उपयोगी पाया गया है।

पौध संरक्षण उपाय

नाशीजीव

(*i*) *राइनोसीरस बीटल*

यह नारियल ताड़ का सबसे खतरनाक नाशीजीव है। ये बीटल सड़े हुए जैविक तत्वों और कम्पोस्ट आदि में पनपते हैं। वयस्क कीट अनखुली पत्तियों और स्पेथों में छेद कर देते हैं। प्रभावित पत्तियाँ जब पूरी तरह खुलती हैं तो उनमें आड़े तिरछे कटे हुए निशान दिखते हैं। गंभीर स्थिति में पत्तियाँ खुलने पर ये टूट जाती हैं। इसका प्रबंधन निम्न है।

- सड़े हुए जैविक कचरे का उचित निपटान करके नारियल के बागानों में साफ–सफाई बनाए रखना राइनोसीरस बीटल को दूर रखने का एक महत्त्वपूर्ण उपाय है।
- ताड़ के विकास बिंदु को किसी तरह का नुकसान पहुंचाए बिना हुक से बीटल को निकाल कर और छिद्र को 3 ग्रा. मैंकोजेब + 1 कि.ग्रा. महीन बालू के अनुपात में कवकनाशी और बालू के मिश्रण से भरकर इस पर मशीनी तरीके से नियंत्रण संभव हो सकता है।
- मई, सितम्बर और दिसम्बर के दौरान प्रति ताड़ सेवीडोल 8 जी (25 ग्रा.) व महीन बालू (200 ग्रा.) के मिश्रण से या 45 दिनों के अंतराल पर 12 ग्रा. नेफ्थलीन की गोलियों (4 सं.) से सबसे भीतरी 2–3 पत्ती के एक्सिलों को भरकर तरूण ताड़ों को सुरक्षित रखना।
- प्रजनन स्थलों पर समय–समय पर 0.01 प्रतिशत कार्बारिल 50 डब्यू.पी. का छिड़काव करना।
- प्रति हैक्टेयर 10–15 बीटल की दर से *बैकूलोवायरस* से संक्रमित राइनोसीरस बीटल छोड़कर बागान में जैविक नियंत्रण।

(*ii*) *स्केल इन्सेक्ट्स कीट और मीली बग*

पत्तियों की निचली सतह पर और गिरियों पर भी स्केल पाए जाते हैं। जब संक्रमण तीव्र हो जाता है तो पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं, जिससे आगे चलकर ताड़ कमजोर हो जाता है। डाइमिथोएट (0.05%) का छिड़काव करके इस पर नियंत्रण पाया जा सकता है। गर्मी के महीनों में मीली बग्स बंद पत्तों, स्पेथों और गुच्छों को नुकसान पहुंचाती हैं। प्रभावित पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और अंत में सूख जाती हैं। 0.1 प्रतिशत फेंथियोन का दो बार छिड़काव करने से मीली बग्स पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

(*iii*) *स्तनपायी नाशीजीव*

चूहे नरम गिरियों को क्षति पहुंचाते हैं जिससे पैदावार को भारी नुकसान होता है। विशेष सूराखों वाली झड़ी हुई नरम गिरियां प्रभावित ताड़ों के तल पर देखी जा सकती हैं। मशीनी अवरोध (बैंड), जहरीली टिकियां और चूहेदानी लगाकर चूहों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। सतही स्तर से 2 मी. की ऊँचाई पर ताड़ के तने में चारों ओर 40 से.मी. चौड़ा जी.आई. शीट बैंड बांध देने से यह चूहों के लिए मशीनी अवरोध का कार्य करेगा। वानस्पतिक तेल से मिश्रित अनाज में जिंक फॉस्फाइड या ब्रोमोडियोलोन मिलाकर चूहों को यह जहरीला चारा डाल कर उन्हें मारा जा सकता है।

रोग एवं रोग नियंत्रण उपाय

अनेक प्रकार के रोग नारियल के ताड़ को प्रभावित करते हैं, इनमें से कुछ घातक होते हैं, तो कुछ ताड़ की क्षमता को धीरे–धीरे कम करने लगते हैं जिससे पैदावार में भारी कमी आ जाती है।

(*i*) *कली सड़न*

कली सड़न कवकीय रोगाणु द्वारा उत्पन्न एक घातक रोग है। यद्यपि यह सभी अवस्था के ताड़ों को प्रभावित करता है किंतु तरूण ताड़ इस रोग के प्रति ज्यादा संवेदनशील होते हैं। बाह्य तौर पर सबसे पहला लक्षण जो दिखता है वह है – स्पिंडल के चारों ओर एक या दो नई पत्तियों का पीला पड़ना। स्पिंडल मुरझा जाते हैं और नीचे लटक जाते हैं। स्पिंडल की तली सड़ जाती है और हल्के से खींचने पर अलग हो सकती है। इससे दुर्गंध निकलती है। भीतरी पत्तियाँ भी एक–एक करके पेड़ से गिरने लगती हैं और तने के शीर्ष पर निचले चक्र में केवल पुरानी / परिपक्व पत्तियाँ बची रह जाती हैं और अंत में ताड़ निर्जीव हो जाते हैं। यदि शुरूआती अवस्था में इस पर रोक नहीं लगायी जाए तो यह रोग घातक हो जाता है। केंद्रीय कलिका के मरने के बाद बाहरी पत्तियाँ और गुच्छे कई महीनों तक साबुत पड़े रह सकते हैं। मानसून के दौरान जब वायुमंडल का तापमान कम रहता है और आर्द्रता अधिक रहती है तब यह रोग काफी तेजी से फैलता है।

रोगों की प्रारंभिक अवस्था में नियंत्रण करने पर ही प्रभावीकारी नियंत्रण सम्भव है। यदि रोग का पता तब चलता है जब मुख्यत: टहनी मुरझाने लगे, तो आस–पास की दो पत्तियों के साथ–साथ संक्रमित स्पिंडल को काटकर संक्रमित उत्तक को भली–भांति हटा दिया जाना चाहिए और इस पर 10 प्रतिशत बोर्डो पेस्ट का लेप लगाया जाना चाहिए। शोधित स्थान पर उस समय तक के लिए पॉलिथीन शीट का सुरक्षा कवर रखना चाहिए जब तक कि दूसरी सामान्य टहनी न उग आए। बुरी तरह प्रभावित पेड़, जो पुन: ठीक नहीं हो सकते, को काटकर जला दिया जाना चाहिए। रोगनिरोधी उपाय के रूप में, रोगग्रस्त ताड़ के आस–पास के सभी स्वस्थ ताड़ों पर 1 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का छिड़काव किया जाना चाहिए। वर्षा के मौसम में शीर्ष के दो या तीन पत्तियों के एक्सिल में 2–3 ग्रा. डाइथेन एम–45 या इंडोफिल एम–45 वाला छिद्रदार पाउच रख देना भी इस रोग की रोकथाम में लाभकारी होता है।

(*ii*) *पत्ती मुरझान या पत्ती पर भूरे धब्बे*

बाहरी चक्र की परिपक्व पत्तियों में इस रोग के लक्षण देखे जाते हैं। भूरी पट्टियों से घिरे छोटे–छोटे पीले धब्बे पत्ती की सतह पर दिखते हैं, जो कि बाद में भूरे सफेद हो जाते हैं। ये धब्बे अनियमितकार झुलसे धब्बों में बदल जाते हैं। सामान्यत: गंभीर संक्रमण की स्थिति में पत्ती के फलक पूरी तरह सूखकर मुरझा जाते हैं। पुरानी प्रभावित पत्तियों को हटा देने और नए पत्तों पर 1 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करने से रोग को फैलने से रोका जा सकेगा।

(*iii*) *फलों का सड़ना या गिरी का नीचे गिर जाना*

फल का सड़ना या गिरी का गिरना एक प्रमुख रोग है जो कवकीय रोगाणु से उत्पन्न होता है, जो पौधे को तो नष्ट नहीं करता बल्कि पैदावार को काफी कम कर देता है। वर्षा ऋतु के दौरान अपरिपक्व गिरियों के सड़ने से इस रोग के लक्षण प्रकट होते हैं जिसके परिणाम स्वरूप गिरी नीचे गिर जाती है। 2 से 5 माह की गिरी प्रभावित हो सकती है। कच्चे फलों या वृन्त के समीप बटनों पर जल से लथपथ घाव नजर आने लगते हैं जो कि आगे चलकर भीतरी उत्तकों को नष्ट कर देते हैं। वर्षा और काफी अधिक आर्द्रता होने पर यह रोग व्यापक हो जाता है। मानसून से पूर्व 1 प्रतिशत या बोर्डो मिश्रण 0.5 प्रतिशत फाइटोलेन का छिड़काव और इसके 40 दिनों के अंतराल पर एक या दो बार छिड़काव इस रोग को नियंत्रित करता है। नीचे गिरे हुए फलों को एकत्रित कर जला दिया जाना चाहिए।

कटाई और उपज

नारियल के फल आमतौर पर पुष्पण खुलने के बाद लगभग 11 से 12 महीने में पक जाते हैं। गरी और तेल की अधिकतम पैदावार के लिए केवल पूर्णत: परिपक्व गिरियों की कटाई की जानी चाहिए। 10 और 9 महीने पुरानी गिरियों की कटाई से गरियों की मात्रा में क्रमश: 6 प्रतिशत से 33 प्रतिशत की गिरावट आ जाती है। जब गरी 12 महीने पुरानी होती है तब उनसे अधिक मात्रा में तेल निकलता है। उपयुक्त प्रबंधन की स्थितियों में ऊंची प्रजाति के पौधों में रोपण के बाद लगभग 5 वर्ष में फूल आना शुरू हो जाता है जबकि बौनी प्रजाति के पौधों में तीसरे या चौथे वर्ष में फूल आना शुरू हो जाता है। दोनों मामलों मे, पुष्पण शुरू होने के लगभग 2 वर्ष के बाद ही पूरी तरह फल लगते हैं। फिर लगातार फसल प्राप्त करने की अवधि 60 से 65 वर्ष या और अधिक समय तक चलती रहेगी बशर्ते कि मृदा की स्थिति को संतोषप्रद स्तर पर बहाल रखा जाए।

2.सुपारी

वी.दामोदरन

सुपारी को कच्ची गरी के रूप में या प्रसंस्करण के बाद चबाया जाता है। औषधीय गुण होने के कारण त्वचा रोग खांसी, मिर्गी, कृमि, रक्ताल्पता और मोटापे के उपचार में इसका उपयोग किया जाता है। अनेक धार्मिक समारोहों में सुपारी को काफी पवित्र माना जाता है। सुपारी में मौजूद टैनिन का उपयोग कपड़ों, रस्सियों को रंगने तथा चर्म शोधन के लिए किया जाता है। इसकी भूसी से मजबूत प्लास्टिक, हार्ड बोर्ड और क्राफ्ट पेपर तैयार किए जा सकते हैं। इस्तेमाल के बाद फेंके जाने योग्य कप–प्लेट तैयार करने, प्लाईबोर्ड, सजावटी बैनर के पैनल और पिक्चर माउंड बनाने के लिए लीफ शीथ एक अच्छी सामग्री है।

मृदा

बजरीयुक्त लैटेराइट मिट्टी में सुपारी के सबसे विशाल क्षेत्र पाए जाते हैं। चिपचिपी मिट्टी, बलुई, खारा और कैल्सियम युक्त मृदा इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं है।

प्रजातियां

मंगला, समृद्धि, कालिकट–35 और सी.अ.आर. सलैक्शन–1 द्वीपीय स्थितियों के लिए उपयुक्त प्रजातियाँ हैं।

प्रवर्धन

सुपारी केवल बीजों से ही उगती है। मातृ पौधे में पहली बार फसल आने के 5 वर्ष के पश्चात् अधिक फसल देने वाले चुनिंदा मातृ पौधों से बीजों को एकत्रित किया जाता है। उच्च पैदावार के अलावा, पहली फसल का आने का समय और फल लगने का अधिकतम प्रतिशत (50% से अधिक) ऐसी महत्त्वपूर्ण विशेषताएं हैं, जिन पर चयन की दृष्टि से ध्यान दिया जाता है। कम से कम 35 ग्राम वजन वाले केवल पूरी तरह पके फलों का ही चयन किया जाता है।

संपूर्ण फल को 5–6 सें.मी. की दूरी पर बालू की क्यारियों में बो दिया जाता है। उनके डंठल के छोर को ऊपर की ओर रखा जाता है। फल को ढकने के लिए बालू को फैला दिया जाता है। नर्सरी में प्रतिदिन सिंचाई की जानी चाहिए। लगभग 40 दिनों में अंकुरण प्रारम्भ हो जाता है। जब इनमें 2–3 पत्तियां आ जाएँ, जिसमें प्राय: 3–4 माह का समय लगता है, पौध को परवर्ती नर्सरी की क्यारियों में 35–45 सें.मी. की दूरी पर प्रतिरोपित कर दिया जाता है। क्यारियां किसी भी लम्बाई की हो सकती हैं किंतु 15 सें.मी. चौड़ी और 15 सें.मी. ऊँची क्यारियाँ सुविधाजनक होती हैं। परवर्ती नर्सरी में भली–भांति अपघटित पशु खाद (5 टन/हैक्टे.) की प्रारंभिक मात्रा डाली जा सकती है। नर्सरी में आंशिक रूप से छांव की व्यवस्था की जानी चाहिए। गरमी के मौसम में बहुत अधिक सिंचाई तथा मानसून के दौरान उचित जलनिकासी अनिवार्य है। समय–समय पर निराई और मल्चिंग की जानी चाहिए।

परवर्ती नर्सरी में अंकुरों को प्रतिरोपित करने की बजाए, इन्हें 25 सें.मी.x 15 सें.मी. आकार के पॉलिथिन बैग में भी उगाया जा सकता है। मिट्टी सुखाकार चूर्ण बनाए गए गोबर की खाद और बालू को 7:3:2 के अनुपात में गमला मिश्रण बनाकर इसे इन बैगों में भरा जाना चाहिए।

खेती रोपण

चूंकि सुपारी के ताड़ अत्यंत कोमल होते हैं, इसलिए टीलों या लंबे–लंबे सदाबहार वृक्षों के माध्यम से खेत को दक्षिणी पश्चिमी धूप से बचाना होगा। खेत में सिंचाई की सुविधा होनी चाहिए। जहां जल स्तर अधिक है वहां जल निकासी की संभाव्यता दूसरी महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। 2.7 मी. x 2.7 मी. की दूरी पर्याप्त है। उचित दूरी में किया गया पौधरोपण तने को चिलचिलाती धूप से बचाने में मदद करता है। पौधरोपण की वर्गाकार प्रणाली में, दक्षिणोत्तर पंक्ति पश्चिमी दिशा की ओर 35 डिग्री के कोण पर झुकी होनी चाहिए।

रोपण के लिए लगभग 12–18 माह पुराने पौधों का उपयोग किया जाता है। प्रतिरोपण के लिए चुनिंदा पौधों को मिट्टी के साथ निकाल लिया जाता है। यदि उन्हें प्लास्टिक बैग में उगाया जाता है तो इन्हें बगैर किसी क्षति के किसी भी स्थान तक सीधे पहुंचाया जा सकता है। मई–जून या मानसून का आरम्भिक समय पौधरोपण के लिए सबसे अच्छा समय होता है। 90x90x90 सें. मी आकार के गड्ढे खोदे जाते हैं और तल से लेकर 50–60 सें.मी. की ऊँचाई तक इसमें मिट्टी, गोबर की खाद और बालू का मिश्रण भर दिया जाता है। पौध को गड्ढे के बीच में रोपा जाता है और मिट्टी से भर कर भली–भांति दबा दिया जाता है।

खाद डालना

15–20 सें.मी. गहरे और 1 मी. चौड़े बेसिनों में ताड़ों के चारों ओर खाद डाली जाती है। उर्वरकों के लिए सिफारिश की गई मात्रा प्रति ताड़ प्रति वर्ष 100:40:140 ग्रा. है। तथापि जैविक खेती के अंतर्गत समान मात्रा में कम्पोस्ट के माध्यम से पोषक तत्वों की सिफारिश की गई मात्रा की पूर्ति की जा सकती है।

मई–जून और सितंबर–अक्टूबर के दौरान दो बार में उर्वरकों का उपयोग किया जाता है। प्रत्येक ताड़ के तल पर इन्हें डाला जाता है और मिला दिया जाता है। हरी पत्तियाँ, कम्पोस्ट या गोबर की खाद के रूप में 25 कि.ग्रा. जैविक खाद के अनुप्रयोग की सलाह दी गई है। इन्हें एकल खुराक में डाला जा सकता है। अम्लीय मिट्टी में चूने का उपयोग आवश्यक है।

बाद की सावधानियाँ

पर्याप्त जलनिकासी सुनिश्चित करने के लिए, ताड़ों की हर दो कतारों के लिए एक जलनिकासी नाली की व्यवस्था की जानी चाहिए। जिस गहराई तक पौधे को रोपा गया है उससे कम से कम 10–15 सें.मी. गहरी नालियां बनाई जानी चाहिए। प्रत्येक वर्ष मानसून प्रारंभ होने पर नालियों की सफाई की जाए। जिन गड्ढों में पौधे लगाए गए है, उनमें जलनिकासी की व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि जल बहकर नालियों तक पहुंच सके।

शुरूआती वर्षों के दौरान केले के पेड़ लगाकर छोटे–छोटे पौधों को सबसे अच्छी तरह सुरक्षित रखा जाता है। जब तक सुपारी के ताड़ों से आय प्राप्त नहीं होती तब तक इन केले के पेड़ों से किसानों को कुछ आय मिलती रहती है। चिलचिलाती धूप से तने को बचाना महत्वपूर्ण है क्योंकि क्षतिग्रस्ति हिस्से दोबारा नहीं उग सकते हैं। अक्टूबर के प्रारंभ से ही, तने के उस हिस्से को, जिन पर धूप पड़ती है, सुपारी की सूखी पत्तियों या सफेद अपारदर्शी पोलिथीन फिल्म से ढक दिया जाए। सुपारी के बागानों के बीच की खाली जगहों की मल्चिंग दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है। इससे भारी वर्षा के दौरान मृदा क्षरण रूकता है और मिट्टी को ह्यूमस मिलता रहता है।

सिंचाई

द्वीपों में वर्षाजल सिंचित फसल के रूप में सुपारी को उगाया जाता है। चूंकि सिंचाई से इसकी पैदावार बढ़ती है, इसलिए सूखे की लंबी अवधि के दौरान इसमें सिंचाई करते रहने की सलाह दी जाती है। नवम्बर–दिसंबर के दौरान 7 दिनों में, जनवरी–फरवरी के दौरान 6 दिनों में और मार्च–मई के दौरान 3–5 दिनों में कम से कम एक बार पानी देने की सलाह दी जाती है।

बहुफसलीकरण

सुपारी के बागानों में विविध प्रकार की फसलें लगाने और अंतराल सस्य उगाने से अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। अंतराल सस्य ऐसे हों जो बगैर छांव के जीवित रहे, सुपारी को मिलने वाले विभिन्न संसाधनों का उपयोग न करें और इनकी बाजार में मांग भी होनी चाहिए। अंतराल सस्याकरण के लिए केले, अनानास, जिमीकंद, साबूदाना, निकोबारी आलू, अदरक, शकरकंद और हल्दी उपयुक्त फसलें हैं। सुपारी के खेत में काली मिर्च लगाया जाना एक दूसरी लोकप्रिय बहुफसलीकरण प्रणाली है। कतिपय क्षेत्रों में सुपारी के साथ–साथ दालचीनी, लौंग और जायफल भी उगाए जाते हैं।

कटाई और कटाई उपरान्त प्रबंधन

यदि अंतिम उपयोग *चाली* है तो गुच्छों को पूरी तरह पकने के बाद काट लिया जाता है। चाली बनाने के लिए पकी गिरियों को धूप में 35–40 दिनों तक सूखा लिया जाता है। फिर इनका छिलका उतार कर साबूत गिरी के रूप में इनकी बिक्री की जाती है।

पौधों की सुरक्षा

नाशीजीव

स्पिंडल बग

इसके लक्षण तब दिखते हैं जब स्पिंडलों पर सीधे, गहरे, भूरे और झुलसे निशान दिखने लगते हैं और खुली हुई पत्तियों में ये निशान धब्बों के रूप में दिखते हैं। सुपारी के ताड़ों की स्पिंडलों पर प्रति लीटर जल में 1.5 मि.ली. दर से डाइमेथोएट मिलाकर छिड़काव किए जाने से इस कीट पर प्रभावी रूप से नियंत्रण पाया जा सकेगा।

घुन (माइट)

प्रति लीटर जल में 2.5 मि. ली. की दर से डाइकोफॉल 18.5 ईसी का छिड़काव करके इस पर नियंत्रण रखा जा सकता है।

रोग

कली का सड़ना या महाली रोग

कच्ची गिरियों का सड़ना और झड़ जाना इस रोग का लक्षण है। गिरे हुए ये फल पेड़ के तल पर बिखरे हुए देखे जा सकते हैं। शुरू–शुरू में लक्षणों के रूप में सिरे की ओर गिरी की सतह पर गहरे हरे/पीले जल से लथपथ निशान नजर आते हैं। गिरे हुए इन फलों की पूरी सतह सफेद कवकीय परत से ढकी होती है। मुख्य पत्ती के संक्रमित होने से कली सड़ जाती है और बाह्य पत्ती की ओर से शीर्ष का सड़ना शुरू हो जाता है जो धीरे–धीरे विकसित होती हुई कली की ओर बढ़ता जाता है। अंतत: पूरा शीर्ष क्षेत्र सड़ जाता है और फिर पौधे मर जाते हैं।

कली से संक्रमित ऊतक को हटा देना चाहिए और इस पर 10 प्रतिशत बोर्डो पेस्ट का लेप लगा दिया जाना चाहिए। महाली रोग से मृत हो चुके ताड़ों और साथ ही गुच्छों को भी हटा देना चाहिए तथा आस–पास के स्वस्थ ताड़ों के शीर्ष पर एक प्रतिशत बोर्डो का छिड़काव करने से इस रोग की व्यापकता को कम करने में मदद मिलेगी।

पीला पत्तीरोग

पत्तियों का पीला पड़ जाना और परिपक्व एवं अपरिपक्व दोनों फसलों का झड़कर गिर जाना इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं। बाह्य पत्तियों के पर्णक के शीर्ष से पीलापन शुरू होते हुए पत्ती के मध्य तक पहुंच जाता है। संक्रमित पत्तियों के शीर्ष पर अक्सर कटे हुए निशान दिखते हैं। अंतिम अवस्था तक पहुंचते–पहुंचते पत्तियां छोटी और नुकीली हो जाती है। इस रोग से बचाव के लिए, मानसून से पहले और बाद की अवधि के दौरान दो बार में प्रति ताड़ प्रति वर्ष 200 ग्रा. यूरिया, 200 ग्रा. सुपर फॉस्फेट और 230 ग्रा. पोटाश म्यूरेट का प्रयोग करना होगा। खेत में पानी जमा होने से रोकें। प्रति लीटर 2 मि.ली. की दर से डाइमिथोएट का छिड़काव करके टिड्डों से पौधों को सुरक्षित रखें।

पत्ती पर धब्बे

दक्षिणी पश्चिमी मानसून के मौसम में यह रोग फैलता है। 10 वर्ष तक के पौधे इससे ज्यादा प्रभावित हो सकते हैं। पत्ती की सतह पर भूरे या गहरे भूरे या काले रंग के गोल धब्बे दिखते हैं। गंभीर संक्रमण की स्थिति में पौधों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। रोगयुक्त पत्तियों को हटाने और जला देने सहित सफाई के उपायों का सख्ती से अनुपालन किया जाना चाहिए। बोर्डो मिश्रण तथा 0.3 प्रतिशत डाइथेन M–45 (3 ग्रा./लीटर जल) का छिड़काव करके इस पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

कार्यिकीय विकार

फलो में दरार

यह एक कार्यिकीय विकार है। जलाभाव की अवधि के पश्चात तुरंत पानी की अधिकता इसका प्रमुख कारण है। जब गिरी आधे से लेकर तीन चौथाई तक पक जाती है तब समय से पूर्व ही इन गिरियों का पकने लगना इस रोग का प्रारंभिक लक्षण है। इसके बाद गिरी किसी भी ओर से या शीर्ष से फटने लगती है और गरी दिखने लगती है। इस रोग की प्रारंभिक अवस्था में ही जल निकासी को बेहतर बनाकर तथा प्रति लीटर 2 ग्रा. की दर से बोरेक्स का छिड़काव करने से इस रोग पर कारगर रूप से नियंत्रण पाया जा सकता है।

3.काली मिर्च

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

काली मिर्च मसालों की रानी, बारहमासी आरोही बेल से प्राप्त होती है। अंडमान एवं निकोबार द्वीपों में इसे 450 हैक्टेयर क्षेत्र में उगाया जाता है और इसका वार्षिक उत्पादन 85.5 टन है। इन द्वीपों में काली मिर्च की उत्पादकता 190 कि.ग्रा./है.है जो देश में काली मिर्च उगाने वाले अन्य क्षेत्रों की तुलना में काफी कम है। इसे मुख्य तरू वासभूमि फसल तथा नारियल एवं सुपारी फसलों के साथ मिश्रित फसल के रूप में उगाया जाता है।

जलवायु एवं मृदा

काली मिर्च के लिए गरम एवं नमी वाली जलवायु की आवश्यकता होती है। यद्यपि इसकी अच्छी वृद्धि के लिए 250 से.मी. वार्षिक वर्षापात उपयुक्त है, तथापि इसे कम वर्षपात वाले क्षेत्रों में भी उगाया जा सकता है, यदि वर्षपात का वितरण अनुकूल है। 20 दिनों की अवधि में लगभग 70 मि.मी. वर्षपात पौधे में नई पत्तियां एवं पुष्पण प्रक्रिया आरंभ होने के लिए पर्याप्त है, परंतु एक बार प्रक्रिया प्रारंभ होने के पश्चात् फलों के विकास तक नियमित वर्षापात की आवश्यकता होती है। लंबी अवधि तक सूखी जलवायु फसल वृद्धि के लिए अनुकूल नहीं है।

यह पौधा 10^0 से. का न्यूनतम तथा 40^0 से. तक का अधिकतम तापमान सहन करता है एवं 20^0 से. से 30^0 से. तापमान इसके लिए अनुकूल है। इसे समुद्री सतह से 1200 मीटर ऊंचाई तक उगाया जा सकता है परंतु कम ऊंचाई अनुकूल होती है। जैविक तत्वों से समृद्ध हल्की झरझरा (पोरस) एवं सूखी मृदा उपयुक्त होती है। मिट्टी में जल भराव, छोटी अवधि के लिए होने पर भी पौधे के लिए घातक है। अत: भारी अवसंरचना वाली मृदाओं, जहां निकासी की पर्याप्त सुविधाएं नहीं हैं, उनसे बचना चाहिए।

भूमि या स्थान का चयन

काली मिर्च की खेती के लिए हल्के से सामान्य ढलान वाले क्षेत्र उपयुक्त होते हैं, क्योंकि इनमें जल निकासी अच्छी होती है। दक्षिण ओर की ढलानों को जहां तक संभव हो नहीं चुना जाना चाहिए। जब इस प्रकार की ढलानों को खेती के लिए उपयोग किया जाना है तो तरुण पौधों को ग्रीष्म काल के दौरान सूर्य की तेज किरणों से पर्याप्त रूप से परिरक्षण किया जाना चाहिए। काली मिर्च को सुपारी या नारियल के बागानों में उगाया जा सकता है। द्वीपों में काली मिर्च के लिए जिंदाबल्ली (ग्लाइरीसीडिया) एक सफल मानक है।

मूल पौधे का चयन

नियमित रूप से उच्च उपज देने वाले मूल पौधे का चयन करें जिसमें अन्य वांछित गुण, जैसे सशक्त वृद्धि, प्रति यूनिट क्षेत्र में गुच्छे की अधिकतम संख्या, लंबे गुच्छे बेरियों की सघनता, रोग सहिष्णुता आदि हों। चयनित पौधे के आयु 5–12 वर्ष के बीच होनी चाहिए। चयनित पौधों को अक्तूबर–नवम्बर माह के दौरान चिन्हित कर लेबल लगाया जाता है।

जड़युक्त् कतरनों को उगाना

काली मिर्च की प्रवर्धन वानस्पतिक रूप से कतरनों से होती है। मूल पौधे के मूल में उत्पन्न क्षैतिज तनों का चयन करने के पश्चात् इन्हें गोल लपेटकर ऊंचाई पर रखा जाता है। इन्हें फरवरी–मार्च के दौरान बेलों से अलग किया जाता है। रनर शूट के बीच का एक तिहाई भाग रोपण के लिए उपयोग किया जाता है। तने के तरुण व सख्त भागों का उपयोग न करें। तने को 2–3 गांठ के साथ छोटे टुकड़ों में काट लें। यदि पत्तियां हों तो उन्हें तने पर एक छोटी टहनी रखते हुए काट लें। कतरनों को जैव उर्वरकों से उपचारित किया जाता है, इन कतरनों को नर्सरी क्यारियों या पॉलिथीन बैग या गमला मिश्रण से भरे बास्कैट में रोपित करें। कतरनों को रोपित करने के दौरान कम से कम एक गांठ को मृदा में गाड़ दें। कतरनों को रोपण के पश्चात् अच्छी छांव में रखें। कतरनों को सीधे सूर्य की किरणों से बचा कर रखें एवं नर्सरी में नमी एवं ठंडे वातावरण के रखरखाव के लिए निरंतर जल देने की सिफारिश की जाती है। दिन में दो–तीन बार जल देना पर्याप्त होता है। अत्यधिक जल देने से बचें चूंकि इससे मृदा कीचड़ का रूप धारण कर लेती है और जल भराव होता है।

रोपण

पौधे का रोपण कार्य अप्रैल–मई में मानसून पूर्व वर्षों के पश्चात् प्रारंभ किया जाना चाहिए। द्वीपों में जिंदाबल्ली एक बेहतर आश्रय है। आश्रयों के कतरनों को 40–50 सें.मी. गहरी संकीर्ण छिद्रों में रोपा जाता है। समतल भूमि में कतरनों के बीच 3 x 3 मीटर तथा ढलानों में कतारों के बीच 2 मीटर की दूरी, ढीली भूमि में 4 मीटर की सिफारिश की जाती है। आश्रयों के

आस–पास मिट्टी को अच्छी तरह दबाया जाना चाहिए ताकि आश्रय को मिट्टी से मजबूती मिले। काली मिर्च के रोपण के लिए आश्रयों के उत्तरी ओर 15 सें.मी. की दूरी पर गड्ढे बनाएं। गड्ढों का आमाप 50 घन सें.मी. होना चाहिए। गड्ढ़ों में टॉप सॉयल एवं कम्पोस्ट या अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद 5 कि.ग्रा. प्रति गड्ढे की दर से डालें। मई–जून के दौरान वर्षाकाल प्रारंभ होने पर दो–तीन जड़ युक्त कतरनों को आश्रयों से 30 सें.मी. दूर गड्ढ़ों में रोपित करें। कतरनों के चारों ओर मिट्टी से बाहर की ओर ढलान वाली मेड़ बनाएं ताकि पौधे के आस–पास जल भराव न हो। कतरनों से उगने वाले भाग को खींच कर आश्रयों से बांध दिया जाना चाहिए। जब काली मिर्च को नारियल या सुपारी के पेड़ों पर उगाया जाता है तो काली मिर्च की कतरनों को पेड़ की जड़ से 1 से 1.5 मीटर की दूरी पर रोपित करें। अस्थायी तौर पर काली मिर्च की बेलों को एक–दो वर्षों तक खींच कर रखा जाना चाहिए। जब उनमें पेड़ के तने तक पहुंचने की लंबाई हो जाती है तो अस्थायी व्यवस्था को बेलों को क्षतिग्रस्त किए बिना हटा दिया जाना चाहिए और काली मिर्च के पौधों को पेड़ के तने से बांध दिया जाना चाहिए।

रोपण पश्चात् प्रबंधन

यदि भू–भाग ढीला/गीला और असमतल हो तो मृदा अपरदन रोकने हेतु सीढ़ीदार खेत बनाएं। प्रारंभिक अवस्थाओं में बेलों को आश्रयों से बांध दिया जाना चाहिए। बेलों की एक वर्ष की वृद्धि के बाद छंटाई की जानी चाहिए जिससे पार्श्व शाखाओं को उत्पन्न होने में सहायता मिलती है। काली मिर्च की बेलों के बेसिनों में ग्रीष्मकाल के दौरान मल्चिंग करना अत्यधिक लाभदायक है। बुरादा, सुपारी की भूसी तथा सूखी पत्तियां मल्चिंग के लिए उपयुक्त सामग्री है। प्रत्येक वर्ष मार्च–अप्रैल माह के दौरान आश्रयों की कटाई–छंटाई करें ताकि अतिवृद्धि को हटा कर उन्हें उचित आकार दिया जा सके। आश्रय पेड़ों की प्रभावकारी ऊंचाई लगभग 6 मीटर है। दूसरी बार छंटाई जुलाई–अगस्त माह में की जानी चाहिए, यदि बागान में अत्यधिक छांव है।

उर्वरक एवं खाद प्रबंधन

अनुकूलतम उपज प्राप्त करने हेतु नियमित रूप से खाद देना आवश्यक है। अप्रैल–मई माह के दौरान लगभग 10 कि.ग्रा. अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट दिया जाता है। लगभग 210 ग्रा. यूरिया, 250 ग्रा. सुपरफास्फेट तथा 140 ग्रा म्यूरेट ऑफ पोटाश/है. तीन वर्षों के बेलों को दिया जाता है। उपरोक्त खाद को दो किस्तों में अप्रैल–मई तथा सितम्बर–अक्तूबर के दौरान दिया जा सकता है। रोपण के प्रथम वर्ष के दौरान उपरोक्त खुराक का एक तिहाई भाग तथा दूसरे वर्ष में दो तिहाई भाग दिया जा सकता है। तीसरे वर्ष से उपरोक्त उर्वरकों की पूर्ण खुराक पौधों को दी जा सकती है। खाद को बेल से 30 सें.मी. की दूरी पर डालकर अच्छी तरह मिट्टी में मिला दिया जाता है।

सिंचाई/जल प्रबंधन

सिंचाई की सिफारिश की गई गहराई 10 मि.मी. (100 लीटर जल प्रति सिंचाई 8–10 दिनों के अंतराल पर) है। जल को पौधों से 75 सें.मी. अर्ध व्यास पर बने बेसिनों में देना चाहिए। बेसिनों में सूखी पत्तियों या उपयुक्त सामग्री से मल्चिंग की जानी चाहिए। काली मिर्च की अच्छी उपज के लिए 7 लीटर जल प्रति सूखा दिन की दर से टपक सिंचाई का सुझाव भी दिया जाता है। द्वीपीय स्थितियों में सूखे की अवधि के दौरान सिंचाई की सावधानी बरतनी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

खुदाई से बचना चाहिए और खरपतवारों को आवश्यकतानुसार काट देना चाहिए और काटे गए खरपतवारों का पुनर्चक्रण किया जाना चाहिए। अवांछित ऊपरी वृद्धि तथा लटकती हुई टहनियों को आवश्यक होने पर काट दिया जाना चाहिए।

कीट नाशीजीव प्रबंधन

नाशीजीव

गौण नाशीजीव जैसे थ्रिप्स, बेधक, पत्ती खाने वाली सूंडियां तथा एफिड काली मिर्च की बेलों को आक्रांत करते हैं। कवक जनित तना सड़न रोग द्वीपों में प्रमुख रोग है। रोग नियंत्रण के लिए एक समेकित नीति अपनाई जाती है। पादप स्वच्छता उपायों को अपनाया जाता है जिसके तहत कैनोपी में नमी को कम करने के लिए छांव का विनियमन जिससे संक्रमण की तीव्रता कम हो सकती है। जैव नियंत्रक एजेंट, जैसे *ट्राइकोडर्मा हरजियानम* तथा *सूडोमोनास फ्लोरसेंस* के उपयोग से रोग तीव्रता कम होती है। *ट्राइकोडर्मा हरजियानम* का अनुप्रयोग बेल के मूल में 50 ग्रा. प्रति बेल की दर से मानसून के प्रारंभ में मई के दौरान किया जाना चाहिए। दूसरी बार *टी.हरजियानम* का अनुप्रयोग अगस्त –सितम्बर माह में किया जाता है। *सूडोमोनास फ्लोरसेंस* 50 ग्रा. प्रति बेल की दर से *ट्राइकोडर्मा हरजियानम* के साथ भी उपयोग किया जा सकता है। बेसिन में जैविक मल्च तथा खली डालने पर मृदा की अवसरंचना में सुधार तथा लाभदायक सूक्ष्मजीवों की वृद्धि करता है। मई–जून के दौरान मानसून बौछारों के बाद सभी बेलों के 45–50 से.मी. के अर्ध व्यास में कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2%) 5–10 लीटर/

बेल की दर से ड्रैंचिंग किया जाता है। बोर्डो मिश्रण 1% का पर्णीय छिड़काव भी किया जाता है। ड्रैंचिंग और छिड़काव को दोबारा अगस्त–सितम्बर माह में किया जाना है। यदि मानसून की अवधि लंबी हो तो तीसरी बार ड्रैंचिंग अक्तूबर माह में की जा सकती है। भारतीय मसाला अनुसंधान संस्थान द्वारा जारी की गयी किस्म 'शक्ति' इस रोग की प्रतिरोधी किस्म है।

उपज एवं सस्योत्तर प्रबंधन

काली मिर्च की बेलों में फल तीसरे या चौथे वर्ष से लगते हैं। बेलों में मई–जून के दौरान पुष्पण होता है और पुष्पण से पकने तक 6 से 8 माह का समय लगता है। दिसम्बर से फरवरी के दौरान कटाई की जाती है। जब गुच्छे पर एक या दो बेरी लाल हो जाए तो पूरे गुच्छे को तोड़ लिया जाता है। दोनों हाथों से गुच्छे को रगड़ कर बेरियों को अलग किया जाता है और इन्हें 7 से 10 दिनों तक सुखाया जाता है, जब तक बाहरी परत काली और झुर्रीदार नहीं हो जाती। पकी हुए बेरियों से लगभग 33 प्रतिशत काली मिर्च प्राप्त होती है।

उपज

काली मिर्च की लताओं में पूर्ण वहन अवस्था रोपण के 7वें या 8वें वर्ष में आती है। एक हैक्टेयर के बागान से औसतन 800 से 1000 कि.ग्रा. काली मिर्च की उपज प्राप्त हो सकती है।

4.दालचीनी

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

दालचीनी को सिलॉन लकड़ी भी कहते हैं और यह संसार के सबसे पुराने मसालों में से एक है। दालचीनी, भारत के निकट मालाबार तट के श्रीलंका व म्यांमार देशों का स्थानीय मसाला किस्म है। इसे दक्षिणी अमेरिका तथा वेस्ट इंडीज में भी भीतरी सूखी छाल के लिए मसाले के रूप में उगाया जाता है। यह मसाला हल्के भूरे रंग का होता है तथा इसमें नाजुक सुगंध तथा तेज व मीठा स्वाद होता है। अन्य संबंधित मसालों की अपेक्षा यह हल्के रंग एवं हल्के स्वाद का होता है। सूखी पत्तियों व छाल से क्रमशः पत्तियों का तेल व छाल का तेल निकाला जाता है। इसके तेल में तीखी गंध व तेज स्वाद होता है तथा 70% से 80% यूजीनोल होता है। पत्ती एवं छाल के तेल, दवा एवं इत्र के उद्योग में वाणिज्यिक रूप में प्रयोग होता है। दालचीनी एक कीमती मसाले के रूप में द्वीपों में उगायी जाती है।

मृदा का चयन

दालचीनी एक सख्त पौधा है। यह विभिन्न प्रकार की मृदाओं व जलवायुवीय स्थितियों को सहन कर सकती है। इसके लिए 2000 से 2500 मि.मी. वार्षिक वर्षपात की आवश्यकता होती है। लंबे समय तक सूखा पड़ने से फसल प्रभावित होती है। अंडमान व निकोबार द्वीपों में इसे वर्षा आधारित फसल के रूप मे उगाया जाता है।

किस्में

देश में इसकी छः किस्में नामतः वाई.सी.डी–1 (बागवानी रिसर्च स्टेशन येरकाड), पी.पी.आई–1 (बागवानी रिसर्च स्टेशन पेचिपाराय), कोंकण तेज (क्षेत्रीय नारियल रिसर्च स्टेशन, वेन्गुर्ले), सुगंधिनी (केरल कृषि विश्वविद्यालय, केरल), नवाश्री (आई. आई.एस.आर, कोझिकोड) को विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों द्वारा जारी किया गया हैं।

प्रवर्धन व नर्सरी तकनीक

इसे आमतौर पर बीजों से उगाया जाता है। दालचीनी का प्रवर्धन कतरनों और गूटी से भी किया जा सकता है। दालचीनी में आमतौर पर जनवरी में फूल आते हैं तथा जून से अगस्त तक फल पकते हैं। पूर्णरूप से पके फल पेड़ों से तोड़ लिए जाते हैं या जमीन पर गिरे हुए फल एकत्रित कर लिए जाते हैं। फलों से बीज निकालकर धो लिए जाते है और तुरंत ही नर्सरी की क्यारियों में या 2:1:1 अनुपात में रेत, गोबर की खाद व मिट्टी से भरे पॉलिथीन के थैलों में बो दिये जाते हैं। अंकुरण 15 से 20 दिनों में प्रारम्भ हो जाता है।

मुख्य खेत में रोपण

जब अंकुर 12 महीने के हो जाते हैं तब उन्हें 3 मी. x 3 मी. के अंतराल पर मुख्य खेत में रोपित किया जाता है। इसके लिए 60 सें.मी. x 60 सें.मी. x 60 सें.मी. के गड्ढे खोदकर उनमें कम्पोस्ट व मिट्टी भर देते हैं। जून जुलाई माह में गड्ढों के बीचों-बीच अंकुरों को रोपित करते हैं। ये अंकुर खुले में व हल्की छाया में बढ़ते हैं।

खाद देना

बेहतर वृद्धि के लिए जून माह में टहनी एकत्र करते समय एक गुड़ाई की जाती है। पौधों को क्रमबद्ध रूप से खाद मिलने हेतु यह आवश्यक है। प्रथम वर्ष में प्रत्येक पौधे को 45 ग्रा. यूरिया, 115 ग्रा. सुपर फॉस्फेट एवं 42 ग्रा. पोटाशियम म्यूरेट दिया जाता है तथा दूसरे वर्ष इसकी दोगुनी मात्रा दी जाती है। प्रत्येक वर्ष उर्वरकों की मात्रा क्रमशः बढ़ायी जाती है ताकि पेड़ 10 वर्ष या इससे अधिक आयु वाले पेड़ों को प्रत्येक वर्ष 200 ग्रा. पोटाश प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त गोबर की खाद 20 कि.ग्रा./ पौधें की दर से दो समान खुराकों में बांटकर मई से जून के दौरान तथा दूसरी बार सितम्बर से अक्टूबर में डाली जाती है।

खरपतवार एवं जल प्रबन्धन

मुख्य फसल की वृद्धि एवं विकास के लिए नियमित रूप से निराई की जाती है। सूखे के मौसम के दौरान सिंचाई की जाती है। यदि फसल रोपण आधारित फसलचक्र में उगाई जाती है तो रोपण फसल की सिंचाई के दौरान ही इसकी भी सिंचाई की जा सकती है।

कटाई एवं प्रसंस्करण

दालचीनी के पौधे की समय-समय पर कटाई या छंटाई की जाती है। जब पौधे दो वर्ष के हो जाते हैं तो उन्हें जून जुलाई के दौरान धरती से 12 सें.मी. के ऊपर के भाग को छांट दिया जाता है। इससे ठूंठ कठोर हो जाता है। यह अगले मौसम में मुख्य तने के बगल से बढ़ने लगते हैं जिससे पौधे को 2 मी. ऊंची झाड़ियों का आकार मिल सके और चार वर्षों में छिलने

योग्य बेतों का गुच्छ उग आता है। छिले जाने वाली टहनियों के विकास के आधार पर नियमित रूप से छिलने का काम चार या पाँच वर्षों से प्रारम्भ हो जाता है।

छिलने के उपयुक्त समय के निर्धारण के लिए तने पर तेज चाकू से जांच हेतु कटाव बनाया जा सकता है। यदि छाल आसानी से अलग हो जाती है तो कटाई तुरंत की जा सकती है। जब पौधे दो वर्ष की आयु के हो जाते हैं और लम्बाई लगभग 1 से 1.25 मी. एवं मोटाई 12.5 सें. मी. हो, जमीन के करीब से काट दिया जाता है। टहनियों से पत्तियों एवं ऊपरी तनों को हटाकर बंडलों में बाँध दिया जाता है।

कटाई के बाद छिलने वाले चाकू से छिलने व खुरचने की प्रक्रिया पूरी की जाती है। सबसे पहले बाहरी खुरदुरी छाल को हलके से खुरचा जाता है। इसके बाद एक सिरे से दूसरे सिरे तक लम्बवत् काटा जाता है। इसके बाद लकड़ी व छाल के बीच चाकू चलाकर छाल को जल्दी से उतार दिया जाता है। जो टहनियां सुबह काटी जाती हैं उनकी छाल उसी दिन उतारी जाती है। छाल को शुरुआती सुखाई के लिए एक रात के लिए छाया में रखा जाता है, इसके पश्चात चार दिनों तक धूप में सुखाया जाता है। सूखने की प्रक्रिया के दौरान छाल सिकुड़कर मजबूत रूप ले लेती है।

उपज

दालचीनी के एक हैक्टेयर बागान से लगभग 200 से 300 कि.ग्रा. सूखी छाल प्राप्त होती है।

5.लौंग

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय और महत्व

लौंग एक सदाबहार पेड़ की सूखी बिन खिली कली है जो अपनी सुगंध एवं औषधीय गुणों के कारण महत्त्वपूर्ण लोकप्रिय मसाला है। लौंग का तेल इत्र, औषधालयों तथा सुगन्ध उद्योगों में प्रयोग किया जाता है। अंडमान निकोबार द्वीपों में यह 95 है. भूमि पर उगाया जाता है और इसका वार्षिक उत्पादन 4.09 टन और उत्पादकता 43.05 कि.ग्रा./है. है।

जलवायु और मृदा

लौंग एक उष्णकटिबंधीय पौधा है जिसे उगाने के लिए गर्म एवं नम जलवायु, 20^0 से 30^0 से. तापमान, 1500 से 2500 मि.मी. वर्षपात तथा उच्च ह्यूमस वाली गहरी काली दोमट मृदा आवश्यक होती है। यह लेटराइट मृदा, चिकनी दोमट तथा काली मृदा जिनमें अच्छी जल निकासी होती है, में अच्छी तरह उगती है। इसके लिए रेतीली मृदा अनुपयुक्त है।

किस्में

लौंग की कोई नामित किस्में नहीं हैं।

प्रवर्धन एवं नर्सरी कार्य

लौंग का प्रवर्धन बीजों द्वारा होता है जिसे मदर क्लोव कहा जाता है। फलों को पेड़ पर पकने दिया जाता है और पक कर सहज रूप से गिरने दिया जाता है। इस प्रकार गिरे हुए फलों को एकत्रित कर उन्हें सीधे नर्सरी में बोया जाता है या इन्हें रातभर पानी में भिगोकर बोने से पहले छिलका हटा देते हैं। कटाई के एक सप्ताह में ही बीज अपनी जीवंतता खो देते हैं। इसलिए इन्हें पेड़ से एकत्र करने के तुरंत बाद बो दिया जाना चाहिए। 15 से 20 सें.मी. ऊंची एवं 1 मी. चौड़ी तथा सुविधाजनक लम्बाई की क्यारियाँ बनायी जाती हैं। क्यारियों को ढीली मिट्टी से बना कर और उनके ऊपर 5 से 8 से.मी. मोटी रेत की परत बिछाई जाती है। बीजों को 2 से 3 से.मी. की दूरी पर तथा 2 से.मी. गहराई में रोपित किया जाता है। बीज क्यारियों को सूर्य की सीधी रोशनी से बचाया जाना चाहिए। अंकुरण 10 से 15 दिनों के बाद शुरू होता है और 40 दिनों तक होता रहता है। अंकुरित बीज मिट्टी, रेत तथा गोबर की खाद 3:3:1 अनुपात में भरे पॉलीथीन बैगों (30 x 15 सें.मी.) में रोपित किये जाते है और जब वे 18 से 24 माह के हो जाते हैं तो मुख्य खेत में प्रतिरोपित किये जाते है।

मुख्य खेत में प्रतिरोपण

मुख्य खेत को साफ किया जाना चाहिए तथा 6 से 7 मी. की दूरी पर 60x60x60 सें.मी या 75x 75x75 सें.मी. के आकार के गड्ढे खोदे जाते हैं और कम्पोस्ट से आंशिक रूप से भरकर मिट्टी से ढक देते हैं। बरसात का मौसम प्रारम्भ होते ही अंकुरों को रोपित कर दिया जाता है। लौंग के पौधे आंशिक छाया पसंद करते हैं अत: इन्हें मिश्रित फसलों जैसे नारियल व सुपारी के बागानों में उगाया जाता है। रोपाई के तुरंत बाद घासफूस से मल्चिंग की संस्तुति की जाती है।

खाद देना

गोबर की खाद या कम्पोस्ट 50 कि.ग्रा. प्रति फलदायी पेड़ प्रति वर्ष की दर से वर्षाकाल के प्रारम्भ में दी जा सकती है। प्रारम्भिक जैविक स्रोतों के अलावा अजैविक उर्वरक (40 ग्रा. यूरिया, 110 ग्रा. सूपर फॉस्फेट या 90 ग्रा. रॉक फॉस्फेट, और 80 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति पेड़ दिया जाता है। 15 वर्ष या इससे अधिक पुराने पेड़ों के लिए अजैविक उर्वरकों की मात्रा को क्रमिक रूप से बढ़ाते हुए 600 ग्राम यूरिया, 1560 ग्रा. सूपर फॉस्फेट या 1250 ग्रा. रॉक फॉस्फेट और 1250 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पेड़ किया जाता है। अजैविक उर्वरक दो समान भागों में मई–जून एवं सितम्बर–अक्टूबर माह में पौधों के चारों और खोदी गई उथली खाइयों में तने से 1.5 मी दूर डाल दिये जाते हैं।

खरपतवार प्रबंधन तथा छंटाई

इसमें नियमित निराई आवश्यक है। रोगग्रस्त एवं मृत टहनियों को समय–समय पर हटाना एवं आवश्यकतानुसार शाखाओं की छंटाई करते रहना चाहिए।

जल प्रबन्धन

सूखे के मौसम में सिंचाई की जा सकती है। प्रारम्भिक दो वर्षों में जल देना पौधों की वृद्धि एवं विकास में सहायक है।

पौध संरक्षण

रोग : लौंग में पत्तियों का गलना एक प्रमुख रोग है। पत्तियों पर गहरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं जिसके कारण सिरे एवं पत्तियां गल जाती हैं और पूरे पेड़ से पत्तियां झड़ जाती हैं। इसके लिए 0.2% कार्बेंडांज़िम का छिड़काव करें।

नाशीजीव : एक महत्त्वपूर्ण स्केल कीट लौंग को संक्रमित करता है। यह संक्रमण नई शाखाओं एवं पत्तियों पर दिखाई देता है। यह अधिकतर नर्सरी में दिखाई देता है। इसके लिए 0.05% इमिडाक्लोरोपिड का छिड़काव करें।

कटाई एवं सस्योत्तर प्रबंधन

लौंग के पेड़ों में बोवाई के 7 या 8 वर्ष बाद फल लगते हैं, लेकिन फल देने की पूर्ण क्षमता 15 वर्षों के बाद प्राप्त होती है। सितम्बर से अक्टूबर तक फूल लगते हैं। फूल की कली नये प्रधावन (फ्लष) पर उगती हैं और कलियों को कटाई के लिए तैयार होने में 5 से 6 महीने का समय लगता है। कली का रंग हरे से हल्की गुलाबी रंग में बदलना तुड़ाई के किये उपयुक्त समय है। परिपक्व लौंग को हाथों से सावधानीपूर्वक तोड़ा जाता है। तोड़ी गई कलियों को समूहों में हाथों से अलग किया जाता है और सूखने के लिए प्रांगण में फैला देते हैं जो 4–5 दिनों में सूख जाती हैं। जब कली के डंठल का रंग गहरे भूरे रंग का हो जाता है और बाकी की कली हलके रंग की होती है तो यह सूखने की सही अवस्था होती है।

उपज

अच्छी तरह से रखरखाव किए गए एक पेड़ से 4 से 5 कि.ग्रा. सूखी कलियाँ प्राप्त होती हैं। 15 वर्षों के बाद प्रति पेड़ की औसत वार्षिक उपज 2 कि.ग्रा. है। लौंग तेल जो मसाले का निर्णायक घटक है, कलियों में इसका स्तर 16 से 21% होता है। एक किलोग्राम में लगभग 11,000 लौंग होते हैं।

6.जायफल

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

जायफल पेड़ एक महत्वपूर्ण प्रजाति है जिससे दो मसाले प्राप्ति होते हैं, नामत: जायफल (सूखे बीज) तथा जावित्री (सूखे बीजचोल)। यह एक सदाबहार शंक्वाकार पेड़ है, जिसकी ऊंचाई 10 मीटर तक होती है। जायफल को केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गोवा, आंध्र प्रदेश, उत्तर–पूर्वी भारत के कुछ क्षेत्रों तथा अंडमान एवं निकोबार द्वीपों में उगाया जाता है। द्वीपों में जायफल की वाणिज्यिक खेती नहीं की जाती है, परंतु द्वीपों में इसके विस्तार की व्यापक संभावनाएं हैं।

जलवायु एवं मृदा

जायफल गर्म नमी वाली जलवायु तथा 1500 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र में अच्छी तरह उगता है। चिकनी दोमट, बलुई दोमट तथा लाल लेटराइट मृदा वाले क्षेत्र इसकी वृद्धि के लिए उपयुक्त हैं। जायफल की खेती के लिए सूखी जलवायु तथा जल भराव की स्थितियां उपयुक्त नहीं हैं।

किस्में

कोंकण प्रदेश से दो किस्में कोंकण सुगंधा, कोंकण स्वाद तथा भारतीय मसाला अनुसंधान संस्थान, कालीकट से एक किस्म, विश्वश्री जारी की गई हैं।

प्रवर्धन तथा नर्सरी प्रबंधन

जायफल का वाणिज्यिक तौर पर कलमों के माध्यम से प्रवर्धन किया जाता है। उच्च नमी वाले क्षेत्रों में इपिकोटायल ग्राफ्टिंग अत्यंत सफल है। कलमों को खेत में 12 माह बाद रोपित किया जा सकता है।

स्थान का चयन

जायफल की प्रारंभिक अवस्था में इसे सूर्य की तेज किरणों से झुलसने से बचाना आवश्यक है। पर्वतीय ढलानों में जब जायफल को एकल फसल के रूप में उगाया जाता है, तो स्थायी छांव देने वाले पेड़ों को रोपित किया जाता है। 15 वर्ष पुराने नारियल के बागानों में, जहां छांव की उपयुक्त स्थितियां होती हैं, वहां जायफल को अंत:फसल के रूप में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। जायफल की खेती के लिए नदी तट पर स्थित नारियल के बागानों तथा इसके आस–पास के क्षेत्र अत्यंत उपयुक्त हैं। इसकी खेती के लिए ग्रीष्मकाल में सिंचाई अनिवार्य है।

खेती एवं रोपण की विधि

मुख्य खेत में रोपण कार्य वर्षा काल के प्रारंभ में किया जाता है। रोपण से 15 दिन पूर्व खेत में 9मी x 9 मी. की दूरी पर 0.75मी x0.75मी x0.75 मी. आकार के गड्ढे खोदकर, गड्ढों को जैविक खाद और मिट्टी से भर दिया जाता है। क्षैतिजकार बढ़नेवाली कलमों के रोपण के लिए 5 मी. x 5 मी. की दूरी को अपनाया जाता है। खेत में प्रत्येक 20 मादा कलमों के लिए एक नर कलम रोपित किया जाता है। तरुण पौधों को कृत्रिम छांव तथा ग्रीष्मकाल में सिंचाई दी जाती है। इसे नारियल तथा सुपारी बागानों में मिश्रित फसल के रूप में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। नारियल के बागानों के संदर्भ में जायफल को चार नारियल के पेड़ों के बीचों–बीच रोपित किया जा सकता है जबकि सुपारी बागानों में हर तीसरी पंक्ति में जायफल को रोपित किया जाता है जिससे चार जायफल पौधों से बने वर्गाकार में सुपारी के नौ पेड़ होंगे।

खाद देना

जायफल की उचित वृद्धि एवं उपज के लिए बड़े पैमाने पर खाद की आवश्यकता होती है। रोपण के प्रथम वर्ष में गोबर की खाद या कम्पोस्ट 10 कि.ग्रा./पौधा की दर से डाला जाता है, तत्पश्चात प्रत्येक वर्ष इसके परिमाण में उत्तरोत्तर वृद्धि करते हुए 15 वर्ष आयु के पेड़ को 50 कि.ग्रा. गोबर की खाद या कम्पोस्ट दिया जाता है। प्रथम वर्ष के दौरान 43 ग्रा. यूरिया, 112 ग्रा. सूपरफॉस्फेट तथा 83 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश/पेड़ दिया जाता है। उर्वरक की मात्रा को तत्पश्चात 15 ग्राम प्रति वर्ष बढ़ाया जाता है। उर्वरक को दो समान किस्तों, प्रथम किस्त मई/जून में जैविक खाद के साथ तथा दूसरी किस्त सितंबर–अक्टूबर माह में दी जाती है।

खरपतवार तथा जल प्रबंधन

नियमित निराई आवश्यक है। फसल के बीच के स्थानों में कवर फसल उगायी जा सकती है।

छंटाई

आवश्यकतानुसार शाखाओं को छोटा किया जाना चाहिए, साथ ही साथ सर्वाधिक रूप से मृत एवं रोगग्रस्त शाखाओं को हटा दिया जाना चाहिए।

सिंचाई

सूखे की अवधि के दौरान सिंचाई की जानी चाहिए। कलम स्थापित होने की प्रथम अवस्था में जल देना अत्यंत आवश्यक है।

पौध संरक्षण

रोग

डाइबैक तथा फल सड़न जायफल के प्रमुख रोग हैं।

डाइबैक

परिपक्व एवं अपरिपक्व शाखाओं के सिरे सूख जाना इस रोग के लक्षण हैं, जो ऊपर से नीचे की ओर बढ़ता है। रोग नियंत्रण के लिए संक्रमित शाखाओं को हटा देना तथा शाखाओं के काटे गए स्थान पर बोर्डो पेस्ट लगाना चाहिए।

फ्रूट रॉट

फल सड़न के मामले में संक्रमण डंठल पर गहरे घाव से प्रारंभ होता है तथा धीरे–धीरे फल तक फैल जाता है जिससे छिलके का भूरा रंग मलिन हो जाता है। परिणामत: सड़न प्रारंभ हो जाती है। रोग बढ़ने पर जावित्री भी सड़ने लगती है और इस सड़न से एक दुर्गंध फैलती है। फल सड़न के लिए रोगात्मक एवं कार्यिकी दोनों कारण हो सकते हैं। रोग नियंत्रण के लिए जब फल अर्ध परिपक्व होता है तब बोर्डो मिश्रण 1% का छिड़काव किया जाना चाहिए।

नाशीजीव

जायफल का प्रमुख नाशीजीव स्केल कीट है, जो पत्तियों एवं नवोद्–भिद पौधों को संक्रमित करता है। इस नाशीजीव को डायमिथोएट 0.05% के छिड़काव से नियंत्रित किया जा सकता है।

कटाई एवं सस्योत्तर प्रबंधन

जायफल पेड़ पर 7 से 8 वर्षों में फल लगते हैं। जायफल के पेड़ में पूर्णत: फल लगने की अवस्था 15 से 20 वर्ष बाद आती है और इस पर 60 वर्षों तक फल लगते हैं। जायफल पेड़ पर फल वर्षभर लगते हैं, परंतु निश्चित अवधि में अधिक फल लगते हैं। अत: फलों को वर्षभर देखा जा सकता है, परंतु कटाई की चरम अवधि जून से अगस्त माह है। पुष्पण से कटाई तक फल के लिए नौ माह की अवधि आवश्यक है। जब नट की छाल फटकर खुल जाती है तब फल तुड़ाई के लिए पूर्ण रूप से परिपक्व हो जाता है। इन्हें या तो पेड़ से तोड़ लिया जाता है या भूमि पर गिरने के बाद एकत्रित कर लिया जाता है। बाहरी मांसल छाल को हटाने के पश्चात जावित्री को हाथों से अलग किया जाता है। इसे 10 से 15 दिनों तक धूप में सुखाया जाता है। सूखने के दौरान जावित्री धीरे–धीरे टूटने योग्य एवं सख्त हो जाता है और इसमें पीलेपन वाला भूरा रंग आ जाता है। अंतत: बीजों को अलग से 4 से 8 सप्ताह तक सुखाया जाता है।

उपज

एक जायफल का भार औसतन लगभग 60 ग्राम होता है जिसमें से बीज का भार 6 से 7 ग्राम, जावित्री का भार 3 से 4 ग्राम तथा शेष भाग बीजकोश या फली होती है। सामान्य स्थितियों में एक पूर्ण परिपक्व पेड़ से औसतन एक हजार से दो हजार फल प्रति वर्ष प्राप्त होते हैं।

7.अदरक

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

अदरक प्राचीन काल से एक लोकप्रिय मसाला है जिसे भारत में पुरातन काल से ही ताजे तथा सूखे रूप में प्रयोग किया जाता है। अंडमान एवं निकोबार द्वीपों की गरम एवं नमी वाली जलवायु अदरक की खेती के लिए अनुकूल है। वर्तमान समय में इसे 399 हे. क्षेत्र में उगाया जाता है और इसका वार्षिक उत्पादन 1275 टन है। औसत उत्पादकता 3 से 5 टन/है. है, जो राष्ट्रीय औसत से काफी कम है। निम्न उत्पादकता का मुख्य कारण अनभिज्ञात स्थानीय किस्मों का उपयोग है।

जलवायु एवं मृदा

अदरक के लिए गरम एवं नमी वाली जलवायु अत्यंत उपयुक्त है। इसकी खेती समुद्री सतह से लेकर 1500 मीटर की ऊंचाई तक की जाती है। इसकी खेती के लिए अनुकूल ऊंचाई 300–900 मीटर है। रोपण समय से लेकर प्रकंदों में अंकुरण तक सामान्य वर्षापात एवं पूरी विकास अवस्था के दौरान उचित रूप से वितरित वर्षापात अदरक की खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त होता है। अच्छी जल निकासी वाली मृदा अदरक की खेती के लिए उपयुक्त है। बलुई या चिकनी दोमट, लाल दोमट, या लैटराइटिक दोमट मृदाएं अत्यंत उपयुक्त होती हैं। खाद से समृद्ध मृदा को वरीयता दी जाती है। पोशक तत्वों की भारी आवश्यकता होने के कारण अदरक को एक ही खेत में लगातार बोया नहीं जाता है, परंतु खेती में बदलाव को अपनाया जाता है।

किस्में

देश के विभिन्नं भागों से अदरक की अनेक किस्में रिलीज की गई हैं। किस्मों में ताजे या सूखे उत्पादों के आधार पर भिन्नता होती है।

सूखे अदरक के लिए उपयुक्त किस्में

मारन, वायानद, हिमाचल, कुरुप्पमपाड़ी, आई.आई.एस.आर.–वर्धा, आई.आई.एस.आर.–रेजता तथा आई.आई.एस.आर.–महिमा।

कच्ची अदरक के लिए उपयुक्त किस्में

रियो–डी–जेनेरियो तथा वायानाड लोकल।

ऑलियोरेसिन निस्सारण के लिए उपयुक्त किस्म

ऑलियोरेसिन निस्सारण के लिए रियो–डी–जेनेरियो को वरीयता दी जाती है।

प्रवर्धन

अदरक का प्रवर्धन प्रकंदों से किया जाता है, जिन्हें बीज प्रकंद या सेट्स कहा जाता है। प्रकंदों में कवकीय रोगों की रोकथाम के लिए उन्हें 0.3% डाइथेन एम–45 द्रव्य से 30 मिनट तक उपचारित किया जाता है। यदि आवश्यकता हो तो इसे कीटनाशक (0.05% मलाथियॉन) तथा जीवाणुनाशक द्रव्यौं (200 मिग्रा स्ट्रेप्टोसाइकलिन/ ली पानी) से भी उपचारित किया जाता है। अदरक की जैविक खेती के लिए, खेत में स्वस्थ एवं रोगमुक्त पौधों को चिन्हित किया जाना चाहिए, जब फसल 6–8 माह आयु की तथा हरी बनी हुई हो। चिन्हित पौधों से कीट एवं रोगमुक्ति उत्कृष्ट प्रकंदों का चयन किया जाता है। बीज प्रकंदों को सूडोमोनास 20 ग्रा./ली. की दर से बनाए गए घोल में 30 मिनट तक डुबोकर रखा जाता है और इन्हें छांव में फर्श पर फैलाकर सुखाया जाता है। उपचारित प्रकंदों को छांव के नीचे खोदे गए गड्ढ़ों में संग्रहित किया जाता है। गड्ढ़े के फर्श पर रेत या बुरादा बिछाया जाता है। गड्ढ़े को नारियल के लम्बे पत्तों से ढ़क दिया जाना चाहिए। संग्रहित प्रकंदों को मासिक अंतराल पर जांच किया जाना चाहिए और जिन प्रकंदों में सड़न के लक्षण देखे जाते हैं उन्हें हटा दिया जाना चाहिए। इससे रोग फैलाव को रोका जा सकता है। गड्ढ़े में 1 या 2 छिद्र छोड़े जाते हैं ताकि वायु का संचरण हो।

स्थान का चयन

भूमि पर 4–5 बार जोताई की जानी चाहिए ताकि मृदा बारीक हो जाए। यदि रोपण ढलान वाले क्षेत्र में किया जाता है तो टेरेसों पर क्यारियां बनाई जाती हैं। जल–भराव क्षेत्रों से बचना चाहिए क्योंकि प्रकंद रोग संक्रमण के प्रति संवेदनशील होते हैं।

रोपण विधि एवं बीज दर

क्यारियां लगभग 1 मीटर चौड़ी, 15 सें.मी. ऊंची तथा 3 मीटर या अधिक लंबी तैयार की जाती हैं और क्यारियों के बीच 40 सें.मी. की दूरी रखी जाती है। एक हेक्टेयर क्षेत्र में क्यारियों के बीच के स्थान को छोड़कर 3X1 मीटर वाली 2000 क्यारियां

तैयार हो सकती हैं। सिंचित फसलों के मामले में 40 सें.मी. की दूरी बनाकर मेड़ तैयार कर अदरक का रोपण किया जाता है। क्यारियों में रोपण के अंतर्गत अनुकूलतम दूरी 25 से 20 सेमी x 15 सें.मी. है। 3 x 1 मीटर वाली एक क्यारी में 40 पौधे रोपित किए जा सकते हैं। यह सुझाव दिया जाता है कि प्रकंदों के रोपण से पूर्व इन्हें स्यूडोमोनास 20 ग्रा./ली. वाले घोल में डुबोकर बाद में इसे सुखाया जाना चाहिए। चूंकि अदरक आंशिक या संपूर्ण छांव में अच्छी तरह उग सकता है, अत: अंडमान और निकोबार द्वीपों के नारियल या सुपारी बागानों में अदरक उगाया जा सकता है।

मल्चिंग

रोपण के तुरंत बाद क्यारियों को हरी पत्तियों (15 टन/हे. दर से) की गाढ़ी परत के रूप में मल्च किया जाता है। हरित पत्तियों से मल्चिंग दो बार 7.5 टन/हे. की दर से पहली बार रोपण से 45–60 दिनों पर तथा दूसरी बार 90–120 दिनों पर किया जाता है। लाइव मल्च जैसे सन हैम्प, हरी मूंग, कुल्थी, उड़द, ढैंचा, ग्वार फली, सेम की फली, लोबिया तथा अरहर को भी अंतर–फसल के रूप में उगाया जा सकता है तथा रोपण से 45 से 60 दिनों के बीच इन्हें मल्च किया जा सकता है। सिफारिश की गई हरित मल्च का एक चौथाई भाग बचाया जा सकता है, यदि अदरक को अंतःफसल के रूप में नारियल बागानों में 25% छांव में उगाया जाता है। द्वीप में जिंदाबल्ली पत्तियों से मल्चिंग करने की सिफारिश की जाती है, चूंकि इससे पोषक तत्वों में वृद्धि होती है।

खरपतवार प्रबंधन

अदरक की खेती में खरपतवार एक गंभीर समस्या है जिससे उपज उल्लेखनीय रूप से कम हो जाती है। हाथों से निराई की परम्परागत पद्धति आम बात है और इसे उर्वरकों के उपयोग और मल्चिंग से पूर्व किया जाता है। खरपतवारों की वृद्धि की तीव्रता के आधार पर दो से तीन बार निराई की आवश्यकता होती है। पहली निराई रोपण के 45 दिनों के पश्चात तथा दूसरी निराई रोपण के 120–135 दिनों पर की जाती है। पौधों की प्रारंभिक वृद्धि अवस्था के दौरान कतारों के बीच शाकनाशियों का उपयोग किया जा सकता है और बाद की अवस्थाओं में खरपतवारों की वृद्धि के नियंत्रण के लिए क्यारियों के बीच छिड़काव तक सीमित रखा जाता है।

मिट्टी चढ़ाना

मिट्टी की गुड़ाई एवं मिट्टी चढ़ाना आवश्यक है ताकि वर्षा या सिंचाई के कारण बने ढेलों को तोड़ा जा सके। इससे खरपतवारों के नियंत्रण, नमी संरक्षण, उर्वरकों को मिट्टी में मिलाने, तरुण मादा प्रकंदों की वृद्धि में सहायता प्राप्त होती है तथा जड़ों में पर्याप्त वायु संचरण तथा प्रकंदों को स्केल कीटों से बचाता है। रोपण के 45 दिनों पर पहली बार मिट्टी चढ़ाई जाती है और दूसरी बार रोपण के 90–120 दिनों पर चढ़ाई जाती है। मिट्टी चढ़ाने का कार्य हाथों से निराई और मल्चिंग के साथ भी किया जा सकता है।

सिंचाई

अदरक को वर्षा आधारित तथा सिंचित, दोनों ही स्थितियों में उगाया जाता है। जिन क्षेत्रों में वर्षपात कम होती है वहां फसल को नियमित सिंचाई की आवश्यकता होती है। सिंचाई 15 दिनों के अंतराल पर की जाती है। बढ़ी हुई नमी से प्रकंदों की उपज में तथा सगंधीय तेल की मात्रा में वृद्धि होती है। जल की संवेदनशील आवश्यकता अंकुरण अवस्था, प्रकंद निकलने की अवस्था (रोपण के 90 दिनों के पश्चात्) तथा प्रकंद विकासवस्था (रोपण के 135 दिनों के पश्चात) के दौरान होती हैं। अदरक में पहली सिंचाई रोपण के तुरंत बाद की जाती है, तत्पश्चात 10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की जाती है। सूखेपन के दौरान 15 दिनों पर सिंचाई से उपज तथा उपज की गुणवत्ता में सुधार होता है।

छांव का प्रबंधन

अदरक की खेती में बेहतर विकास के लिए हल्की छांव अनुकूल होती है। छांव जल क्षति को रोकती है और पौधों के लिए अनुकूल सूक्ष्म जलवायु उपलब्ध कराती है। 25 से 50% छांव पौधों और प्रकंदों के विकास के लिए अनुकूल होती है। उथली जड़ों वाली इस फसल को छांव पसंद है, अत: यह द्वीप समूहों के बागानों में उगाने के लिए उपयुक्त है तथा रसोई बगीचों के लिए एक घटक फसल है जहां निम्न से मध्यम स्तर की छांव रहती है।

पादप संरक्षण

नाशीजीव

1. **तना बेधक** : अदरक का यह गंभीर नाशीजीव है। इसका लार्वा तने को बेधकर अन्दर घुस जाता है और आंतरिक ऊतकों का आहार ग्रहण करता है जिससे संक्रमित तने की पत्तियां पीली पड़कर सूख जाती हैं। तने पर बने छिद्र से

कीट मल नि:स्रावित होता है और पीला पड़ा हुआ तने का मध्य भाग नाशीजीव संक्रमण के लक्षण दर्शाता है। सितम्बर से अक्तूबर के दौरान नाशीजीवों की संख्या अधिक होती है। तना बेधकों के प्रबंधन के लिए मेलाथिआन 0.1% का छिड़काव जुलाई से अक्तूबर के दौरान 30 दिनों के अंतराल पर किया जाता है।

2. **राइज़ोम स्केल** : राइज़ोम स्केल से खेत में (बाद की अवस्थाओं में तथा भंडारण में) प्रकंद संक्रमित हो जाते हैं। ये कीट प्रकंद के अर्क को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं। जब प्रकंद तीव्र रूप से संक्रमित हो जाते हैं तो प्रकंद सूख जाते हैं जिससे अंकुरण प्रभावित होता है। इस नाशीजीव का प्रबंधन बीज सामग्री को भंडारण से पूर्व क्विनालफॉस 0.075% (20 मिनट) के उपचार करने से तथा संक्रमण रहने पर रोपण से पूर्व भी उपचार किया जा सकता है।

रोग

1. **प्रकंद सड़न** : यह रोग मृदा से उत्पन्न होता है और दक्षिण–पश्चिमी मानसून के आगमन से मृदा में नमी बनने के कारण फफूंदों की वृद्धि होती है। तरुण अंकुर इन रोगाणुओं से शीघ्र संक्रमित हो जाते हैं। संक्रमण का प्रारंभ छद्म तने के कॉलर क्षेत्र में होता है तथा यह नीचे और ऊपर की ओर फैलता है जिससे पीलापन पत्तियों तक फैल जाता है और इससे पत्तियां झुक कर मुरझा जाती हैं तथा तना सूख जाता है। बीज प्रकंदों को भंडारण से पूर्व तथा एक बार फिर से रोपण के पूर्व मैंकोजेब 0.3% से 30 मिनट तक उपचार करने पर रोग के विकास में कमी आती है। इस रोग के प्रबंधन में रोपण के लिए अच्छी तरह सूखी हुई मृदाओं का चयन करना महत्वपूर्ण है, चूंकि जल भराव से पौधे संक्रमित हो जाते हैं। एक बार खेत में यह रोग की पहचान होती है तो प्रभावित झुरमुटों को हटाना तथा प्रभावित एवं आसपास की क्यारियों में मैंकोजेब 0.3% से ड्रैंचिंग करने पर रोग फैलाव का नियंत्रण होता है।

2. **जीवाणुवीय मुरझान** : यह जीवाणुवीय रोग मृदा एवं बीज से उत्पन्न होता है जब मानसून के दौरान फसल तरुण अवस्था में होती है। छद्म तने के कॉलर क्षेत्र में जल से लथपथ धब्बे उभर आते हैं जो नीचे और ऊपर की ओर फैल जाते हैं। प्रथम स्पष्ट लक्षण नीचे की ओर की पत्तियों का हल्का सा लटकना और पत्तियों के किनारों का मुड़ना है। रोपण से पूर्व बीज प्रकंदों को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 200 मिग्रा/ली. पानी से 30 मिनट तक उपचार करने के बाद इन्हें छांव में सुखा लिया जाता है। खेत में रोग देखे जाने पर सभी क्यारियों की बोर्डो मिश्रण 1% या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.2% से ड्रैंचिंग करना चाहिए।

उपज

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में अदरक की उपज 10–15 टन/है. के बीच होती है।

८.हल्दी

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

हल्दी, भारत का एक अति महत्वपूर्ण और प्राचीन मसाला और निर्यात का एक परम्परागत उत्पाद है। इसे धार्मिक समारोह के अतिरिक्त छौंक, रंजक, औषधि तथा प्रसाधन सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता है। इसका आर्थिक भाग जिसे मसाले के रूप में उपयोग किया जाता है, वह भूमिगत प्रकंद है। हल्दी न केवल अपना विशिष्ट स्वाद देती है बल्कि इसे वस्त्र उद्योग तथा प्रसाधन में प्राकृतिक रंजक के रूप में उपयोग किया जाता है। यह पौध शाकीय बारहमासी 60–90 से.मी. ऊंची, कलगीदार पत्तियों वाली उष्णकटिबंधीय वाणिज्यिक फसल है। भारत विश्व में हल्दी का सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक देश है। भारत में मसालों के अंतर्गत कुल क्षेत्र के 6% क्षेत्र में हल्दी का उत्पादन होता है। पिछले अनेक वर्षों से हल्दी और इसके औषधीय गुणों में काफी रूचि ली जा रही है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के नारियल और सुपारी बागानों में हल्दी एक सफल अंतर–फसल है।

जलवायु और मृदा

हल्दी उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय प्रदेश में 20–35^0 से. तापमान और 1500 मि.मी. या उससे अधिक वार्षिक वर्षापात वाले क्षेत्र में वर्षा आधारित या सिंचाई वाली स्थितियों के अंतर्गत एक सफल फसल है। अच्छी निकासी वाली दोमट से चिकनी दोमट मृदाएं जिनका जैविक स्तर अच्छा हो इस फसल के लिए अनुकूल हैं। बहुत मोटी और भारी मिट्टी प्रकंद के विकास के लिए अनुपयुक्त है। हल्दी उत्पादन के लिए जैविक कार्बन, प्रमुख और गौण पोषक तत्वों से समृद्ध मृदाएं उपयुक्त हैं। मिट्टी का पी.एच. स्तर 4.3 से 7.5 के बीच होने पर फसल का अच्छा उत्पादन होता है।

किस्में

आई.आई.एस.आर–प्रतिभा, आई.आई.एस.आर–केदारम, एलेप्पे सुप्रीम देश में अनेक किस्में उपलब्ध हैं जिन्हें उगाए जाने वाले स्थान के नाम से जाना जाता है।

प्रवर्धन

रोपण के लिए सम्पूर्ण या विखंडित मूल और अंगुलिका प्रकंदों का उपयोग किया जाता है और इसके लिए अच्छी तरह विकसित स्वस्थ और रोगमुक्त प्रकंदों का चयन करना होगा। क्यारियों में 25 सें.मी. x 30 सें.मी. की दूरी पर हाथ के कुदाल से छोटे गड्ढे बनाए जाते हैं। गड्ढों में गली हुई पशु खाद या कम्पोस्ट डाल कर उस पर बीज प्रकंद रखकर मिट्टी से भर दिया जाता है। मेड़ पर कतारों की बीच की दूरी 45–60 सें.मी. और पौधों की बीच 25 सें.मी. की दूरी अनुकूल होती है।

हल्दी उत्पादन के एक हेक्टेयर क्षेत्र में रोपण के लिए 2500 कि.ग्रा. प्रकंदों की आवश्यकता होती है। बीजों के लिए प्रकंदों को अच्छे हवाप्रवाह वाले कमरे में ढेर लगाकर हल्दी की पत्तियों से ढक दिया जाता है। बीज प्रकंदों को गड्ढे बनाकर बुरादा, बालू में रखा जा सकता है। गड्ढों को एक दो जगह हवा के लिए खुला छोड़कर शेष भाग को लकड़ी के तख्तों से ढक दिया जाता है। यदि स्केल कीटों का संक्रमण देखा गया है तो प्रकंदों को क्विनालफोस (0.075%) में 15 मिनट के लिए तथा कवकों से भंडारण क्षति को दूर करने के लिए मैंकोजेब (0.3%) में डुबोकर रखा जाता है।

स्थान का चयन और रोपण

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में मानसून पूर्व की बौछारों के बाद अप्रैल–मई में फसल का रोपण किया जा सकता है। खेत में चार बार गहरी जुताई कर इसे तैयार किया जाता है। बुनियादी खुराक के रूप में 30 टन/है. की दर से गोबर की खाद डाली जाती है। लेटराइट मृदा में जलयोजित चूना 500 कि.ग्रा./हे. की दर से डालकर खेत की अच्छी तरह जुताई करनी चाहिए। मानसून पूर्व की बौछारें पड़ने के तुरन्त बाद 1.0 मी. चौड़ी, 15 सें.मी. ऊंची तथा सुविधाजनक लम्बाई की क्यारियाँ, एक दूसरे के बीच 50 सें.मी. की दूरी रखते हुए तैयार की जाती हैं। कतारों के बीच की दूरी 20 से 25 से.मी. तथा पौधों की बीच की दूरी 15 से 20 सें.मी. रखी जाती है। मेढ़ और फरो बना कर भी रोपण किया जा सकता है। बीज दर 2000–2500 कि.ग्रा./हे. होती है। केलों, टमाटर वर्गीय सब्जियों के बाद हल्दी रोपण से बचना चाहिए अन्यथा सूत्रकृमियों का उपयुक्त नियंत्रण आवश्यक होता है।

मल्चिंग

उच्च वर्षपात या ढलान वाले क्षेत्र में रोपण के पश्चात् इसे स्थानीय रूप से उपलब्ध पत्तियों या पुआल से ढकना लाभदायक होता है। रोपण के तुरन्त बाद हरित पत्तियों (12–15 टन/है.) के उपयोग से फसल का मल्चिंग किया जाता है। दोबारा 45 दिनों के बाद टॉप ड्रेसिंग के दौरान मल्चिंग किया जाता है। इस प्रकार मल्चिंग करने से मृदा के जैविक स्तर में वृद्धि, अंकुरण में शीघ्रता तथा खरपतवारों की वृद्धि में कमी आती है। द्वीप में फसल को जिंदाबल्ली (ग्लाइरीसिडिया) की पत्तियों और नारियल की लम्बी पत्तियों से ढकना लाभदायक है।

सिंचाई और खरपतवार नियंत्रण

फसल में 7 से 10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई से हल्दी प्रकंदों की उपज में वृद्धि होती है। टपक सिंचाई प्रणाली से जल उपयोग क्षमता और प्रकंदों की उपज में वृद्धि पायी गयी। द्वीप में हल्दी को वर्षा आधारित फसल के रूप में उगाया जाता है।

खरपतवारों की वृद्धि कम करने के लिए खरपतवारनाशक पेंडीमेथालिन 1 कि.ग्रा./है. का उपयोग प्रभावकारी और प्रकंद उपज में वृद्धि दायक होता है। हल्दी की जैविक खेती में हाथों से खरपतवार उखाड़ना और मल्चिंग प्रभावकारी प्रबंधन है।

खाद देना

खेत की तैयारी के दौरान गोबर की खाद या कम्पोस्ट 30–40 कि.ग्रा./है. डाल कर जुताई की जाती है या बेसल ड्रेसिंग के रूप में क्यारियों पर फैलाया जाता है या रोपण के समय गड्ढों में डाला जाता है। उर्वरक 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फास्फोरस पेंटाक्साइड तथा 120 कि.ग्रा. पोटाशियम ऑक्साइड प्रति हेक्टेयर को भागों में विभाजित कर डाला जाता है। रोपण के दौरान जिंक 5 कि.ग्रा./है. के दर से डाला जाता है तथा जैविक खाद जैसे खली 2 टन/है. की दर से डाली जा सकती है। ऐसा करने पर गोबर की खाद की मात्रा कम कर दी जाती है। नारियल के रेशे की कम्पोस्ट 2.5 टन/हे. में गोबर की खाद, जैव उर्वरक (एजोस्पिररीलम) तथा सिफारिश की गई एन.पी.के. की आधी मात्रा मिलाकर डालना भी बहुत लाभदायक है।

पादप संरक्षण

नाशीजीव

1. **तना बेधक:** यह हल्दी का गंभीर नाशीजीव है। इसके लार्वा छद्म तने को बेधकर आंतरिक ऊतकों को आहार के रूप में खा जाते हैं। छद्म तने पर छेद होना, जिससे कीट मल निस्रावित होता है। और केन्द्रीय मुख्य तने का कुम्हलाना कीट संक्रमण के लक्षण हैं। जुलाई से अक्टूबर माह के दौरान 21 दिनों के अंतराल पर मेलाथिऑन का छिड़काव कीट नियंत्रण में प्रभावकारी है। जब सबसे भीतर की पत्ती पर संक्रमण दिखाई दे तो तुरंत छिड़काव प्रारंभ करना चाहिए।
2. **कन्द स्केल :** कन्द स्केल खेतों में (फसल के अंतिम चरण में) तथा भंडारण के दौरान संक्रमित करता है। ये नाशीजीव प्रकंद के अर्क को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं और जब प्रकंद तीव्र रूप से संक्रमित हो जाते हैं तो प्रकंद मुरझा कर शुष्क हो जाते हैं जिससे अंकुरण प्रभावित होता है। भंडारण से पूर्व बीज सामग्री को क्विनालफॉस (0.075%) से (20–30 मिनट तक) उपचारित करें और संक्रमण रहने पर रोपण से पूर्व भी उपचार करें। तीव्र रूप से संक्रमित प्रकंदों को भंडारित न करें।

रोग

1. **पत्ती धब्बा रोग :** इसके लक्षण तरुण पत्तियों के ऊपरी पटल पर विभिन्न आमाप के भूरे धब्बों के रूप में प्रकट होते हैं। धब्बों का आकार अनियमित और बीच में सफेद या स्लेटी रंग में होता है। इस रोग का नियंत्रण ज़िनेब (0.3%) या बोर्डो मिश्रण (1%) के छिड़काव से किया जा सकता है।
2. **प्रकंद सड़न :** छद्म तने का कॉलर क्षेत्र नरम और जल से लथपथ हो जाता है जिससे पौधा गिर जाता है और प्रकंद सड़ने लगता है। बीज प्रकंदों को भंडारण से पूर्व तथा रोपण के दौरान 30 मिनट तक मैंकोज़ेब (0.3%) से उपचार करें जिससे रोग की रोकथाम होती है। जब खेत में रोग का पता चलता है तो क्यारियों को मैंकोज़ेब (0.3%) से तर कर दिया जाना चाहिए।

फसल कटाई और संसाधन

रोपण के पश्चात् किस्म के अनुसार फसल 7–9 माह में कटाई के लिए तैयार हो जाती है। त्वरित किस्में 7–8 माह में, मध्यम किस्में 8–9 माह में तथा विलम्बित किस्में 9 माह में परिपक्व होती हैं। कटाई से पूर्व सूखी पत्तियों और तनों को जमीन तक काट लिया जाता है। आवश्यकता हो तो खेत की सिंचाई की जाती है और यदि फसल को मेड़ पर बोया गया है तो कतारों के बीच जोताई की जाती है ताकि खोद कर प्रकंदों को निकाला जा सके। प्रकंदों के गुच्छे को सावधानीपूर्वक निकाल कर इनमें लगी मिट्टी को पानी में डुबोकर साफ किया जाता है, और सुखाने से पहले इनकी जड़ों और स्केल्स को साफ कर दिया जाता है। संसाधन की गुणवत्ता और हरित उत्पाद की तुलना संसाधित सूखे उत्पाद का अनुपात मुख्यतः किस्म पर आधारित होता है। मूल प्रकंद और अंगुलिकाओं को अलग कर दिया जाता है। सामान्यतः मूल प्रकंदों को बीजों के लिए रख दिया जाता हैं और अंगुलिकाओं को बेचने के लिए प्रयोग किया जाता है।

उपज

द्वीपों में कच्ची हल्दी की औसत उपज 15 से 20 टन/है. है।

9.आम–हल्दी या आम–अदरक

अजित अरुण वामन एवं पूजा बोहरा

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

इसे सामान्यत: आम–हल्दी या आम–अदरक कहा जाता है। आम अदरक बहु–प्रयोजनीय फसल है जिसका सब्जी, मसाला, बघार एवं औषधि के लिए उपयोग किया जाता हैं। इसकी विशेषता इसमें मौजूद कच्चे आम जैसी सुगंध है जिसके कारण इसे आम–अदरक कहा जाता है। इसका उपयोग अचार, चटनी, सॉस और सलाद की तैयारी में किया जाता है। खाद्य उपयोगों के अलावा यह प्रजाति औषधीय प्रयोजनों के लिए भी जानी जाती है और इसका उपयोग दमा, फेफड़ों के रोगों तथा चर्म रोगों के उपचार में किया जाता है। ताजे प्रकंद मूत्र प्रवाह में सुधार करते हैं तथा बुखार कम करने तथा पाचन में सुधार के लिए जाने जाते हैं। द्वीपों में दो प्रजातियां हैं जिन्हें द्वीपों के विभिन्न भागों में उगाया जाता है। यह प्रजाति प्राकृतिक रूप से अंडमान के द्वीपों में पायी जाती है अतः खाड़ी के द्वीपों में इसकी खेती की अच्छी संभावनाएं हैं।

स्थान का चयन

आम अदरक प्राकृतिक रूप से द्वीपों में पाई जाती है तथा सीमांत भूमि सहित विभिन्न प्रकार की मृदाओं में पौधों को उगते देखा जा सकता है। प्रकंदों के बेहतर विकास के लिए मृदा सुराखदार एवं बेहतर निकासी वाली होनी चाहिए। विकासावस्था के दौरान जल की अधिकता पौध वृद्धि को प्रभावित करती है। खुली स्थितियों में इसका निष्पादन अच्छा होता है तथा अन्य प्रकंदीय प्रजातियों की तरह यह छायादार स्थानों पर अच्छी तरह उग सकती है। आम–अदरक का यह गुण इसे वर्तमान नारियल एवं सुपारी के बागानों में अंतर–फसल के रूप में उगाने हेतु उपयुक्त बनाता है।

किस्में

देश में इसकी वाणिज्यिक खेती के लिए एक किस्म 'अम्बा' जारी की गयी है। तथापि, विभिन्न प्रदेशों में कुछ स्थानीय किस्में अब भी लोकप्रिय हैं। द्वीपों में अब तक कोई उन्नत किस्म उपलब्ध नहीं है। तथापि, द्वीपों में पाई जाने वाली किस्मों में सभी वांछित विशेषताएं मौजूद हैं, अत: इन्हें बड़े पैमाने पर उत्पादन हेतु उपयोग किया जा सकता है।

प्रवर्धन

अदरक एवं हल्दी के समान आम–अदरक का प्रवर्धन भी प्रकंद के टुकड़ों के माध्यम से किया जाता है। सामान्यत: स्वस्थ बीज प्रकंदों को मृदा या भंडारण से निकालकर रोपण के लिए उपयोग किया जाता है। 20 से 25 ग्रा. के छोटे टुकड़ों को रोपण के लिए उपयोग किया जाता है तथा एक हेक्टेयर क्षेत्र में रोपण के लिए 1.5 से 2.0 टन बीज प्रकंदों की आवश्यकता होती है।

नक्शा एवं रोपण

रोपण के लिए भूमि को समतल बनाया जाता है और 1.2 मीटर चौड़ी, 15 से 20 सें.मी. ऊंची तथा उपयुक्त लंबाई की ऊंची क्यारियां मार्च–अप्रैल के दौरान तैयार की जाती हैं। यह ऊंचाई प्रकंदों के उचित विकास तथा अतिरिक्त जल निकासी में सहायक है। क्यारियों की तैयारी के दौरान अच्छी तरह अपघटित गोबर की खाद 20 से 25 टन/हे. की दर से डालकर मृदा में मिला दी जाती है। प्रकंद के टुकड़ों को 30 सें.मी.x 30 सें.मी. की दूरी तथा 4 से 5 सें.मी. की गहराई में वर्षाकाल के प्रारंभ में रोपा जाता है और इन्हें मिट्टी से ढक दिया जाता है।

पौषणिक प्रबंधन

जैविक खादों के अनुप्रयोग से फसल की अच्छी वृद्धि होती है, तथापि पौधा वृद्धि के लिए अजैविक उर्वरकों को भी डाला जा सकता है। रोपण के दौरान लगभग 20–25 टन/हे. गोबर की खाद का उपयोग किया जा सकता है। वासभूमि पर खेती के लिए झड़ी हुई पत्तियां, रसोई अपरद तथा अन्य बायोमास का पुनर्चक्रण किया जा सकता है।

सिंचाई एवं खरपतवार प्रबंधन

सामान्यत: आम–अदरक के लिए सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है, चूंकि फसल अपना सक्रिय जीवन चक्र वर्षाकाल के दौरान ही पूरा कर लेती है तथा बाद की सूखी अवधि प्रकंदों के संसाधन में सहायक होती है। यदि उपयुक्त रूप से स्थापित हो तो पौधे तेज गति से बढ़ते हैं तथा खरपतवारों की वृद्धि एक निम्न स्तर तक सीमित हो जाती है। तथापि, प्रकंदों की वृद्धि में सहायता के लिए फसल अवधि के दौरान हाथों से दो बार निराई आवश्यक होती है।

सस्य क्रियाएं

प्रकंदीय फसल होने के कारण प्रकंद ऊपर की ओर उठने लगते हैं, चूंकि भूमिगत भागों में निरंतर वृद्धि होती है। इससे प्रकंदों पर सूर्य प्रकाश की किरणें पड़ती हैं तथा उपज काफी हद तक घट जाती है। इसकी रोकथाम के लिए दो–तीन बार गुड़ाई की जाती है ताकि बाहर निकले प्रकंदों को विशेषकर भारी वर्षा के दौरान मिट्टी में दबा दिया जा सके।

कीट नाशीजीव तथा रोग प्रबंधन

द्वीप में इस फसल के संदर्भ में कोई विशेष कीट एवं रोग नहीं देखे गए हैं।

खोदाई एवं उपज

यह फसल 6–8 माह में खुदाई के लिए तैयार हो जाती है तथा फसल की परिपक्वता का निर्धारण पत्तियों के सूखने के आधार पर किया जाता है। सभी पत्तियां सूख जाने के पश्चात सावधानपूर्वक कुदाल के उपयोग से प्रकंदों को निकाल लिया जाता है ताकि कोई क्षति न हो। खेती के लिए उपयोग की गई प्रजातियों तथा विकास की स्थितियों के अनुसार उपज में भिन्नताएं होती हैं। फसल चक्रण पूर्ण होने के पश्चात 20–30 टन प्रति हेक्टेयर ताजे प्रकंद प्राप्त हो सकते हैं। इन प्रकंदों को मिट्टी एवं मैल निकालने हेतु पानी से धो दिया जाता है और 2–3 दिनों तक छांव में सुखाया जाता है ताकि बाहरी परत सूख जाए और जिससे भंडारण का समय बढ़ सके। बीज प्रकंद के प्रयोजन के लिए कभी–कभी प्रकंदों को उसी प्रकार मिट्टी में अगली ऋतु तक छोड़ दिया जाता है। प्रकंदों को रेत में भंडारित किया जा सकता है तथा भंडारण के दौरान सड़न से बचने के लिए इन्हें जल से परिरक्षित किया जाना आवश्यक है।

10.आम

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

आम विश्व के सबसे महत्त्वपूर्ण उष्णकटिबंधीय फलों में से एक है और इसे फलों का राजा कहा जाता है। आम की उत्पत्ति इण्डो–बर्मीज क्षेत्र तथा फिलिपीन्स से हुई है। पके फल में कार्बोहाइड्रेट की प्रचुर मात्रा होती है जिसमें शर्करा की मात्रा 16.9 प्रतिशत है। इनमें 0.6% प्रोटीन, 0.4% खनिज (प्रति 100 ग्रा. में कैल्सियम 14 मि.ग्रा., फास्फोरस 16 मि.ग्रा., लौह 1.3 मि.ग्रा.) और 0.7% रेशा होता है। द्वीप में विद्यमान तटीय जलवायु के कारण द्वीपों के अलग–अलग हिस्सों में बहुमौसमी बहुभ्रूणीय प्रकार के आम देखे जा सकते हैं।

मृदा/ भूमि का चयन

आम, अनिवार्य रूप से एक उष्णकटिबंधीय फसल है और इसे समुद्र तल से लेकर लगभग 140 मीटर की ऊँचाई तक उपोष्ण जलवायु में भी उगाया जा सकता है। पुष्पण की अवधि के दौरान यह फसल उच्च आर्द्रता, वर्षा और पाले को नहीं झेल सकती है। अच्छी फसल के लिए उपयुक्त वार्षिक औसत तापमान 21^0 से. से 27^0 से. है। फल विकास के दौरान अधिकतम तापमान फल की गुणवत्ता, आकार और परिपक्वता को बढ़ाता है। पुष्पण से पूर्व भारी वर्षा से अत्यधिक वानस्पतिक विकास होता है जिससे पुष्पण रूक जाता है। बार–बार वर्षा और उच्च आर्द्रता से नाशीजीवों और रोगों की समस्याएं बढ़ जाती हैं। पुष्पण के दौरान शुष्क ठंडा मौसम और उसके बाद गरमी का मौसम और कटाई के बाद अच्छी वर्षा आम की खेती के लिए बेहतर होती है।

चिकनी मिट्टी, काली मिट्टी, अत्यंत बलुई, कैल्शियमयुक्त, क्षारीय और जल जमाव वाली मृदाओं के अलावा विभिन्न प्रकार की मृदाओं में आम उगाया जा सकता है। आम के लिए हल्की अम्लीय मृदा को वरीयता दी जाती है। 2.0 से 2.5 मी. तक गहरी और पूरी तरह सूखी हुई मृदा बेहतर फसल के लिए आवश्यक है।

प्रवर्धन

आम का प्रवर्धन मुख्यत: कलम लगाकर किया जाता है। कलम लगाने की मुख्यत: दो विधियां प्रचलित हैं और वे हैं – इनार्चिंग और गुठली रोपण कलम।

इनार्चिंग या एप्रोच रोपण (कलम)

9 माह से 1 वर्ष पुराने मूलवृंत को उस कलम के साथ बांध दिया जाता है जो मूल पौधे से जुड़ी हुई हो। मूलवृंत में भूमि से 20 सें.मी. ऊपर, 5 सें.मी. लंबी छाल लकड़ी सहित काट ली जाती है और कलम में भी उसी दर से कट लगाया जाता है ताकि दोनों कटी हुई सतहों को जूट के धागे से मजबूती से बाँधकर रखा जा सके। बंधे हुए हिस्से को गाय के गोबर और मिट्टी के लेप से ढक दिया जाता है। रोपण के 70–80 दिनों बाद कलम को मूल पौधे से अलग कर लिया जाता है।

गुठली रोपण

गुठली के लगभग 5 सें.मी. ऊपर पौध को काटकर 10 से 15 दिन में कलम लगायी जाती है। सिरों को काटे गए उर्ध्वाधर विभाजन में कीलवत अंकुरों का प्रवेश कराया जाता है। कलमों के संधि स्थल को बांधने के लिए 200 गेज मोटे पॉलीथीन टेप का उपयोग किया जाता है। अच्छी सफलता के लिए कलम लगाए गए पौधों को अधिक नमी वाले मिस्ट चैंबर में रखा जा सकता है।

खेत की तैयारी एवं रोपण

रोपण से 15 दिन पूर्व खेत में 90x90x90 से.मी. आकार के गड्ढों को 10 मी.x10 मी. या 10 मी.x8 मी. की दूरी पर खोदने से पूर्व खेत को अच्छी तरह दो बार जोता जाता है। ऊपरी मिट्टी में 30 कि.ग्रा. भली–भांति अपघटित गोबर की खाद मिलायी जाती है और इस मिश्रण को गड्ढ़ों में भर दिया जाता है। जिन क्षेत्रों में दीमक की समस्या है, वहां मिट्टी 150 ग्रा. एल्ड्रिन डस्ट/गड्ढा मिलायी जाती है।

मानसून पूर्व अवधि के दौरान रोपण किया जाता है। शुष्क और गर्म महीनों से आमतौर पर बचा जाता है। कलम को गड्ढ़े के बीचों–बीच रोपित करना चाहिए। मिट्टी के गोले टूटने नहीं चाहिए और कलम का जोड़ जमीन की सतह से ठीक ऊपर रहना चाहिए। खासतौर पर शाम के समय रोपण किया जाता है और रोपण के तुरंत बाद पौधों को जल दिया जाना चाहिए। पौधों को तेज हवाओं से होनी वाली क्षति से बचाकर रखना चाहिए।

खाद डालना

सामान्यत: रोपण के एक वर्ष बाद रासायनिक उर्वरकों का उपयोग किया जाता है। प्रति वृक्ष प्रति वर्ष 162.75 ग्राम यूरिया, 687.5 ग्रा. सुपर फॉस्फेट और 116.2 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश की सिफारिश की जाती है और फल लगने तक प्रत्येक वर्ष इसी मात्रा को बढ़ाकर उपयोग करना चाहिए। फलदार वृक्षों के लिए जून–जुलाई और अक्टूबर के दौरान दो खुराकों में पोषक तत्व डाला जाना चाहिए।

प्रारंभिक वर्षों के दौरान उर्वरकों को मिलाकर तने से 45 सें.मी. दूर 30 सें.मी. की गहराई में डाला जाता है। जब वृक्ष की शाखाएं फैलने लगती हैं तब छोटी जड़ों का भी विस्तार होता है। फीडर जड़ तने से लेकर ड्रिप लाइन तक आधी से तीन चौथाई दूरी के बीच होती हैं। इस क्षेत्र में एक छिछला घेरा बनाया जाता है तथा गोबर की खाद एवं उर्वरकों के मिश्रण को इस घेरे में फैलाकर इसे ऊपरी मिट्टी से ढक दिया जाता है।

सिंचाई

फलों के बेहतर विकास और अच्छी उपज के लिए 10 से 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करने की आवश्यकता होती है। तथापि, अच्छे पुष्पण के लिए पुष्पण अवधि से कम से कम 2 से 3 माह पूर्व सिंचाई बंद कर देनी चाहिए।

कार्यिकीय विकार

आम की विकृति एक गंभीर कार्यिकीय विकार है जिससे पुष्पवृन्त् वानस्पतिक प्ररोह बन जाता है। यह मुख्य रूप से मालफॉर्मिन्स नामक जैवरसायन के कारण होता है। इसे नियंत्रित करने के लिए पुष्पगुच्छ निकलने के समय से 10 दिनों के अंतराल पर तीन बार ग्लूटाथिओन 200 पी.पी.एम. या एस्कोर्बिक एसिड 100 पी.पी.एम. जैसे रसायनों का छिड़काव किया जाना चाहिए। ऐसा करने पर विकृत पुष्पगुच्छ भी सामान्य. पुष्पगुच्छ बन जाते हैं और उनमें फल लगने लगते हैं।

अनियमित फल मटर के दाने वाली फल लगने का एक ऐसा क्रम है जिसमें एक वर्ष में काफी अधिक उपज होती है और उसके बाद के वर्ष में कम उपज या कोई उपज ही प्राप्त नहीं होती है। इसे विशेष रूप से अल्टरनेट बियरिंग कहा जा सकता है। यह गुण प्रजाति विशेष होता है। क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन, मृदा पोषक तत्वों में असंतुलन और पेड़ की टहनियों में इन पोषक तत्वों, मुख्य रूप से कार्बोहाइड्रेट/नाइट्रोजन और हार्मोनल तत्वों के संतुलन में बदलाव इसके कारण हो सकते हैं। इसके लिए किसी एक कारण को इंगित नहीं किया जा सकता है। दोषपूर्ण उपज से बचाव के लिए निम्नलिखित विषयों पर सावधानी बरतनी चाहिए :

- स्थान विशेष की नियमित रूप से उपज देने वाले किस्मों का चयन करें। दक्षिण भारतीय स्थितियों में नीलम और बैंगलोरा नियमित रूप से फल देने वाली किस्में हैं जो किसी खास वर्ष में मौसम में परिवर्तन से ज्यादा प्रभावित नहीं होती हैं।
- बीच के खाली स्थान में नियमित रूप से जोताई, उचित समय पर खाद व सिंचाई का प्रबन्ध करना चाहिए ।
- पौधों को नियमित संरक्षण दिया जाए ताकि नाशीजीव से फलों को कोई नुकसान न हो। यदि किसी मौसम में फल नहीं लगता है तो चक्र में फंसने की संभावना है।
- फलों की उचित छंटाई से अत्यधिक उत्पादन को रोकें अन्यथा पोषक तत्व एवं संचित भोज्य पदार्थ समाप्त हो जाएंगे।
- यदि पेड़ का आकार अधिक घना है, तो ऊपरी टहनियों की छंटाई करने पर किसी एक मौसम में गैर–पुष्पण पर रोक लग जाएगी अन्यथा इससे अनियमित रूप से फल लगना प्रारम्भ हो जाएगा।

पौध संरक्षण

नाशीजीव

1. मैंगो हॉपर

पुष्पण के दौरान यह सबसे अधिक हानिकारक कीट है। फरवरी तक ये कीट छाल की दरारों में छिपे रहते हैं और पुष्पण अवधि के दौरान सक्रिय हो जाते हैं। वयस्क और शिशुकीट दोनों नुकसानदायी होते हैं। वे तरूण टहनियों और पुष्पगुच्छों से रस चूस लेते हैं। फूल मुरझा जाते हैं और फलों पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अंडनिक्षेपण द्वारा हुई क्षति स्थिति को और गंभीर बना देती है। वे मधुरस तैयार करते हैं जिससे पत्तियों और पुष्पगुच्छों पर कज्जली फफूंदी विकसित हो जाती हैं।

प्रबंधन:

पुष्पगुच्छ लगने के दौरान पहली बार और फल लगने के दौरान दूसरी बार मेलाथिओन (0.15%) का छिड़काव करें।

2. मीली बग

मादा बग मई के दौरान पेड़ के तने के चारों ओर 5–15 सें.मी. की गहराई तक मिट्टी के ढेलों में अंडे देती है। शिशु कीट दिसंबर–जनवरी में उत्पन्न होते हैं और पेड़ पर चढ़ना शुरू कर देते हैं जहां वे एक साथ मिलकर तरूण टहनियों, पुष्पगुच्छ और फूलों के डंठलों से रस चूसने लगते हैं। प्रभावित क्षेत्र सूख जाता है और उपज में काफी कमी आती है।

प्रबंधन:

- गर्मी के दौरान तने के चारों ओर खुदाई करके यदि अंडों को नष्ट कर दिया जाता है तो मीली बग से होने वाली क्षति से बचा जा सकता है।
- दिसंबर के दौरान जमीन की सतह के ऊपर पेड़ के तने के चारों ओर चिपचिपी पट्टी (1:2 के अनुपात में ग्रीज और कोलतार, 4: 5 के अनुपात में गोंद और अरंडी) या अल्काथिन की 30 से 45 सें.मी. चौड़ी चिकनी पट्टी लगाई जानी चाहिए।
- कार्बेरिल (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव।

3. तना बेधक

यह कीट मुख्य तना या इसकी शाखाओं में सुराख बनाकर पौधे को कमजोर कर देता है और गंभीर स्थिति में पौधे मर भी सकते हैं। सुराख वाले हिस्से से नि:स्त्रावित मल के सख्त पिंड (छोटे आकार की) इस कीट की मौजूदगी को दर्शाता है।

प्रबंधन:

इस कीट की रोकथाम के लिए सख्त तार से सुराखों की सफाई करें, व इसमें केरोसिन तेल, पैट्रोल, क्रूड ऑयल या फॉर्मेलिन डालें। बाद में उपर्युक्त में से किसी एक में रूई के गोले को भिगाकर इस सुराख को भर दें और गीली मिट्टी से प्रवेश द्वार को बंद कर दें।

4. फ्रूट फ्लाई

यह एक हानिकारक कीट है क्योंकि संक्रमित फल के गूदे में कीड़ों की मौजूदगी के कारण वे उपभोग योग्य नहीं रह जाते हैं। यह फलों के पकने से ठीक पहले इनके छिलकों के अंदर 150–200 के समूह में अंडे दे देती है। प्रभावित फल सड़ने लगते हैं और फिर टूटकर नीचे गिर जाते हैं।

प्रबंधन:

क्षतिग्रस्त फलों को एकत्रित करके उन्हें गर्म पानी में डालकर या जमीन में उन्हें गहराई से दबाकर इन पर नियंत्रण पाया जा सकता है। अंड निक्षेपण की अवस्था के प्रारंभ से ही 15 दिनों के अंतराल पर तीन बार फेंथिऑन (0.05%) का छिड़काव करें। चौड़े मुंह वाले बर्तनों में विषाक्त चारा प्रति हेक्टेयर 10 बर्तनों की दर से रखकर और 100 भाग पानी में 24 भाग शीरा भरकर रखने पर कीट को नियंत्रित किया जा सकता है। गर्मी के दौरान पेड़ के बेसिनों की जोताई की जानी चाहिए।

5. गुठली छेदक कीट

यह घुन विशेष तौर पर मीठी किस्मों को नुकसान पहुंचाते हैं। आंशिक रूप से विकसित फलों में अंडे दिए जाते हैं। कोवा गूदे से होते हुए गुठली के बीचो–बीच प्रवेश कर जाते हैं जहां इनके प्यूपे और व्यस्क गूदे और गुठली को छेदकर बाहर आ जाते हैं।

प्रबंधन:

- अगस्त महीने में छाल की दरारों और छिद्रों में व्यस्कों को नष्ट कर दें।
- संक्रमित छाल को केरोसिन घोल से साफ करें।
- गिरी हुई पत्तियों को हटाते हुए तने के चारों ओर के बेसिन को साफ रखें।
- पेड़ के तनों पर 0.05 प्रतिशत डैजियोन का छिड़काव करें।

रोग

1. पाउडरी मिल्ड्यू

लक्षण :

पत्तियों, फूल के डंठलों और फलों पर इसके लक्षण देखे जा सकते हैं। हरी पत्तियों पर पाउडर जैसा संक्रमण दिखता है। पत्तियां पीली पड़कर सूख जाती है। ये रोगाणु कली के सिर, पुष्प वृन्त, फूल की कलियों और कच्चे फलों पर धावा बोलते हैं और समय से पूर्व ही इन्हें झड़ाकर गिरा देते हैं। गंभीर अवस्था में सम्पूर्ण पुष्प वृन्त भूरे से काला होकर सूख जाता है।

प्रबंधन:

- पुष्पण के दौरान प्रति हेक्टेयर 0.5 कि.ग्रा. की दर से 250–300 मे फाइन सल्फर और 0.2% डब्ल्यू .पी की दर से कार्बारिल डस्ट से डस्टिंग करें।
- वेटेबल सल्फर 0.2 प्रतिशत या कार्बेंडाजिम 0.1% प्रतिशत या ट्राइडमॉर्फ 0.1% का छिड़काव करें।

2. एंथ्रेक्नोज

पत्ती पर धब्बे, मंजरी पर चित्ती, मुरझाए हुए अग्रभाग, टहनियों पर चित्ती और फलों का सड़ना जैसे पांच तरह से लक्षण देखे गए हैं।

प्रबंधन:

पौधे के संक्रमित हिस्से को अलग करके नष्ट कर दिया जाए। कटाई होने तक साप्ताहिक अंतराल पर कार्बेंडाजिम या थियोफैनेट–मिथाइल (0.1%) या 0.2% क्लोरथैलोनिल या मैंकोजेब 0.2% का छिड़काव करें। फल को 15 मिनट के लिए 50–55^0 से. तापमान पर गर्म पानी में धोएं या 5 मिनट तक 500 पी.पी.एम. बेनोमील या कार्बेंडांज़िम में डुबा कर रखें। फल को कुछ मिनटों के लिए अमोनिया या सल्फर ऑक्साइड या कार्बन डाइऑक्साइड के प्रभाव में रखें।

कटाई

जब 1 या 2 पके फल सामान्य रूप से पेड़ से टूटकर नीचे गिर जाते हैं, तब फलों की जांच की जाती है। रंग में हल्का परिवर्तन आता है और परिपक्वता परिलक्षित होती है। परिवेश भंडारण स्थितियों के अंतर्गत पके फलों को 5–7 दिनों तक भंडारित किया जा सकता है। 5.6^0 से. से 7.2^0 से. तापमान और 85–90% में सापेक्षिक आद्रता भंडारण की अवधि को बढ़ाकर 4–7 सप्ताह किया जा सकता है।

उपज

किस्मों और वृक्षों की आयु के आधार पर उपज में भिन्नता होती है। सामान्यत: एक 10 वर्षीय वृक्ष में प्रति वर्ष 400–600 फल लगते हैं। आम की औसत उपज प्रति हेक्टेयर लगभग 8 टन होती है।

11.कागज़ी नींबू

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

नींबू वर्गीय फलों में संतरा, नींबू, कागजी नींबू, चकोतरा मुसम्बी आदि शामिल हैं। दक्षिणी पूर्व एशियाई क्षेत्र मूल रूप से उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण क्षेत्र होने के कारण दक्षिणी चीन, मलाया और असम के निचले हिमालयी भागों में प्राचीन समय से इनकी खेती की जा रही है। आम और केले के बाद नींबू वर्गीय भारत में तीसरा सबसे महत्त्वपूर्ण फलों का समूह है। इनमे से कागजी नींबू का प्रयोग देश के लगभग हर भाग में किया जाता है। इसे खट्टा नींबू भी कहा जाता है। इस फल में सिट्रिक एसिड और विटामिन 'सी' की प्रचुर मात्रा होती है।

जलवायु एवं मृदा

कागजी नींबू उष्णकटिबंधीय जलवायु का फल है और अन्य नींबू वर्गीय फलों की अपेक्षा शीत से इसे ज्यादा नुकसान पहुंचता है। अधिकतम तापमान 20^0 से. से 30^0 से. है। समुद्र तल से 1500 मी. तक की ऊंचाई में कागजी नींबू को उगाया जा सकता है। बेहतर वृद्धि और उपज के लिए 6.5 से 7.0 पीएच वाली भली–भांति सूखी मृदा इसके लिए बेहतर होती है।

प्रजातियाँ

कागजी नींबू और पी.के.एम.–1 महत्त्वपूर्ण किस्में हैं।

प्रवर्धन

कागजी नींबू की व्युत्पत्ति मुख्यत: बीजों से होती हैं। बीजों को निकाले जाने के तुरंत बाद (कम से कम 3 दिनों के भीतर) जमीन की सतह से ऊंची नर्सरी की क्यारियों में इन्हें बो दिया जाना चाहिए क्योंकि वे अपनी अंकुरण क्षमता तेजी से खोने लगते हैं। कागजी नींबू को ग्राउंड और एयर लेयरिंग के द्वारा भी उगाया जा सकता है। रंगपुर लाइम और रफ लेमन पर पैच बडिंग करके भी कागजी नींबू की कलम बनायी जा सकती है।

खेत की तैयारी एवं रोपण

खेतों को 2 से 3 बार जोता जाता है और मृदा की उर्वरता और किस्म के आधार पर 3.6 x 3.6 मी. या 4.5 मी. की दूरी रखते हुए 75 घन सेंटीमीटर गहराई के गड्ढे खोदे जाते हैं। प्रारंभ में 3 मी. x 1 मी. की दूरी रखी जा सकती है और लगभग 8 वर्षों के बाद वैकल्पिक कतार को हटा दिया जाता है। इससे शुरूआती वर्षों में उपज बढ़ती है। गड्ढ़ों को टॉप सॉयल और 20 कि.ग्रा. गोबर की खाद से भरने के बाद, पौध (10–12 माह पुराने) या एयरलेयरों को गड्ढे के बीचों–बीच रोपित किया जा सकता है और बांस की बेंत का सहारा प्रदान किया जाता है ताकि यह हवा से गिर न सके। रोपण के तुरंत बाद गड्ढों की सिंचाई की जाती है।

खाद

नींबू के एक फलदार वृक्ष में 1300 ग्रा. यूरिया, 1870 ग्रा. सूपर फॉस्फेट और 500 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश के साथ–साथ 50 कि.ग्रा. गोबर की खाद डाली जानी चाहिए। सामान्यत: रोपण के चौथे वर्ष से इस मात्रा की जरूरत होगी। पहले वर्ष के दौरान उपर्युक्त मात्रा की एक चौथाई, दूसरे वर्ष के दौरान आधी और तीसरे वर्ष के दौरान तीन चौथाई मात्रा की जरूरत होगी। कुल पोषक तत्वों को दो समान भागों में बांट दिया जाना चाहिए और पहला डोज़ जून–जुलाई के दौरान और दूसरा डोज़ नवंबर–दिसंबर के दौरान डाला जाना चाहिए। उर्वरकों और खादों को मिला लिया जाता है और तने से 60 से.मी. दूर प्रयोग किया जाता है।

सस्य क्रियाएं

सामान्य रोपण प्रणाली में, दलहन जैसे उड़द, लोबिया या सब्जियाँ जैसे कद्दू (शीत ऋतु में बीन्स और गाजर) अंतर फसल के रूप में उगाई जा सकती हैं। 1–2 महीने के लिए सिंचाई पर रोक लगाकर पुष्पण को नियमित किया जा सकता है और दोबारा प्रभाव को कम कर दिया जाता है जिससे फूल निकलने लगते हैं। किंतु अत्यधिक प्रभाव डालने से अधिक पुष्पण शुरू होने लगेगा, फल की पैदावार कम होगी और पौधे के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ेगा। नई पत्तियाँ आने पर 500 पैक्लोबुट्राजोल (पीपी 333) का प्रयोग अत्यधिक पुष्पण को प्रोत्साहित करेगा। पेप्पर स्टेज के दौरान 20 पीपीएम की दर से 2,4,5–टी का प्रयोग करने पर फलों का गिरना रूक जाएगा।

सिंचाई प्रबंधन

उष्णकटिबंधीय स्थितियों में कागजी नींबू के लिए प्रति वर्ष 875 मि.मी. जल की आवश्यकता होती है। आर्द्र महीनों के दौरान प्रति पौधा को प्रति दिन 50–60 लीटर तथा गर्मी के महीने में 90–100 लीटर जल की आवश्यकता होती है। सिंचाई

के जल में क्लोराइड की मात्रा 100 पीपीएम से अधिक नहीं होनी चाहिए। मृदा नमी में कमी से पौधे के विकास के साथ ही पुष्पण, फल लगने, फलों की वृद्धि तथा फलों में रस बनने जैसे महत्त्वपूर्ण चरणों पर हानिकारक प्रभाव पड़ेगा।

खरपतवार नियंत्रण

प्रति हैक्टेयर 3 कि.ग्रा. डाइयूरोन का उपयोग और उसके बाद बीच के स्थानों में 1.5 लीटर ग्रैमेक्सोन का पोस्ट इमर्जेंट प्रयोग से खरपतवार को नियंत्रित किया जा सकता है।

कटाई

यद्यपि कागजी नींबू की कटाई वर्षभर की जा सकती है, परंतु मुख्य फसल की कटाई देश के विभिन्न भागों में अलग–अलग समय में की जाती है। कागजी नींबू को 18^0 से. पर भंडारित किया जा सकता है। ईंट की दोहरी परत वाला एक जीरो एनर्जी कूल चैम्बर–किफायती स्टोरेज टैंक बनाया जाता है, खाली जगह को बालू से भर दिया जाता है जिसे समय–समय पर पानी डालकर भिगाया जाता है ताकि कागजी नींबू को भंडारित किया जा सके।

उपज

औसत उपज प्रति वृक्ष प्रति वर्ष 20–25 कि.ग्रा. है।

12.पपीता

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

पपीता उष्णकटिबंधीय अमेरिकी मूल की स्थानीय प्रजाति है तथा इसे देश के लगभग सभी उष्णकटिबंधीय व उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उगाया जाता है। पपीता पोषक तत्वों से भरपूर एक बहुत ही पौष्टिक, औषधीय गुणों वाला तथा विटामिन ए से समृद्ध, मध्यम स्तर का विटामिन सी तथा खनिज तत्वों से भरपूर फल है। पपीता एक मूल्यवान एंजाइम 'पपेन' उत्पन्न करता है जो मांस को नरम बनाने, प्रसाधन व चबाने वाली गम बनाने, चर्म शोधन उद्योग में बेटिंग कम्पाउंड बनाने, प्राकृतिक रेशम के विगोदन करने, बीयर साफ करने तथा मेडिकल में पाचन, अल्सर, व डिप्थीरिया के रोगों के औषधियों में उपयोगी है। पपीते के पेड़ के लिए बहुत कम जगह की आवश्यकता होती है और इसे उगाना बहुत आसान है।

जलवायु और मृदा

पपीता गरम व नमीयुक्त उष्णकटिबंधीय जलवायु में समुद्र तल से 1,000 मी. की ऊंचाई तक खूब फलता फूलता है। यद्यपि, पपीता उत्पादन में उपजाऊ मृदा को वरीयता दी जाती है, परन्तु इसे उचित खाद व जल तथा उचित जल निकास की सुविधा के साथ अनेक प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है। पपीता कैल्सियम युक्त, काली व भारी मृदाओं में अच्छी तरह फल फूल नहीं सकते हैं। यह कुछ घंटो के लिए भी जल भराव दशा को सहन नहीं कर सकता है। पपीते के विकास के लिए मृदा का पीएच स्तर 6.5 से 7.0 तक उपयुक्त होता है।

प्रवर्धन एवं नर्सरी

पपीते को मुख्यत: बीजों से उगाया जाता है। चूंकि यह अत्यंत पर–परागण वाली फसल है, इसलिए बीजों से उगाए गए पौधों में मिश्रित वंशागति होती है, जिससे उनके निष्पादन में बहुत ही भिन्नताएं होती है। अत: यह महत्त्वपूर्ण है कि आनुवंशिक रूप से शुद्ध बीज का उपयोग किया जाना चाहिए। एक हैक्टेयर क्षेत्र में फसल उगाने के लिए लगभग 500 ग्रा. बीजों की आवश्यकता होती है। पौधों को नर्सरी की क्यारियों, अंकुरण ट्रे व पॉलीथीन बैग में उगाया जा सकता है। इनमें से पॉलीथीन बैग में उगाए गए नवोद्–भिद पौधे अच्छे होते हैं। गइनोडयोसियस पपीते के लिए दो बीज तथा एकलिंगीय किस्म के पपीतों के लिए पांच से छ: बीज गमले के मिश्रण से भरे पॉलीथीन बैग में 1 से.मी. गहराई में बोए जाते हैं। बीज बोने के तुरंत बाद जल दिया जाता है और इसके बाद अंकुरण तक रोजाना दिन में दो बार जल दिया जाता है। इसके बाद मृदा में नमी की मात्रा के अनुसार 2 से 3 दिन में एक बार जल देना जारी रखना चाहिए। बीजों का अंकुरण 15–20 दिनों में प्रारम्भ हो जाता है। बुवाई के 45–50 दिनों के बाद अंकुर रोपण के लिए तैयार हो जाते हैं।

रोपण की अवधि और पद्धति

खेत को बार बार जोताई कर के तैयार करना चाहिए। खेत को समतल करने के बाद 50 घन से.मी. माप के गढ्ढे 1.8 x 1.8 मी. दूरी पर बनाए जाते हैं। गड्ढे ऊपरी मिट्टी और गोबर की खाद 3:1 के अनुपात में भर दिए जाते हैं। नवोद्–भिद पौधों के पॉलीथीन बैगों की नीचे की तह को काट कर पॉलीथीन बैग सहित गड्ढों में रोपित कर दिया जाता है। जब तक नर व मादा पौधो की पहचान न हो जाए तब तक प्रत्येक गड्ढे में कम से कम 4 नवोद्–भिद पौधे रखे जाने चाहिए। अंतत: एक लिंगीय किस्म में एक गड्ढे में एक मादा पौध तथा 10–15 मादा पौधों के लिए एक नर पौधा रखा जाना चाहिए। सामान्यत: मादा पेड़ की तुलना में नर पेड़ में शीघ्र फूल आते हैं तथा विभाजित डंठल सहित झूलता हुआ पुष्प वृन्त होता है।

खाद देना

शीघ्र वृद्धि के कारण पपीते का पोषण अन्य फलों से भिन्न होता है। यह लगातार व भारी उपज देता है। रोपाई के दौरान, ऊपरी मिट्टी के साथ साथ 5 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 100 ग्रा. नीम की खली तथा 40 ग्रा. सुपर फॉस्फेट को आपस में मिलाकर गड्ढे में भर देना चाहिए। नर व मादा पौधों की छंटाई के बाद एनपीके की प्रत्येक पौधे को 50 ग्रा. एन.पी.के. मिश्रण (110 ग्रा. यूरिया, 310 ग्रा. सुपर फॉस्फेट तथा 80 ग्रा.पोटाशियम म्यूरेट) प्रथम खुराक के रूप में दिया जाना चाहिए। दो महीने के अंतराल पर इसी प्रकार की एक खुराक देते रहना चाहिए।

सिंचाई प्रबन्धन

पपीते के फलों का तेज गति से विकास एवं अच्छी उपज के लिए नियमित रूप से सिंचाई करने की आवश्यकता है। एक सप्ताह के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए, परन्तु जल भराव से बचना चाहिए।

खरपतवार प्रबन्धन

पपीते के खेत में खरपतवार प्रचुर मात्रा में उग आते हैं और दिए गए पोषक तत्वों को खींच लेते हैं। प्रारम्भ में वे सूर्य की रोशनी, वायु व पानी के लिए भी प्रतिस्पर्धा करते है, जिसमें कम फल लगते हैं पहले कुछ महीनों के लिए खरपतवार की रोकथाम के लिए गहरी गुड़ाई की सिफारिश की गई है। बरसात के मौसम में खरपतवारों की अधिक वृद्धि के कारण जल भराव की स्थिति बन जाती है जिससे फसल की जड़ें और तने गलने लगते हैं। इसलिए खतपतवार नियंत्रण खासकर पौधों के समीप नियमित रूप से करते रहना चाहिए। रोपण के 2 महीने बाद खरपतवार उभरने से पूर्व फ्लूक्लोरिन या एलाक्लोरिन का छिड़काव करने से खरपतवारों को 4 माह तक नियंत्रित किया जा सकता है।

अंतर फसलीय क्रियाएँ

फल लगने से पहले प्याज, टमाटर व लोबिया को अंतर–फसल के रूप में उगाया जा सकता है। एकलिंगीय किस्मों में अच्छे परागण के लिए पपीते के बागानों में 10% नर पौधों को रखना आवश्यक है और जैसे ही पेड़ पर फल लगते हैं, अतिरिक्त पौधों को उखाड़ दिया जाता है।

पादप संरक्षण

नाशीकीट एफिड्स:- ये कीट तना, डंठलो एवं पत्तियों को संक्रमित करते है और उनका रस चूस लेते हैं जिसके परिणामस्वरुप काफी हानि पहुँचती है। ये पौधों के नए कोमल भागों को प्रभावित करते हैं। ये पपीते के मोजेक वाइरस के वाहक होते हैं।

प्रबन्धन

मिथाइल डीमेटोन का 500 मि.ली/हे. की दर से छिड़काव करें।

सफेद मक्खी

ये अधिकांशत: पत्तियों की निचली सतह पर रहती है और उनका रस चूसकर काफी हानि पहुँचाती है। ये पत्ती मुड़न वाइरस के वाहक के रूप में काम करती हैं।

प्रबन्धन

फॉस्फोमिड़ोन का 500 मि.ली./है. दर से छिड़काव करें।

रोग

फुट रॉट/ स्टेम रॉट

यह रोग 2–3 वर्ष आयु वाले पेड़ों में काफी गंभीर होता है। भूमि सतह से ऊपर तने की छाल पर जल से लथपथ घाव दिखाई पड़ते हैं। प्रभावित ऊतक काले रंग में बदलकर तने को तवेनुमा बना देता है। ऊपरी पत्तियाँ पीली पड़कर झड़ जाती हैं और फल सिकुड़कर गिर जाते हैं। जड़ के ऊतकों को नुकसान होने के कारण पूरा पेड़ गिरकर मर जाता है तथा आंतरिक ऊतक सूखे प्रतीत होते है तथा मधुकोष की तरह दिखाई देते है। प्रभावित जड़ काली होकर अलग-थलग हो जाती है।

प्रबन्धन

क) संक्रमित पौधों को हटाकर नष्ट करना।

ख) निचले क्षेत्रों में रोपण करने से बचें।

ग) उचित जल निकासी की व्यवस्था करें।

घ) भूमि के निकट तने पर 0.1% रिडोमिल या 1% बोर्डो मिश्रण का उपयोग करें।

पाउडरी फफूंद

पत्तियों, कोमल प्ररोह पुष्पवृन्त पर पाउडरी फफूंद का विकास देखा जा सकता है। रोग की तीव्रता बढ़ने पर पत्तियाँ एवं फल गिरने लगते हैं।

प्रबन्धन

सल्फर डस्ट 25 कि.ग्रा./है. या कार्बेंडांज़िम 500 ग्रा./है. का छिड़काव करें।

शुष्क तना सड़न

पत्तियाँ पीली पड़ कर झड़ जाती हैं। जड़ तंत्र सूखकर अलग थलग हो जाता है। छाल टूटने लगता है और सम्पूर्ण पेड़ में सूखापन दिखाई देता है।

प्रबन्धन

क) संक्रमित पौधों को हटाकर नष्ट करना।

ख) 1% बोर्डो से या 0.1% कार्बेंडांज़िम से ड्रेनचिंग करें।

पत्ती धब्बा रोग

धब्बे गोल, अनियमित एवं लम्ब वत होते हैं। मध्य भाग में सफेद और पीलेपन या भूरे मार्जिन होते हैं। धब्बे का मध्य भाग कागज जैसा पतला हो कर गिर जाता है।

प्रबन्धन

1% बोर्डो मिश्रण, 0.2% कॉपर-ऑक्सीक्लोराइड, 0.25% मैंकोजेब, 0.1% कार्बेंडांज़िम का छिड़काव करें।

तुड़ाई एवं तुड़ाई उपरांत प्रबन्धन

फलों को पूर्ण रूप से पकने तक उन्हें पेडों पर लगे रहने देना चाहिए। आमतौर पर फलों की तुड़ाई तब की जाती है जब वे पूरे आकार के, अग्रभाग का रंग हलके हरे से हलके पीले रंग का हो जाता है। पकने पर कुछ जातियाँ पीले रंग में बदल जाती हैं जबकि उनमे से कुछ हरी बनी रहती हैं। जब लेटेक्स दूधिया बनना बंद होकर पानीनुमा होता है तब फल तुड़ाई योग्य हो जाता है। पेड़ से फल तोड़ते समय इस बात का ध्यान रखें कि उन पर खरोंच व दाग न पड़ें। फलों को एक एक करके हाथों से बिना क्षति पहुंचाए तोड़ना चाहिए।

उपज

औसतन उन्नत किस्म के एक पौधे से एक मौसम में 30–45 फल प्राप्त होते हैं जिनका वजन 40–75 कि.ग्रा. होता है। औसतन एक मौसम में पपीते के एक बगीचे से 60–75 टन/ है. उपज प्राप्त होती है।

13.अमरूद

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

अमरूद उष्णकटिबंधीय अमेरिकी मूल का फल है। उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्ण जलवायु में उगाया जाने वाला अमरूद का फलदार पेड़ एक कठोर, दीर्घायु तथा अपेक्षाकृत कम देखभाल की आवश्यकता वाला पेड़ है। जब अमरूद पूर्णरूप से पक जाता है तो यह बड़ा स्वादिष्ट होता है। इससे एक मीठी सुगंध निकलती है तथा इसमें मीठा, ताजगी भरा अम्लीय गूदा होता है। यह विटामिन–सी (200 से 300 मि.ग्रा./100 ग्रा. खाने योग्य भाग) तथा कार्बोहाइड्रेट (11.2%), प्रोटीन (0.9%) एवं वसा (0.3%) का अच्छा स्रोत है। इसके अतिरिक्त एक सौ ग्राम फल में 0.03 मि.ग्रा. थाइमिन, 0.03 मि.ग्रा. राइबोफ्लेविन, 0.4 मि.ग्रा. नियासिन, 10 मि.ग्रा. कैल्शियम, 28 मि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 0.27 मि.ग्रा. आयरन होता है। जेली बनाने के लिए अमरूद सबसे उपयुक्त फल है चूंकि इसमें पेक्टिन की अच्छी मात्रा होती है।

जलवायु एवं मृदा

समुद्री सतह से लेकर 1000 मीटर की ऊंचाई तक अमरूद की खेती अच्छी होती है। अमरूद के विकास के लिए सूखे सामान्य ग्रीष्म एवं शीत तथा 1000 मि.मी. से कम वार्षिक वर्षापात उपयुक्त जलवायु है। इसमें 46^0 सेंटीग्रेड तक तापमान सहने की क्षमता होती है परन्तु तुषार/पाला सहने की क्षमता नहीं होती है। इसे लगभग सभी प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है परन्तु बलुई दोमट तथा जलोढ मृदा उत्कृष्ट होती है। चूंकि यह सतही जड़ों वाला पेड़ है, अत: चट्टानी प्रकृति की उथली मृदाओं के साथ साथ चिकनी मृदा में भी अच्छी तरह पनपता है। यह मृदा एवं जल दोनों में ही लवणता को सहन कर सकता है। अत्यधिक लवणता वाली मृदा हो तो बड़े आकार के गड्ढे खोदकर जल निकासी में सुधार करना चाहिए और गड्ढे में रेत भरना चाहिए। हर दूसरे वर्ष वर्षाकाल के दौरान गड्ढे में 5–10 कि.ग्रा. जिप्सम डालना चाहिए।

किस्में

अमरूद की किस्मों को मुख्य रूप से दो समूहों में बांटा जा सकता है जैसे लाल गूदे वाली व सफेद गूदे वाली किस्में। अमरूद की अनकापल्ली, हफ्शी, स्मूथ ग्रीन, चित्तीदार, बैंगलोर, लखनऊ–46, लखनऊ–49, नासिक, नागपुर सीडलेस, सहारनपुर सीडलेस तथा सेलेक्शन–8 आदि अमरूद की महत्वपूर्ण किस्में हैं।

व्युत्पत्ति

अमरूद का प्रवर्धन वाणिज्यिक तौर पर वानस्पतिक रूप से ग्राउंड लेयरिंग और एयर लेयरिंग के माध्यम से किया जाता है।

रोपण की अवधि एवं पद्धति

अत्यधिक उपजाऊ मृदा में 7.5 मी. x 7.5 मी. की दूरी पर 45 सें.मी. x 45 सें.मी. x 45 सें.मी. आमाप के गड्ढे खोदे जाते हैं। यदि भूमि के नीचे चट्टान हो वहां 4.5 मी. x 4.5 मी. की दूरी पर्याप्त होगी चूंकि वहां पौधों की वृद्धि कम होती है जिससे पौधे मर सकते हैं और पेड़ों का विस्तार भी कम होता है। गड्ढों को 20 कि.ग्रा. गोबर की खाद एवं ऊपरी मिट्टी से भरा जाता है और पूर्ण रूप से स्थापित पौधे गड्ढों के बीचों बीच रोपित किए जाते हैं। पौधों को बांस के पट्टों से बांधा जाता है ताकि वे तेज हवाओं से टूट न सकें। लवणीय मृदाओं में जहां पर जल निकासी की पर्याप्त सुविधा न हो, वहां बड़े आमाप (1 मी. x 1 मी.) के गड्ढ़े खोदे जाते हैं और उनमें रेत भरकर पौधे को गड्ढे के बीचों बीच लगाया जाता हैं। जहां सिंचाई जल भी अत्यधिक लवणीय हो, वहां वर्षाकाल के दौरान लगभग 5–10 कि. ग्रा. जिप्सम/गड्ढा डाला जाता है और गहरी नालियों की सहायता से जल की निकासी की जाती है।

शाखाओं की कटाई व छंटाई करना

पौधों की एक मीटर की ऊंचाई से पहले उगने वाली शाखाओं को छांट दिया जाता है और उस ऊंचाई तक तने को शाखारहित रखा जाता है। इसके बाद प्राथमिक व द्वितीयक शाखाओं को सभी दिशाओं में बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। आधार से निकलने वाली सीधी शाखाओं तथा जड़ से निकले अंकुरों को समय–समय पर निकालते रहना चाहिए। मृत एवं सूखी शाखाओं को भी साथ ही साथ काट देना चाहिए। चूंकि अमरूद नई शाखाओं पर फलता है, नई ताजी शाखाओं को हल्की छँटाई द्वारा बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

झुकाना

मध्यम आयु के पेड़ जब अधिकतम ऊँचाई तक पहुँचते है तो शाखाएं लगभग ऊपर की ओर ही उठती हैं इस प्रकार ऊपर की ओर उगने वाली शाखाएं उपज वृद्धि वाली शाखाओं को उत्पन्न होने नहीं देती हैं। इस प्रकार ऊपर की ओर बढ़ने वाली

शाखाओं को झुका देना चाहिए और इसके अग्र भाग को भूमि में दबा देना चाहिए या पेड़ के चारों ओर मिट्टी में घुसे खूंटो से बाँध देना चाहिए। ऐसा करने से निष्क्रिय कलियाँ तेजी से बढ़ती हैं जिससे अधिक फूल खिलते हैं और उपज बढ़ती है।

चोटी कटाई

पेड़ जब अधिक आयु के हो जाते हैं तो उनमें वास्तविक रूप से नई शाखाएं नहीं उगती हैं, ऐसी स्थिति में पेड़ की चोटी काट दी जाती है अर्थात बड़ी शाखाओं को उत्पत्ति स्थान से 30 से.मी. छोड़कर शेष भाग को काट दिया जाता है। बाद की ऋतु में नई वृद्धि से भारी मात्रा में फूल खिलेंगे और उपज प्राप्त होगी।

खाद और उर्वरक

एक फलदायी अमरूद के पेड़ को प्रति वर्ष 50 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 0.5 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 0.5 कि.ग्रा. फॉस्फोरस पेंटाक्साइड तथा पोटाशियम ऑक्साइड दिया जाता है। इस मात्रा को दो बराबर समान भागों में बांटकर पहला भाग जून–जुलाई में तथा दूसरा भाग अक्टूबर–नवम्बर महीने में दिया जा सकता है। खाद एवं उर्वरकों मिलाकर तने से 1 मी. दूरी पर गोलाकार रूप में बने 30 से.मी. चौड़े उथले गड्ढों में डालकर, इसे ऊपरी सतही मिट्टी से ढक दिया जाता है, तत्पश्चात् इस पर सिंचाई की जाती है।

इसके अतिरिक्त नई शाखाएँ उगने के दौरान 1% यूरिया के छिड़काव से उपज बढ़ सकती है। अमरूद में पोषक तत्वों की कमी एक आम कार्यिकीय विकार है। जिंक की कमी से पीलापन, पत्तियां छोटी होना तथा बौनी शाखाएं आदि समस्याऐं उत्पन्न होती हैं। यह समस्या जल भराव क्षेत्रों में आम है। इस विकार को 500 ग्रा. जिंक सल्फेट, 350 ग्रा. बुझे चूने को 72 ली. पानी में घोल कर छिड़काव से दूर किया जा सकता है। इस प्रकार के दो छिड़काव 15–30 दिन के अंतराल पर किये जाने चाहिए।

कार्यिकीय विकार

उपरोक्ती लक्षणों के साथ साथ पीलापन एवं किनारों पर जली छोटी छोटी पत्तियाँ भी दिखाई पड़ती हैं। इसका कारण जिंक, मेग्नीशियम, मैंगनीज, कॉपर व आयरन की मिश्रित कमी या इनकी अनुपलब्धता हो सकता है। इस विकार को दूर करने के लिए जिंक सल्फेट, मेग्नीशियम सल्फेट, मैंगनीज सल्फेट में से प्रत्येक की 25 ग्रा. मात्रा तथा कॉपर सल्फेट एवं फेरस–सल्फेट प्रत्येक की 12.5 ग्रा. मात्रा 5 ली. पानी में घोलकर पत्तियों पर चार बार इस क्रम में छिड़काव करें जैसे नई शाखाएँ उगने के दौरान, पहले छिड़काव के एक माह बाद, पुष्प्ण के दौरान और अंत में फल उगने के दौरान बोरॉन की कमी से फलों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। फल बड़े आकार के नहीं होते हैं, और जो बड़े आकार के होते भी हैं वे ठीक से पकते नहीं हैं और त्वचा भूरे रंग में बदलकर सख्त हो जाती है। कभी कभी इन फलों में हल्की दरार पड़ जाती है। इस समस्या को 0.3% बोरेक्स (३ ग्रा. बोरेक्स। 1 ली.पानी में) के छिड़काव से दूर किया जा सता है। पोटाश की कमी से पत्तियों के किनारे झुलस जाते हैं जिसके लिए 1% म्यूरेट ऑफ पोटाश का छिड़काव किया जा सकता है। बीज वाले अमरूद के फलों के संदर्भ में, अधिक बीज होना अलाभकारी लक्षण है। फलों में बीज कम करने के लिए, वृद्धि नियंत्रक जिब्रेलिक एसिड की सिफारिश की जाती है। इसका 100 पीपीएम (100 मि.ग्रा./ ली) की दर से अनखिली कलियों पर छिड़काव करें या कलियों को कुछ क्षणों के लिए इस घोल में डुबोए रखें। इस उपचार से फलों में बीजों की मात्रा घट जाती है।

सिंचाई प्रबन्धन

अगर रोपण के तुरन्त बाद वर्षा नहीं होती है तो सिंचाई की आवश्यकता होती है। प्रारम्भिक अवस्था में, अमरूद के पौधे को एक वर्ष में 5–6 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। फलदायी पेड़ों में पुष्पण और बेहतर फलों के लिए सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। सिंचाई द्वारा मृदा में उचित नमी नहीं बनायी जाती है तो फलों का आकार घट जाता है।

खरपतवार प्रबन्धन

अमरूद पेड़ के बेसिन से समय समय पर हाथों से खरपतवारों को साफ करना चाहिए।

पादप संरक्षण

नाशीजीव

1. टी. मस्किटो बग

यह कीट फल की सतह पर छेद कर रस चूस लेता है जिससे फल की सतह मस्सेदार बन जाती है। इस बग का नियंत्रण 15 दिनों के अंतराल पर मेलाथिओन 0.1% के छिड़काव से किया जा सकता है। नीम का तेल (2%) भी इन्हें दूर कर सकता है।

2. फल मक्खी

मानसून के दौरान, वयस्क मादा फलों की सतह पर अंडे देती है और निषेचन से निकले भुनगे (मैग्गट्स) फलों में प्रवेश कर जाते हैं और अधिकांश मामलों में फल झड़ जाते हैं।

प्रबन्धन

क) नीचे गिरे फलों को हटाकर उनको गहराई में दबा दें।

ख) मेलाथिओन 50ई.सी 1 मि.ली./ली (4 बार 15 दिनों के अंतरालो पर) की दर से छिड़काव करें।

3. मिली बग

ये कीट तरूण पत्तियों, टहनियों और फूलों से रस चूसते हैं, मीली बग समूहों में पत्तियों की निचली सतह पर पाए जाते हैं। संक्रमित भाग सूख जाता है और उपज घट जाती है।

प्रबन्धन

क) पेड़ के मूल के निकट मृदा का थिमेट 10जी या फोरेट 10जी से उपचार करें।

ख) पेड़ के तने पर पॉलिथीन बाँध दें ताकि निम्फ नीचे से पेड़ पर न चढ़ सकें।

ग) परभक्षी जैसे ऑस्ट्रेलियन लेडी बर्ड बीटल को 10–15 बीटल/पेड़ की दर से पेड़ों पर छोड़ दें।

घ) मेटासिड 0.1% का छिड़काव करें।

4. स्केल कीट

ये पत्तियों, शाखाओं और फलों पर चिपकी हुई पाईं जाती हैं।

प्रबन्धन

क) मेटासिसटॉक्स 0.05% या रोगर 0.05% का 10 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करें।

ख) ऑस्ट्रेलियन लेडी बर्ड बीटल 10–15 बीटल/पेड़ की दर से पेड़ों पर छोड़ दें।

अमरूद ऐफिड

इन ऐफिडों की रोकथाम के लिए विभिन्न परभक्षियों का उपयोग किया जा सकता है।

रोग

1. मुरझान रोग

लक्षण

टहनियों के सिरों की पत्तियों का रंग पीला व भूरा हो जाता है। पत्तियाँ गिर जाती हैं, छाल व टहनियाँ चिर जाती हैं। शाखाएँ बारी–बारी से मर जाती हैं जब तक एक माह में पूरा पेड़ मृत नहीं हो जाता। यह रोग फल धारण अवस्था तथा क्षारीय मृदाओं में तीव्र होता है।

प्रबन्धन

क) बुरी तरह से प्रभावित पेड़ को हटाना।

ख) प्रारंभिक लक्षणों वाले पेड़ों को 1% बोर्डो मिश्रण या 0.1% कार्बेंडाज़िम से तर किया जा सकता है।

ग) बनारसी व नासिक प्रतिरोधी किस्में हैं।

2. फलों का कैंकर रोग

छोटे पिन के सिरे के आमाप के धब्बे कच्चे फलों पर उभरते हैं। ये धीरे धीरे बढ़कर धंसे हुए गोलाकार धब्बे बनकर भूरे या काले रंग के हो जाते हैं। ये छोटे–छोटे धब्बे मिलकर बड़े घाव बन जाते हैं। फल का संक्रमित भाग सख्त हो जाता है। फल विकृत होकर गिर जाते हैं।

प्रबन्धन

कॉपर आक्सीक्लोराइड 0.25% या मैंकोजेब 0.25% का छिड़काव करें।

3. स्कैब

लक्षण

कच्चे फल पर संक्रमण होता है और गहरे पपडीदार दाग उत्पन्न हो जाते हैं। पपड़ीदार भाग पर तारे जैसे चीरे आ जाते हैं जिससे फल विकृत हो जाता है।

प्रबन्धन

कॉपर–ऑक्सीक्लोराइड 0.25% या मैंकोजेब 0.25% का छिड़काव करें।

स्टैम कैंकर

लक्षण

यह फफूंद शाखाओं को संक्रमित कर उन पर दरारें एवं घाव बना देते हैं। ऊतकों की मृत्यु के कारण संक्रमित शाखा मुरझा जाती है।

प्रबन्धन

कॉपर आक्सीक्लोराइड 0.25% या मैंकोजेब 0.25% का छिड़काव करें।

8. लाल रतुआ

इस रोग का नियंत्रण 1% बोर्डो मिश्रण के छिड़काव से किया जा सकता है।

9. सूटी मोल्ड

स्टार्च घोल (40 ली. गुनगुने पानी में 1 कि.ग्रा. स्टार्च) का छिड़काव करें तत्पश्चात् नुवाक्रॉन 0.1% का प्रयोग करें ताकि कीट जैसे एफिड व स्केल पर नियंत्रण पाया जा सके चूंकि इनसे शहद जैसे पदार्थ स्रवित होते हैं जो सूटी मोल्ड को आकर्षित करते हैं।

तुड़ाई व सस्योत्तर प्रबन्धन

पुष्पण के 5 माह बाद फल तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं। परिपक्वता प्राप्त फलों का रंग गहरे हरे से पीलेपनवाले हरे रंग में बदल जाता है। नियमित अंतराल पर सख्त एवं ठोस फलचुनकर तोड़ लिए जाते हैं। परिपक्व या अधपके फल खाने के लिए पसंद किये जाते हैं।

उपज

चूंकि वाणिज्यिक अमरूद के बागान लेयरिंग द्वारा स्थापित होते हैं, अत: पेड़ों पर प्रथम फलन रोपण के दो से तीन वर्ष बाद होता है। पांचवें वर्ष से अधिक उपज की आशा की जा सकती है। प्रत्येक पेड़ पर औसतन 500–600 फल उगते हैं। उपज दर 12–15 टन/हे./वर्ष होती है।

14.अननास

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय और महत्व

अननास, भारत की एक फलदायी महत्वपूर्ण फसल है। यह फल विटामिन ए एवं बी का अच्छा स्रोत है और साथ ही विटामिन–सी, कैल्शियम, मैग्नीशियम, पोटाशियम एवं आयरन से समृद्ध है। यह एक पाचक एंजाइम ब्रोमेलिन का भी अच्छा स्रोत है। अननास के फल में विटामिन–सी (39 मि.ग्रा./100 ग्रा.), विटामिन–ए (18 माइक्रोग्रा./100 ग्रा.), थियामिन (0.20 मि.ग्रा./100 ग्रा.), रिबोफ्लेविन (0.12 मि.ग्रा./100 ग्रा.) के अलावा शर्करा (13%), प्रोटीन (0.6%) और आयरन (2.42 मि.ग्रा./ 100 ग्रा.) का समृद्ध स्रोत है।

मृदा एवं जलवायु

अननास नमी युक्त उष्णकटिबन्धीय क्षेत्र की फसल है। इसकी सफल खेती के लिए उपयुक्त तापमान 22^0–32^0 से. होता है। पत्तियों एवं जड़ों के विकास के लिए क्रमश: 32^0 एवं 29^0 से. उपयुक्त तापमान है। तापमान 20^0 सें. से कम और 36^0सें. से अधिक होने पर इसका विकास अवरूद्ध हो जाता है। इस फसल के लिए रात का उच्च तापक्रम हानिकारक होता है और रात एवं दिन के तापमान में कम से कम 4^0 से. का अंतर होना वांछित है। यद्यपि इसकी वाणिज्यिक खेती के लिए 100–150 से.मी. वार्षिक वर्षपात उपयुक्त है तथापि इसे विभिन्न दर के वर्षपात वाले क्षेत्र में उगाया जा सकता है। सूखे मौसम के दौरान, जहाँ वर्षा कम होती है वहाँ पूरक रक्षात्मक सिंचाई आवश्यक होती है। इसकी खेती, भारी चिकनी मृदाओं को छोड़कर, अन्य सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है। इसके लिए रेतीली दोमट भूमि अच्छी होती है। खेती के लिए भूमि की गहराई 45–60 से.मी. और इसमें कोई कठोर परत या पथरियाँ नहीं होनी चाहिए। उच्च जल स्तर वाले निचले क्षेत्रों से बचना चाहिए। पौधों के लिए मृदा का पीएच स्थर 5.0–6.0 के बीच होना उपयुक्त है।

किस्में

इसकी मुख्य किस्में क्यू, जाइंट क्यू, क्वीन, मोरिशस, जलधूप और लखत हैं।

प्रवर्धन

अननास की व्युत्पत्ति वानस्पतिक रूप से अंकुरों एवं डालियों (फल के नीचे फलीय डंठल या पुष्पवृन्त पर कलियों से विकसित अंकुर) से होती है। लगभग 400–500 ग्रा. भार वाले अंकुरों (सकर) का उपयोग करने पर रोपण के 15–18 महीनों में उपज प्राप्त हो जाती है, जबकि डालियों (स्लिप्स) के उपयोग में 20–22 माह लगते हैं। यदि क्राउन का उपयोग किया जाता है तो पहली उपज 24–25 माह में प्राप्त होती है। अत: अंकुरों के उपयोग की सिफारिश की जाती है। रोपण के दौरान, बेसल पत्तियों के स्केल्स को ठीक तरह निकाल लेना चाहिए, तत्पश्चात् इन्हें 0.25% मिथाइल डिमेटन और 0.2% कॉपर आक्सीक्लोराइड में डुबोना चाहिए ताकि मीली बग और तना सड़न की रोकथाम हो सके। हाल में क्राउन की निष्क्रिय कलियों को रोपण सामग्री के त्वरित गुणन के लिए ऊतक संवर्धन में सफलतापूर्वक उपयोग किया गया।

रोपण अवधि एवं विधि

खेत की अच्छी तरह जोताई की जाती है और अंतिम जोताई के दौरान गोबर की खाद 15 टन/है. के दर से डाली जाती है। खेत को समतल करके जल निकास के लिए नालियाँ बनाई जाती हैं ताकि भारी वर्षा के दौरान भी खेत में जल भराव न हो। सामान्यत: 15000–20000 अंकुर/है. रोपित किया जाता है। हालांकि कुछ क्षेत्रों में सघन रोपण (60000–62000 पौधे/ है.) से उच्च उपज प्रप्ति हुई है। नजदीकी रोपण से पत्तियों की सीधी वृद्धि में सहायता मिलती है। बेसल पत्तियाँ मृदा में नमी की क्षति रोकती हैं। ऊपर की ओर सीधी उगने वाली पत्तियां फलों को सूर्य किरणों से बचाती हैं। तथापि पौधों की संख्या एक निश्चित सीमा से अधिक होने पर फलों का भार एवं शर्करा की मात्रा कम हो जाती है तथा अम्लीयता बढ़ जाती है।

अननास के लिए 60 सें.मी. चौड़ी मेड़ और मेड़ के दोनों ओर 90 से.मी. चौड़ी खाई बनाई जाती है। मेड़ से 15 सें. मी. की दूरी पर इन खाइयों में अंकुरों को 30सें.मी. की दूरी बनाकर एक कतार में आड़ी तिरछी पद्धति से रोपित किया जाता है। एक पंक्ति में लगाए गए अंकुर अगली पंक्ति के प्रतिस्थानी अंकुर के सामने नहीं होने चाहिए। चैनल की कुल चौड़ाई 90 सें.मी. तथा पौधों की दो पंक्तियों के बीच की दूरी 60 सें.मी. होनी चाहिए। जब रोपाई पहाड़ी ढलानों में की जाती है तो मेड़ एवं चैनल ढलान के आड़े बनायी जानी चाहिए जिससे मृदा अपरदन की रोकथाम और जल संरक्षण होता है। इस प्रकार से एक हैक्टेयर क्षेत्र में 43,500 पौधे रोपित किए जाते हैं। यदि पौधों के बीच की दूरी कम करते हुए 25 सें.मी. रखा जाए तो एक हैक्टेयर में 53,000 पौधे रोपित किए जा सकते हैं।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

अननास की 40 टन/है. उपज देने वाली फसल में 120 कि.ग्रा.नाइट्रोजन, 33 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 308 कि.ग्रा.पोटाशियम की खपत होती है। यह इस बात को दर्शाता है कि इस फसल को अधिक नाइट्रोजन एवं फॉस्फोरस की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन की कमी होने पर पुरानी पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और शीघ्र जीर्ण अवस्था आ जाती है। अंकुरों के बनने में भी रूकावट आती है।

जड़ों के उगने और स्थापित होने के लिए फॉस्फोरस की आवश्यकता होती है विशेषकर फसल की प्रारम्भिक वृद्धि अवस्था में। खेत की तैयारी के दौरान 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस की मात्रा गोबर की खाद के रूप में दी जानी चाहिए। पोटाशियम की कमी होने पर पत्तियां छोटी हो जाती हैं और इन पर बिन्दु जैसे छोटे छोटे दाग पड़ जाते हैं तथा पत्तियों के सिरे सूख जाते हैं। सूक्ष्म पोषक तत्वों के मिश्रण जिसमें आयरन, जिंक कॉपर एवं मैग्नीशियम होते हैं, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी पूरा करेंगे।

सिंचाई प्रबन्धन

यद्यपि अननास की खेती अधिकांशत: वर्षा आधारित होती है, अनुकूलतम वर्षा वाले क्षेत्र में भी पूरक सिंचाई करने पर फल के आकार अच्छे होते हैं। सिंचाई से गैर–मौसम में भी रोपण किया जा सकता है। कम वर्षा वाले क्षेत्र एवं गरम मौसम में अनन्नास की खेती में 20–25 दिनों में एक बार सिंचाई का सुझाव दिया जाता है।

खरपतवार प्रबन्धन

रोपण के पाँच माह बाद एक बार हाथों से खरपतवारों की सफाई की जा सकती है। तत्पश्चात् खरपतवार दोबारा उगने से पूर्व डाइरॉन 3 किलो/है. की दर से छिड़काव किया जाना चाहिए या खरपतवार दोबारा उगने से पूर्व ब्रोमासिल एवं डाइरॉन के मिश्रण, प्रत्येक को 2 कि.ग्रा./है. की दर से मिलाकर छिड़काव किया जाना चाहिए और प्रथम छिड़काव के 5 माह बाद इसकी आधी मात्रा से पुन: छिड़काव किया जाना चाहिए। प्रत्येक खरपतवारनाशक को एक हैक्टेयर फसल के लिए 1000 ली. पानी में मिलाना चाहिए।

इन्टरकल्चरल ऑपरेशन्स

अननास की खेती में पौधों की अच्छी सबलता के लिए मिट्टी की गुड़ाई अति आवश्यक कार्य है। जहाँ खाई रोपण एक सामान्य प्रक्रिया है, वहां मेडों से खाईयों में मिट्टी डाला जाती है क्योंकि इनकी जड़ें बहुत उथली होती है और भारी वर्षा वाले क्षेत्रों में समतल क्यारी रोपण में पौधे अंतत: गिर जाते हैं। फलों के विकास के दौरान पौधों के गिरने से असंतुलित वृद्धि, असमान विकास व असमान रूप से फल पकते हैं।

मृदा नमी के संरक्षण के लिए पलवरीकरण अति आवश्यक है। यद्यपि पलवरीकरण एक सामान्य क्रिया नही है, सामान्यत: सूखी पत्तियों या पुआल का उपयोग किया जाता है। सफेद पॉलीथीन एवं धान की पुआल की अपेक्षा काली पॉलीथीन शीट एवं लकड़ी के बुरादे से पलवरीकरण करने पर पौधों की वृद्धि अच्छी होती है ।

सामान्यत: अननास की फसल में फूल एक समान नहीं खिलते हैं। एक समान पुष्पण के लिए प्लानोफिक्स (जिसमे एन.ए.ए. होता है) 1 मि.ली./4.5ली. की दर से तैयार करना चाहिए और इस घोल के 50 मि.ली. परिमाण को रोपण के 12–15 माह बाद के पौधे के बीचोबीच डालना चाहिए जब पौधे में 35–40 पत्तियाँ होती हैं।

इसके अलावा, इथलीन रिसाव वाले रसायनों के प्रयोग से भी एक समान फूल खिलने में सहायता मिलती है। इथरेल 25 पी.पी.एम. + 2% यूरिया + 0.04% सोडियम कार्बोनेट (1 ग्रा. सोडियम कार्बोनेट/40 ली. पानी मे) मिलाकर छिड़काव किया जा सकता है। इन तीनों विलयनों को मिलाकर बने मिश्रण से नई उगने वाली पत्तियों के केंद्रो पर छिड़काव किया जा सकता है। इस वृद्धि विनियम को गैर–मौसम में फूल खिलाने के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। कैल्शियम कार्बाइड एक और इथलीन रिसाव वाला यौगिक है जिसका प्रयोग किया जा सकता है।

पुष्पवृन्त निकलने के साथ ही अंकुर (सकर) बढ़ने शुरू हो जाते हैं जबकि डाली (स्लिप्स) फल विकसित होने के साथ बढ़ती है। अंकुर की संख्या/पौधे बढ़ने पर फल का भार बढ़ता है जबकि डालियों की संख्या बढ़ने से फल पकने में विलम्ब होता है। क्राउन के आकार का फलों के भार एवं गुणवत्ता पर कोई प्रभाव नही होता है। अत: अंकुरों को हटाने के कार्य यथासम्भव विलम्ब से किया जाना चाहिए जबकि डालियाँ रोपण योग्य हो जाने पर हटा देनी चाहिए। क्राउन को हटाने की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि यह फल के आकर्षण को ढककर रखता है तथा हैंडलिंग को कठिन बनाता है। क्राउन को थोड़ा कोचने से, जिसमें लीफलेट के आंतरिक छल्ला को हटाना सम्मिलित है,के साथ–साथ बढ़ती सिराओं को फल लगने के 45 दिनों के बाद हटाने पर फलों को अच्छे आकार एवं आकृति की प्राप्ती होती है।

पादप सरंक्षण

नाशीकीट

मीली बग

मीली बग से प्रेरित मुरझान इसके विशेष लक्षण है। अनन्नास के पौधे की मुरझान का कारण या तो कीट से स्रवित विषैले स्राव या आहार के माध्यम से इसके वायरस का पौधों में पहुंचना माना जाता है। सबसे पहले लक्षण जड़ पर दिखाई देते हैं जिससे इनका विकास अवरूद्ध हो जाता है। तत्पश्चात् ऊतक गल जाते हैं, पत्तियाँ मुरझा जाती हैं और पेड़ गिर जाते हैं। इसका प्रमुख लक्षण पत्तियों की सिराओं पर मुरझान प्रारम्भ होता है। इसके साथ ही मुरझाया गया भाग लाल पीले रंग में बदल जाता है।

प्रबंधन

रोपण के समय कार्बोफ्यूरॉन 10 ग्रा./पौधा की दर से का प्रयोग करना है। मीली बग पर परजीवियों का प्रयोग करें। खेत के सीमान्त क्षेत्र के समांतर में अननास की 6–8 क्यारियों के सीमान्त क्षेत्र के बीच एवं खेत के बीच में एक मार्ग रखते हुए रोपण करना इस कीट के रोकथाम में लाभदायक है।

रोग

जड़ गलन / हार्ट गलन / तना गलन

मध्य भाग की पत्तियों में हल्का सा मुड़न प्रारम्भ होता है जिससे पत्तियाँ कमजोर हो जाती हैं और इनका रंग गुलाबी या भूरे रंग में बदल जाता है। पत्तियों का भीतरी घेरा तने से आसानी से हल्के खिंचाव से अलग हो जाता है। तने में भूरे पीले रंग की रंगविहीनता एवं गलन देखा जाता है। जड़ें भी भूरे रंग में बदल जाती हैं और बाद में गलने लगती हैं।

प्रबन्धन

उथले स्थानों से बचना चाहिए। अंकुरों को रोगरहित क्षेत्रों से चुनें। अंकुरों को 1% बोर्डो मिश्रण या 0.2% कॉपर ऑक्सीक्लोराइड से उपचारित करें।

धूप से झुलसना

जब फलों के डंठल टूट जाते हैं तो धूप सीधे फलों पर पड़ती है तो वे झुलस जाते हैं। फलों के डंठलो को टूटने से बचाना चाहिए। गर्मी के मौसम में (अप्रैल – मई) फलों को केलों के सूखी पत्तियों से ढक देना चाहिए ताकि फलों पर सीधे धूप न पड़े।

कटाई एवं सस्योत्तर प्रबंधन

रोपण के 13–15 माह बाद अनन्नास में फूल लगते हैं। तत्पश्चात् 4½ से 5½ माह में फल पकने शुरू हो जाते हैं। जब फलों का रंग पीले रंग में बदलना शुरू हो जाता है तो फलों की कटाई की जा सकती है। खाने के उद्देश्य हेतु फलों को पेडों पर पकने देना चाहिए और इसके बाद तोड़ना चाहिए। चाकू का प्रयोग करते हुए फल को डंठल सहित पेड़ से काटना चाहिए। लगभग 10–12 सें.मी. छोड़ते हुए अतिरिक्त क्राउन को काट देना चाहिए और फलों को पुआल का उपयोग करते हुए लकड़ी के बक्सों में क्रमबद्ध से सजा लेना चाहिए। पूर्णरूप से परिपक्व लेकिन कच्चे फलों को 85–90% की आपेक्षित आर्द्रता एवं 11–18^0 सें. तापमान पर कोल्ड स्टोरेज में संग्रहित किया जा सकता है। पके फलों को संग्रहित करने के लिए 8–9^0 से. तापमान, 85–90% आर्द्रता की सिफारिश की जाती है। इस तरह फलों को 4 सप्ताह तक सुरक्षित रखा जा सकता है। एन.ए.ए. (500 मि.ग्रा./ली.) के छिड़काव से 31 दिनों तक बिना शीत भंडारण सुविधा के रखे जा सकते हैं।

उपज

43,500/है. पौधों की संख्या से 65 टन जबकि 53,500 से 63,500 पौधों से 80–100 टन/है. उपज प्राप्त हो सकती है।

पेडी फसल

फलों की कटाई उपरान्त प्रति पौधा एक अंकुर छोड़कर बाकी सभी भाग डालियों सहित हटा देना चाहिए। तत्पश्चात् पौधों को खाद 10 ग्रा. नाइट्रोजन एवं 12 ग्रा. पोटाशियम/पौध की दर से दिया जाता है और गुड़ाई कर सिंचाई की जाती है। इसके पाँच माह बाद वृद्धि विनियमक (इथ्रेल/कैल्श्यिम कारबाइड) का छिड़काव किया जा सकता है जिससे पुष्पण में एक माह का समय लगता है। इसके लगभग 5½ माह बाद फल कटाई के लिये तैयार हो जाते हैं। यह उपज मुख्य फसल उपज का लगभग 50–60% उपज के रूप में प्राप्त होगी।

15.चीकू

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

चीकू एक स्वादिष्ट फल है जिसकी शुरूआत उष्ण कटिबन्धीय अमेरिका से हुई। इसके 100 ग्रा. खाए जाने वाले भाग में 21.4 ग्रा. कार्बोहाईड्रेट मुख्य रूप से चीनी के रूप में, प्रोटीन 0.7 ग्रा., रेशा 2.6 मि.ग्रा., कैल्शियम 28 मि.ग्रा., फॉस्फोरस 27 मि.ग्रा., आयरन 1.25 मि.ग्रा., केरोटीन 97 माइक्रो ग्रा. तथा विटामिन 6 मि.ग्रा. होते हैं। चीकू के फल के वयस्कों में टी. बी. के रोग तथा बच्चों की बचपन की जटिल समस्याओं के लिए उपयोग की संस्तुति की जाती है। चीकू को हाल के वर्षों में सीमान्त, उप–सीमान्त एवं क्षारीय मृदाओं में आर्थिक बागवानी फसल के रूप में बहुमुखी उपयोगी माना जाता है। इसके क्षेत्रफल व उत्पादन में असाधारण वृद्धि हो रही है और कम लागत प्रबन्धन व सीमान्त भूमि से अधिक आर्थिक आय हो रही है।

जलवायु और मृदा

उष्णकटिबन्धीय फसल होने के कारण इसे समुद्र तल से 1200 मी. की ऊँचाई तक उगाया जा सकता है। यह गरम एवं नमीयुक्त जलवायु और सूखे एवं आर्द्रता वाले क्षेत्र में उगता है। तटीय क्षेत्र की जलवायु सबसे उपयुक्त होती है। 1250–2500 मि.मी. वार्षिक वर्षपात वाला क्षेत्र सबसे उपयुक्त होता है। पूरे वर्ष के दौरान वर्षा व मेघमय मौसम फल लगने में कोई हानि नहीं पहुंचाते हैं। अनुकूलतम तापमान 11^0 से. एवं 34^0 से. के बीच होता है।

चीकू एक सख्त किस्म का पेड़ होता है और इसे विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है। मृदा में जल निकास का प्रबंध तथा उसमें कठोर परत नही होनी चाहिए। गहरी व छिद्रयुक्त मृदाओं को वरीयता दी जाती है। 60–90 सें.मी. गहराई की कठोर अध:स्तर वाली मृदाओं में पौधे पहले 7–8 वर्षों तक अच्छी वृद्धि करते हैं लेकिन जब जड़ें कठोर परत को छूती हैं तो पत्तियां पीली पड़ जाती हैं तथा फलों का आकार भी छोटा हो जाता है। इसके लिए गहरी दोमट, रेतीली दोमट, लाल लेटराइट एवं मध्यम काली मृदाएं सबसे अच्छी होती हैं। चीकू, मृदा तथा सिंचाई जल में लवणीयता की निश्चित मात्रा को सहन कर सकता है।

किस्में

क्रिकेट बाल, कालीपट्टी, सीओ–1, सीओ–2, पीकेएम–1, पीकेएम–2, पीकेएम–3, डीएचएस–1 और डीएचएस–2 मुख्य किस्में हैं।

प्रवर्धन

चीकू की वाणिज्यिक व्युत्पत्ति के लिए इनारचिंग या एप्रोच ग्राफटिंग अपनाया जाता है। वृद्धि काल में जब पेड़ सक्रिय वृद्धि के दौरान हो तब इनारचिंग किया जाना चाहिए। विभिन्न मूलकांड (रूटस्टॉक) जैसे सपोटा अंकुर, खिरनी (पाला या रयन) और महुआ अंकुरों का उपयोग किया जाता है। सब मूलकांड में से खिरनी को सबसे उपयुक्त पाया गया है। मूलकांडों को ट्यूब पॉट्स में उगाया जाता है। जब तक संयोजन पूरी नहीं हो जाती है, तब तक पैतृक पेड़ों से अंकुर/कलम जुड़ी रहती हैं और यदि कलमों की शाखाएँ ऊंची होती है तो स्टॉक पौधे को बांसों के मचान पर या अन्य इसी प्रकार की संरचना पर रखा जाता है। चीकू को वायुवीय लेयरिंग, भूतल लेयरिंग, साइड ग्राफ्टिंग व बडिंग से व्युत्पत्ति की जाती है।

रोपण की अवधि एवं विधि

खेत को दो बार जोत कर और जल जमाव से बचने के लिए उपयुक्त् रूप से खेत को समतल किया जाता है। 90 सें. मी. आकार के गड्ढे 8x8 मी. की दूरी पर खोदे जाते हैं। रोपण से पहले गड्ढों को 15 दिनों तक खुली हवा में रखा जाता है। प्रारंभिक मानसून के दौरान रोपण किया जाता है। प्रत्येक गड्ढ़े में 30 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 500 ग्रा. नीम खली को ऊपरी मिट्टी के साथ मिलाकर भर देते हैं।इसके बाद कलम को गड्ढे के मध्य क्षेत्र में लगाया जाता है। यह ध्याान रखा जाए कि कलम का जोड़ (ग्राफ्ट) भूतल से 15 से.मी. ऊपर हो। जड़ों के चारों ओर की मृदा को दबाया जाता है और तेज हवाओं के नुकसान से बचाव के लिए खूंटों की सहायता दी जाती है। इसके बाद पौधों को पानी दिया जाता है और तेज हवाओं, सूखी एवं गर्म हवाओं से तथा धूप से बचाया जाता है। पौधों की 3–4 वर्षों तक कटाई–छंटाई की जाती है। लगभग 60–90 से.मी. तक की सभी शाखाओं को हटा दिया जाता है। मूलकांड के अंकुरों को भी समय समय पर हटाते रहना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

यद्यपि चीकू कुछ हद तक सूखे को झेल सकता है तथापि यह सिंचाई से अनुकूल प्रतिक्रिया दर्शाता है। नए पौधे को सूखे के मौसम व वर्षाकाल के अभाव के दौरान जल दिया जाता है। शीत व गर्मी के मौसम में 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की जाती है। जहां पानी की कमी होती है, वहां छिड़काव एवं सुराही सिंचाई (पिटचर इरीगेशन) की व्यवस्था की जाती है।

खरपतवार प्रबंधन

समय–समय पर उथली जोताई चीकू के पौधे की वृद्धि व विकास के लिए लाभदायक होती है। प्रारंभ के वर्षों में छोटी अवधि के फल वाली अंतर–फसलीय फसलें, जैसे पपीता, अनान्नास और सभी प्रकार की सब्जियाँ अंतर–स्थानों में तब तक उगाई जा सकती है, जब तक चंदोवा में जगह होती है।

पादप संरक्षण नाशीजीव

1. मीली बग

यह बहुत ही छोटे आकार की अंडाकार एवं अपने ऊपर कपासनुमा सफेद मोमीय आवरण ओड़े रहती हैं। ये पत्तियों की नीचे की सतहों पर या फलों के डंठलों पर चिपकी रहती हैं। ये पौधों का रस चूसती है और एक शक्करनुमा पदार्थ बड़ी मात्रा में निकालती है। इस नाशीजीव का नियंत्रण डाईमेथोएट 30 मि.ली./ली. की दर से छिड़काव से किया जा सकता है।

2.तना बेधक

यह एक छोटा झींगुर है। कीटडिम्ब सख्त होता है और तने की छाल में छेद बनाता हुआ गोलाकार गैलरी बनाता है और भीतरी छालों के जीवित ऊतकों को आहार के रूप में ग्रहण करता है। इस कीट की उपस्थिति का तने के छेद से बाहर फेंकी गई छाल से पता लगाया जा सकता है। बिल में एक सख्त तार घुसा कर इस कीट को मारा जा सकता है। यदि कीट लकड़ी के अन्दर गहराई में है तो इस छेद को मिटटी तेल से भिगाई गई कपास से बंद किया जा सकता है ऐसा करने से बेधक का दम घुट जाएगा और वह पेड़ के भीतर ही मर जाएगा।

रोग

पत्ती धब्बा रोग

पत्तियों पर बहुत ही छोटे, गुलाबी से लाल भूरे रंग के धब्बे पाए जाते हैं। सीओ–1 एवं क्रिकेट बाल प्रतिरोधी किस्में हैं जबकि किस्म सीओ–2 और कालीपट्टी सहनशील किस्में हैं। 0.2% डाईथेन एम–45 का एक माह के अंतराल पर छिड़काव करें।

सूटी मोल्ड

यह पत्तियों पर स्केल कीट एवं मिलीबग पर काले मस्से के रूप में उभरता है जिससे प्रकाश संश्लेषण की गतिविधि में अवरोध उत्पन्न हो जाता है और परिणाम स्वरूप फल में विकार उत्पन्न हो जाता है। स्टार्च घोल का छिड़काव करें।

शाखाओं की शिथिलता

शाखाएं शिथिल हो जाती हैं और इससे फल और उपज बुरी तरह प्रभावित होते हैं। प्रभावित शाखाएँ छोटी तथा सूखे व कठोर और मुरझाए हुए फल उत्पन्न होते हैं। गर्मी के महीनों में ये शिथिल शाखाएँ सामान्य शाखाओं को जन्म दे सकती हैं।

तुड़ाई एवं सस्योत्तर प्रबन्धन

चीकू में फलों की परिपक्वता का पता लगाना कठिन है, यह एक संकटकालीन फल है और इसमें कटाई उपरांत गुणवत्ता में सुधार होता है। इसकी परिपक्वता का निर्धारण निम्न कारकों के आधार पर किया जाता है।

1. फल की पूर्ण परिपक्वता एक नीरस नारंगी या आलू के रंग में विकसित होती है।
2. जब परिपक्व फलों को हल्के से खरोचते हैं तो एक पीली धारी दिखाई देती है जो परिपक्वता का संकेत देती है।
3. जैसे ही फल परिपक्व होता है भूरे रंग का पपड़ीदार पदार्थ फलों की सतह से गायब हो जाता है।
4. जैसे ही फल परिपक्व होता है दूधिया क्षीर की मात्रा कम हो जाती है।
5. फलों के सिराओं पर सूखे काटेंनुमा वर्तीकाग्र (स्टिग्माह) को छूने मात्र से गिर जाता है ।

पूरी तरह से परिपक्व फलों को डंठलों सहित एक मरोड़ देकर एक–एक कर तोड़ लिया जाता है और बिना किसी प्रकार के खरोंच के एकत्रित कर लिया जाता है। इस प्रकार तोड़े गए फलों को एक या दो घंटों के लिए छाया में बांस की चटाई पर फैला दिया जाता है। फलों को खरोंच से बचाने के लिए उन्हें टाट के बोरे में एकत्रित किया जाता है और सावधानीपूर्वक जमीन पर डाला जाता है।

उपज

रोपण के तीसरे वर्ष से उपज प्राप्त होती है। सात वर्ष आयु के एक पेड़ से 700 फल और 10 वर्ष आयु के पेड़ से 1000 से 1100 फल प्रति वर्ष प्राप्त होते हैं।

16.कटहल

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

कटहल भारतीय मूल का फल है और इसे देश के अनेक भागों में उगाया जाता है, इसके 100 ग्रा. खाने योग्य भाग में 19.8 ग्रा. कार्बोहाइड्रेट, मुख्यत: शर्करा, 1.9 ग्रा. प्रोटीन, 0.1 ग्रा. वसा, 1.1 ग्रा. रेशा, 20 मि.ग्रा. कैल्शियम 41 मि.ग्रा. फॉस्फो रस, 0.56 मि.ग्रा. आयरन, 175 माइक्रो ग्राम कैरोटीन (विटामिन ए), 0.003 मि.ग्रा. थियामाइन, 0.13 मि.ग्रा. रिबोफ्लेमिन, 0.4 मि.ग्रा. नियासिन तथा 7 मि.ग्रा. विटामिन सी होता है। कटहल के 100 ग्रा. कारपेल से 88 कैलोरी की ऊर्जा प्राप्त होती है। कटहल एक लोकप्रिय फल है जिसे अचार, डब्बाबंद रस, सीरप, जाम, जैली और कैंडी बनाने में उपयोग किया जाता है। पके हुए लच्छों में शर्करा और मधु मिलाकर बोतलों में भरकर रखना पश्चिमी तटीय क्षेत्र में आम बात है। निर्जलीकृत लच्छों में नमक मिलाकर आलू के चिप्स के विकल्पक के रूप में तेल या घी में भूनना इस फल की अन्य उपयोगिता है। फल का बाहरी पेरिकार्प तथा जीवाणुहीन फूल (मांसल जीवाणुहीन लच्छों के बीच मौजूद) मवेशियों के लिए मूल्य वान आहार तथा इसे चावल के माड़ के साथ मिलाकर मवेशियों को दिया जाता है। बीजों से आटा बनाया जाता है। बीजों को उबालकर या भूनकर खाया जाता है। अनेक प्रकार के व्यंजनों की तैयारी में बीजों का उपयोग किया जाता है। इसके छाल में बड़े परिमाण में रेजिन होते हैं जिससे मिट्टी के बरतनों में बने छेद बंद किए जाते हैं। इसकी लकड़ी का उपयोग निर्माण और फर्नीचर के लिए किया जाता है। इसकी पत्तियों को चारे के रूप में उपयोग किया जाता है, विशेषकर बकरियों के लिए।

जलवायु एवं मृदा

कटहल पर्वतीय ढलानों की नमी वाली जलवायु तथा मैदानी क्षेत्रों की गरम नमी युक्त जलवायु में अच्छी तरह उगता है। कटहल के लिए 22–35^0 से. का तापमान उपयुक्त होता है। यह पाला तथा सूखा दोनों ही सहन नहीं कर सकता है। यद्यपि यह अनेक प्रकार की मृदाओं में उगता है, परंतु समृद्ध जलोढ़ मृदा या हल्की अम्लीय (पीएच 6.0–6.5) एवं अच्छी निकासी वाली खुली अवसंरचना वाली दोमट मृदा उपयुक्त होती है।

किस्में

किस्में मुख्यत: दो प्रकार की होती हैं। मुलायम मांसल तथा ठोस मांसल वाली किस्में उपलब्ध हैं। स्थानीय नामों से कुछ किस्में, जैसे गुलाबी, चम्पा, हजारी तथा रुद्राक्षी भी उपलब्ध हैं।

प्रवर्धन

जब बीजों के माध्यम से उत्पत्ति की जाती है, तो कटहल की संततियों में व्यापक भिन्नताएँ होती हैं। अत: वानस्पतिक प्रवर्धन की सिफारिश की जाती है। वानस्पतिक संततियों को उगाने के लिए 10 माह आयु वाले कटहल के नवोद्–भिद पौधों पर वाणिज्यिक इनारकिंग किया जाता है। कलम बांधने पर 4.5 से 5 वर्षों में फल लगते हैं, जबकि बीज द्वारा उगाये पौधे पर सामान्यत: 7–8 वर्षों में फल लगते हैं। 1.5 माह आयु वाले नवोद्–भिद पौधों की 3–4 माह आयु वाले मूलवृन्तों पर सॉफ्टवुड ग्राफ्टिंग भी सफल पायी गयी। चूंकि बीजों की व्यवहार्यता निम्न स्तर की है, उगाने हेतु बीज निकालने के तुरंत बाद उनका रोपण किया जाता है। 3–5 माह आयु वाले मूलवृन्त नवोद्–भिद पौधों पर पैच कलिकायन भी किया जाता है। इस पद्धति में अंकुरित पौधे रोपण के लिए 8 माह में तैयार हो जाते हैं। कलम लगाने के लिए तथा कलिकायन के लिए जून से सितम्बर उपयुक्त समय है।

रोपण की अवधि एवं विधि

रोपण के लिए सामान्यत: वर्गाकार या षटकोणीय प्रणाली अपनाई जाती है। एक घन मीटर आमाप के गड्ढे 9–12 मी. की दूरी पर खोदे जाते हैं और गड्ढों को उपरी मिट्टी तथा 10 कि.ग्रा. गोबर की खाद से भरा जाता हैं तथा मानसून की अवधि के दौरान कलमों को गड्ढे के बीचों–बीच रोपित किया जाता है। कलमों या नवोद्–भिद पौधों को रोपित करने का उपयुक्त समय मानसून का प्रारंभिक काल है। रोपण के पश्चात् लंबी अवधि तक सूखा मौसम होने पर पौधों की मृत्यु हो जाती है। रोपण के दौरान मुख्य जड़ों को विचलित न करें ताकि पौधों को कोई क्षति न हो।

ट्रेनिंग

कटहलों में एकल तना वांछित है, अत: बगल की शाखाओं को तुरंत काट दिया जाना चाहिए ताकि तना 1.2–2 मीटर तक शाखा रहित रहे, तत्पश्चात् स्कैफोल्ड् शाखाओं को उगने दिया जाए। तने पर फलों की कलियां विकसित होती हैं, अत: इसे अन्य प्रकार की वृद्धियों से मुक्त रखना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

खेत की तैयारी के दौरान गोबर की खाद 10 कि.ग्रा. प्रति पौधे की दर से डाली जानी चाहिए। रोपण के पश्चात् प्रथम वर्ष में एन पी के 0.15, 0.08, 0.1 कि.ग्रा./पौधा/वर्ष की दर से दिया जाना चाहिए। आयु बढ़ने पर इस खुराक को पांचवे वर्ष तक के साथ दिया जाता है उर्वरकों का उपयोग वर्षाकाल के दौरान किया जाता है। यदि सिंचाई की व्यवस्था उपलब्ध हो तो इसे दो भागों में जून–जुलाई और सितम्बर–अक्टूबर के दौरान देना चाहिए। पेड़ के मूल से 50–60 सें.मी. दूर बनाई गई गोलाकार खंदक में खाद एवं उर्वरक डाले जा सकते हैं।

सिंचाई प्रबंधन

यद्यपि कटहल को वर्षा आधारित स्थितियों में उगाया जाता है, तथापि यह सूखे के प्रति अति संवेदनशील है। मृदा के प्रकार एवं ऋतु के अनुसार सिंचाई की जानी चाहिए ताकि पुष्पण एवं फलन के दौरान नमी का दबाव न हो। यदि मृदा में अधिक नमी हो तो फलों का स्वाद फीका होता है।

अंत:शस्य क्रिया

फल लगने से पूर्व दलहनों को अंतरफसल के रूप में उगाया जा सकता है और पेड़ के नीचे सूखी पत्तियों को बिछाने से नमी संरक्षण तने का आकार बढ़ने पर फल के तने पर भी होता है विकसित होते हैं। इन फलों की कलियों पर भटके हुए मवेशियों, जैसे भैंस आदि द्वारा अपने शरीर से रगड़ने से संभावित क्षति से बचाया जाना चाहिए। यह कार्य अति आवश्यक है, जब बागान में उचित बाड़ की व्यवस्था नहीं है।

कभी–कभी मादा फूल एवं नर फूल दोनों का उत्पादन अधिक होता है, परंतु फल नहीं लगते हैं। इसका मुख्य कारण उपयुक्त परागण की कमी है। हाथों से परागण करने पर फ्रूटसैट एवं उपज में वृद्धि होती है।

खरपतवार प्रबंधन

बागानों में जोताई और पेड़ के बेसिन में सफाई नियमित रूप से की जानी चाहिए। सामान्य पादप वृद्धि के लिए लगातार निराई एवं मल्चिंग आवश्यक है।

पौध संरक्षण

नाशीजीव

भूरे घुन: यह कच्ची कलियों, टहनियों एवं फलों में सुराख कर प्रवेश कर जाते हैं। इस नाशीजीव के प्रबंधन के लिए नीचे गिरे फलों और कलियों को नष्ट करना, कोआ एवं वयस्क को एकत्रित कर उनको नष्ट करना तथा पेड़ों पर इमिडाक्लोरोपिड (0.035%) से छिड़काव करना आवश्यक है।

फल सड़न

इसमें कच्चे फल समय से पूर्व गिर जाते हैं जिससे अत्यंत नमी वाली स्थितियों में उपज की भारी क्षति होती है। फल के विकास के दौरान 15 दिनों के अंतराल पर डाइथेन एम–45 (0.2%) या बेविस्टिन (0.05%) या फाइटोलॉन (0.2%) के छिड़काव द्वारा इस रोग का प्रबंधन किया जा सकता है।

कटाई एवं सस्योत्तर प्रबंधन

सामान्यत: कटहल से 7वें या 8वें वर्ष से फल प्राप्त होते हैं। कलम लगाकर उगाए गए पौधों से उपज प्राप्ति चौथे या पांचवें वर्ष से प्रारंभ हो जाती है। सिंगापुर कटहल में तीन वर्ष के बीज से उत्पन्न पेड़ों पर भी फल लगना प्रारंभ हो जाता है। सामान्यत: यह फल मार्च से जून के दौरान उपलब्ध होता है। ऊंचाई वाले क्षेत्रों में कटाई सितंबर तक की जाती है।

उपज

कटहल की उपज 20 से 100 फल/पेड़ होती है। फल का भार 2 से 30 कि.ग्रा. के बीच होता है।

17.केला

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

केला एक महत्वपूर्ण फल फसल है, जिसे अनेक देशों में मूलत: खाद्य उत्पाद तथा कुछ देशों में गौण रूप से वस्त्र उद्योग में उपयोग किए जाने वाले रेशा उत्पादन के लिए उगाया जाता है। केला पेड़ नहीं है बल्कि एक ऊंची शाक है जिसकी ऊंचाई 15 मीटर तक हो सकती है। पौध एवं फल के आमाप, पौध आकृति, फल की गुणवत्ता, रोग एवं कीट प्रतिरोधिता के संदर्भ में किस्मों में काफी भिन्नताएं पाई जाती हैं। अधिकांश केलों में पकने पर मीठा स्वाद होता है, रसोई केले एवं प्लेंटेन्स को छोड़कर।

किस्में

केलों में रोबस्टा, ड्वार्फ कैवेंडिश, ग्रैंड नाइन, रसथाली, पूवन, नेन्द्रन, लाल बनाना, कर्पूरवल्ली, मट्टी, सन्नचेनकदली, उदयम तथ नेन्द्रन लोकप्रिय किस्में हैं।

रसोई के लिए

मौंथन और चककिया रसोई के लिए उगाया जाता है। नेन्द्रन किस्म दोनों उद्देश्यों डेजर्ट और सब्जी के रूप में उपयोग की जाती है।

ऊंचे क्षेत्र के लिए

द्वीपों में किसानों के खेत में स्थानीय प्रजातियाँ जैसे मीठा चम्पा, खट्टा चम्पा, चीना केला, कोरंगी, कर्पूरवल्ली, रसथाली और लाल केला उगाया जाता है। ग्रैंड नाइन और नेन्द्रन के ऊतक संवर्धित पौधे भी किसानों की पसन्द हैं।

मृदा एवं जलवायु

केलों की खेती के लिए अच्छी निकासी वाली दोमट मृदाएं उपयुक्त होती हैं। क्षारीय तथा लवणीय मृदाओं से बचना चाहिए। केला नमी वाले उष्णकटिबंधीय प्रदेशों के लिए अत्यंत उपयुक्त है। इसकी वृद्धि के लिए औसत अनुकूल तापमान 20^0–30^0 से. के बीच है। जल भराव एवं अपर्याप्त जल निकासी से वृद्धि धीमी पड़ जाती है। तेज हवाओं के परिणामस्वरूप पौधे जड़ से उखड़ कर गिर जाते हैं।

अंकुरों (सक्कर) का चयन एवं पूर्व उपचार

ऊपरी भाग को काट दें और अंकुरों का आमाप के अनुसार श्रेणीकरण करें। रस्थाली, मौंथन, तथा मुरझान रोग के प्रति संवेदनशील अन्य किस्मों में मुरझान रोग को दूर करने हेतु घनकंद के संक्रमित भागों को छीलकर किसी भी कवकनाशी द्रव्य (0.1%) में 5 मिनट तक डुबोए रखें। प्रत्येक अंकुर को 40 ग्रा. कार्बोफ्यूरान 3जी ग्रेन्यूल्स से उपचारित करें अथवा चार भाग चिकनी मिट्टी तथा 5 भाग जल से बनाए गए घोल में घनकंद को डुबोएं तथा सूत्रकृमियों के नियंत्रण के लिए कार्बोफ्यूरान का छिड़काव करें। जैविक पद्धति में अंकुरों को एजोस्पाइरिल्यम, फास्फोबैक्टीरिया प्रत्येक के 100 ग्रा., स्यूडोमोनास, बीएएम प्रत्येक के 50 ग्रा. तथा 10 कि.ग्रा. गोबर की खाद को 40 लीटर जल में घोल कर बनाए गए गारे से अंकुरों को उपचारित करें। इस जैविक गारे में अंकुरों को 30 मिनट तक डुबोए रखा जाता है, तत्पश्चात् उनका रोपण किया जाता है। केले के खेत में रोपण के 45वें दिन सनहेम्प की बोवाई तथा एक माह बाद इसे सम्मिलित करने पर सूत्रकृमि घटते हैं। यदि रोपण के लिए ऊतक संवर्धित केले के पौधों का उपयोग किया जाता है, तो पौधे की ऊंचाई न्यूनतम 20 से 30 से.मी. तथा तने की परिधि चौड़ाई 3–5 से.मी. होनी चाहिए। पौधे पर कम से कम 5–6 पूर्ण रूप से विकसित पत्तियां होनी चाहिएं। रोपण के दौरान सूडोमोनास फ्लोरेसेंस (25 ग्रा. प्रति पौध) का उपयोग किया जाना चाहिए।

खेत की तैयारी

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में केलों को एकल फसल के रूप में या नारियल एवं सुपारी बागानों में अंतर फसल के रूप में उगाया जाता है। खेत की अच्छी तरह जुताई करने के बाद गोबर की खाद 5 टन प्रति एकड़ की दर से डाली जाती है। सिफारिश की गई उचित दूरी पर गड्ढे खोदे जाने चाहिए। विभिन्न किस्मों के लिए पौधों के बीच की दूरी निम्न लिखित है :

रोग एवं सूत्रकृमियों से मुक्त 1.5 से 2.0 कि.ग्रा. भार वाले तलवार के आकार वाले अंकुरों का चयन करें। घनकंद की जड़ों तथा सड़े भागों को एवं घनकंद से 20 से.मी. तक के छद्मने को छोड़कर शेष भाग का प्रयोग रोपण के लिए किया जाता है।

क्र. सं.	किस्में/रोपण पद्धतियां	रोपण की दूरी	पौधों की संख्या/हे.
1.	ग्रैंड नैने, रोबस्टा् तथा नेन्द्रन	1.8 x 1.8 मी.	3080
2.	रसथाली, पूवन, कर्पूरवल्ली, मौंथन	2.1 x 2.1 मी.	2260
3.	जोड़ी कतार	1.2 x 1.2 x 2.0 मी.	5200
4.	2–सकर/हिल	1.8 x 3.6 मी.	3200
5.	2–सकर/हिल	1.8 x 3.6 मी.	4800

गड्ढे को 30–45 से.मी. की गहराई तक खोदा जाता है और अंकुरों को गड्ढों के बीचों–बीच रोपा जाता है।

सिंचाई

रोपण के तुरंत बाद सिंचाई; चार दिनों के बाद जीवनदान सिंचाई; बागानों में केलों के लिए बाद की सिंचाइयां सप्ताह में एक बार दी जाती हैं तथा आर्द्र क्षेत्रों के लिए 10 से 15 दिनों पर एक बार सिंचाई की जाती है। प्रत्येक खाद अनुप्रयोग के पश्चात खेत की सिंचाई अच्छी तरह की जानी चाहिए। रोपण से चार माह तक ड्रिप सिंचाई 5–10 लीटर/पौध/दिन, पांचवे माह से फल निकलने तक 10–15 लीटर/पौध/दिन तथा फूल निकलने से कटाई से 15 दिन पूर्व तक 15 लीटर/पौध/दिन की दर से टपक सिंचाई का उपयोग करें।

अंतर फसलीकरण

फलीदार सब्जियां, चुकन्दर, जिमीकंद तथा सनहेम्प को अंतर फसल के रूप में उगाया जा सकता है। कद्दू वर्गीय सब्जियों को उगाने से बचें।

खाद एवं उर्वरक

केलों के लिए सिफारिश की गई नाइट्रोजन: फॉसफोरस: पोटाश खुराक का अनुपात 110:35:330 है। नेन्द्रन किस्म के लिए इस खुराक का अनुपात और भी अधिक (150:90:300 नाइट्रोजन फॉसफोरस पोटाश) है। नाइट्रोजन एवं पोटाशियम की खुराक को किस्तों में रोपण के तीसरे, पांचवे तथा सातवें माह में दिया जाता है। एजोस्पाइरिल्यम तथा फास्फोबैक्टीरिया प्रत्येक का 20 ग्रा. रोपण के दौरान तथा रोपण के पांच माह बाद दिया जाता है (इसका उपयोग रासायनिक उर्वरकों के अनुप्रयोग से पूर्व किया जाना चाहिए)। यदि केलों को संपूर्ण जैविक फसल के रूप में उगाया जाता है, तो समृद्ध गोबर की खाद 500 ग्रा./पौध की दर से दी जा सकती है। 50 कि.ग्रा. एजोस्पाइरिल्यम, 50 कि.ग्रा. फास्फोबैक्टीरिया तथा 50 कि.ग्रा. सूडोमोनास को 350 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर छांव में रखकर निरंतर जल देते हुए 45 दिनों तक रखकर समृद्ध गोबर की खाद बनायी जाती है। 45 दिनों के पश्चात् खाद समृद्ध हो जाता है जिसे रोपण के तीन माह बाद 500 ग्रा./पौध की दर से तथा रोपण के पांचवें एवं सातवें माह में लगभग 1 कि.ग्रा. की दर से पौधों को दिया जाता है।

खेती के पश्चात

मासिक अंतराल पर मिट्टी की खुदाई और गुड़ाई पौधे को बेहतर रूप से स्थापित होने में सहायक होती हैं। मासिक अंतराल पर अंकुरों की कटाई की जानी चाहिए। पत्ती धब्बा रोग के फैलाव को रोकने के लिए सूखी एवं रोग ग्रस्त पत्तियों को हटा कर जला दिया जाना चाहिए। अंतिम पंक्ति खुलने के एक सप्ताह पश्चात नर फूलों को हटा दिया जा सकता है। पौधों को पुष्पण की अवस्था में सहारा दिया जाना चाहिए। मुख्य डंठल के सड़न की रोकथाम के लिए डंठलों को अंतिम छोटी पत्ती से ढक दिया जाना चाहिए। गुच्छे को सूर्य की तेज किरणों से बचाने के लिए इसे केले के पत्तों से ढक देना चाहिए।

वृद्धि विनियामक

केलों के गुच्छों की श्रेणी में सुधार के लिए अंतिम पंक्ति उभरने के पश्चात केले की पूवन किस्म में 2,4–डी (25 मि.ग्रा./ली.) की दर से छिड़काव किया जा सकता है। इससे पूवन किस्म में बीज दूर करने में सहायता मिलती है।

सूक्ष्म पोषक तत्व

केलों की उपज एवं गुणवत्ता में वृद्धि के लिए सूक्ष्म पोषक तत्वों का छिड़काव करें, जैसे रोपण के 3, 5 और 7 वें माह में जिंक सल्फेट (0.5%), फेरेस सल्फेट (0.2%), कॉपर सल्फेट (0.2%) तथा बोरिक एसिड (0.1%)।

बेहतर आकार के लिए बंच कवर

अंतिम पंक्ति खुलने के तुरंत बाद गुच्छे को पारदर्शी पॉलिथीन आवरण से ढक दें जिसमें ठंडे मौसम में 2% तथा गर्म मौसम में 4% का वेंटिलेशन हो।

पौध संरक्षण

कीट

1. तना भेदक कीट

यह द्वीप में केले के प्रमुख कीटों में से एक है। इस कीट के कोआ छद्मतने को भेद कर प्रवेश कर जाते हैं जिससे पत्तियां पीली पड़ जाती हैं एवं मुरझा कर अंतत: मृत हो जाती हैं। कीट मुक्त रोपण सामग्री का उपयोग करें। रोपण से पूर्व 1% क्विनालफोस इमल्सन में अंकुरों को डुबाएं। खाद के गड्ढों में संक्रमित सामग्री न डालें। संक्रमित पौधों को जड़ों से उखाड़ कर इन्हें छोटे–छोटे टुकड़ों में काट कर जला दिया जाना चाहिए।

2. बनाना एफिड

यह नाशीजीव बंची टॉप विषाणु रोग का वाहक है। इस कीट के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित सर्वांगी कीटनाशकों में से किसी एक का छिड़काव करें, फास्फामिडॉन 2 मि.ली./ली. या मिथाइल डेमेटॉन 2 मि.ली./ली. या. या डाइमिथॉएट 30ईसी (2 मि.ली./ली.) छिड़काव की दिशा गुच्छे के शीर्ष तथा छद्मतने के मूल की ओर करते हुए 21 दिनों के अंतराल पर कम से कम तीन बार छिड़काव किया जाना चाहिए।

रोग

सिगाटोका पत्ती धब्बा रोग

यह एक कवकीय रोग है। यह संक्रमण तरुण पत्तियों के रंध्रों के माध्यम से होता है। प्रकाश संश्लेषण के लिए उपलब्ध पत्ती क्षेत्र घट जाने के कारण गुच्छे और फल का आमाप घट जाता है। समय से पूर्व फल पक जाते हैं। सघन रोपण से उच्च नमी, अत्यधिक खरपतवार या घास का आवरण तथा अंकुरों को हटाने में असफलता इस रोग के फैलाव के लिए अनुकूल हैं।

नियंत्रण उपाय : संक्रमित पत्तियों को हटाकर जला दें। नवंबर माह से प्रारंभ कर मासिक अंतराल पर निम्न लिखित कवकनाशियों में से किसी एक का छिड़काव करें, जैसे कार्बेंडाजिम 1 ग्रा./ली., बेनोमाइल 1 ग्रा./ली., मैंकोजेब 1ग्रा./ली., कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 2.5 ग्रा./ली., जिराम 2 मि.ली./ली., क्लोरोथलोनिल 2ग्रा./ली.। प्रत्येक छिड़काव में कवकनाशियों में बदलाव कवकीय प्रतिरोधिता को रोक देता है। सदैव प्रति लीटर छिड़काव द्रव्यो में 5 मि.ली. वैटिंग एजेंट जैसे सेंडोविट, ट्राइटोन एई, टीपोल आदि का प्रयोग करें।

2. बंची टॉप रोग

यह एक विषाणु रोग है जिसका संक्रमण द्वीप में अत्यधिक है। इस रोग का फैलाव एफिड वाहक द्वारा होता है। संक्रमित पौधे में छद्मतने के शीर्ष पर छोटी एवं संकीर्ण पत्तियां जुड़ कर एक गुच्छे का आकार लेती हैं, अत: इसे 'बंची टॉप' कहा जाता है। संक्रमण आगे बढ़ने पर पत्तियों का सीमांत क्षेत्र लहराते हुए ऊपर की ओर मुड़ जाता है। पत्तियों एवं पत्ती के डंठलों के आमाप बड़े पैमाने पर घट जाते हैं जिससे संपूर्ण पौधे की वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है।

नियंत्रण उपाय :

i). विषाणु रहित अंकुरों का उपयोग करें।

ii). छीलना एवं प्रालिनेज : घनकंद को छीलकर इस पर 40 ग्रा. कार्बोफ्यूरान 3जी का छिड़काव करें (छिड़काव से पूर्व घनकंद को मड स्लरी में डुबोना चाहिए)।

iii). विषाणु संक्रमित पौधों को नष्ट कर देना चाहिए।

iv). कैप्सूल एप्लिकेटर के उपयोग से घनकंद में 7 से.मी. की गहराई तक एक जिलाटीन कैप्सूवल का प्रवेश कराएं जिसमें 200 मि.ग्रा. फेरनोक्जोन (2,4–डी) या इंजेक्शन गन के उपयोग से छद्मतने में 5 मि.ली. फेरनोक्जो्न द्रव्य (125 ग्रा./लीटर जल) को इंजेक्ट करें। पौधा 3 से 5 दिनों में विध्वंस होकर गिर जाता है।

कटाई एवं सस्योत्तर प्रबंधन

किस्मों के आधार पर रोपण के पश्चात 12 से 16 माह में कटाई हेतु गुच्छे तैयार हो जाते हैं। किस्म, मृदा, मौसमीय स्थितियां तथा ऊंचाई के आधार पर पुष्पण के 100 से 150 दिनों में गुच्छे परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं। इन्हें बंद चैम्बरों में पकने दिया जा सकता है। लंबी दूरी तक ले जाने हेतु 75–80% परिपक्व गुच्छों की कटाई की जाती है।

उपज

किस्मों के आधार पर उपज दर 30 से 50 टन प्रति हैक्टेयर के बीच होती है। द्वीप में ग्रैंड नाइन किस्म की औसत उपज 20 से 30 टन प्रति हैक्टेयर के बीच है।

18.शरीफा/ सीताफल

पूजा बोहरा व अजित अरुण वामन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

जनसमूहों में लोकप्रिय फलों में शरीफा एक है। यह पेड़ प्रकृति से कठोर होने के कारण कम एवं अल्प वर्षा वाले क्षेत्रों सहित बंजर भूमि पर उगाने के लिए उपयुक्त होता है। सूखे की अवधि के प्रति इसकी सहनशीलता को ध्यान में रखते हुए, जो अंडमान एवं निकोबार द्वीपों के लिए आम समस्या है, यह एक संभावी फसल है। इसके पेड़ पर्णपाती तथा 6 मी. तक ऊंचे होते हैं। इसके फल स्वाद में मीठे व संरचना में दानेदार होते है।

स्थान का चुनाव

शरीफा सीमांत मृदाओं में उगाने के किये उपयुक्त होता है। इसके लिए गहरी एवं उपजाऊ भूमि की आवश्यकता नहीं होती है। यह कैल्शियम वाली मृदाओं में जिसमे 50% तक चूना होता है, में भी उगाया जा सकता है। इसकी खेती में जल भराव एक बाधा है, अत: चुने गए स्थान पर जल निकासी की सुविधा होनी चाहिए। यद्यपि, यह फसल सूखे में जीवित रह सकती है, तथापि अच्छी उपज के लिए फल की वृद्धि के दौरान पूरक सिंचाई की व्यवस्था होनी चाहिए। चूंकि फसल को तेज धूप की आवश्यकता होती है, अत: इसे नारियल के बगीचों में अंतर–फसल के रूप में उगाना उपयुक्त नहीं होता है।

किस्में

भारत की अधिकांश किस्में विभिन्न नवोद्–भिद पौधों से चुनी गई हैं। बालानगर, लाल सीताफल, बार्बडोस सीडलिंग, काकरला पहाड़, महबूबनगर, सहारनपुर लोकल एवं मैमथ आदि प्रमुख किस्में हैं। आई.सी.ए.आर.–भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर द्वारा विकसित अर्का सहान, एक अंतरफसलीय संकर है। यह संकर लगभग एक सप्ताह की बेहतर भंडारण आयु दर्शाता है और इसमें बीज कम व गूदा मीठा होता है। ए.पी.के. (सी.ए)–1 किस्म को तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयम्बटूर में विकसित की गई है।

प्रवर्धन

शरीफा के गुणन के लिए अनेक तकनीकों जैसे क्लेफ्ट ग्राफ्टिंग, इनार्चिंग, बडिंग तथा तना कतरनों का प्रयोग किया जाता है। राम फल कलम के लिए मूलवृन्त के रूप में उपयोग किया जाता है, जबकि पांड एपल को लवणीयता वाले क्षेत्र में उपयोग किया जा सकता है। मूलवृन्त पर वांछित प्रजातियों को उगाया जाता है और ग्राफ्टिंग/बड्डिंग जून से सितम्बर के दौरान की जाती है।

लेआउट एवं रोपण

आमतौर पर शरीफा को 5 मी x 5 मी. की दूरी पर लगाया जाता है, कमजोर मृदाओं वाले क्षेत्रों में कम कर 4 मी x4 मी. की जा सकती है। पूर्ण रूप से उगे 9–10 माह के पौधों को उचित स्थापन के लिए मानसून के प्रारम्भ में ही रोपित कर देना चाहिए। 60 घन सें.मी. माप के गड्ढे इच्छित दूरी पर खोदकर उनमें ऊपरी मिट्टी एवं गोबर की सड़ी खाद (10–12 कि.ग्रा.) भर देते हैं। शुरू में पौधों के विकास व उचित बनावट के लिए उन्हें खूंटे से बाँध दिया जाता है।

पौषणिक प्रबंधन

शरीफा को आमतौर पर बंजर भूमि में उगाया जाता है, अत: पौधों को उचित पोषक तत्व कार्बनिक व अकार्बनिक माध्यमों से उपलब्ध करना अति आवश्यक है। विभिन्न प्रकार की मृदाओं के लिए पोषक तत्वों की आवश्यकता भिन्न–भिन्न होती है। पोषक तत्वों के देने से पहले मृदा की जांच करा लेनी चाहिए। अधिक उपज के लिए पेड़ की पूर्ण विकसित अवस्था के लिए 500 ग्रा. यूरिया, 1500 ग्रा. सिंगल सूपर फास्फेट एवं 400 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पेड़ की आवश्यकता होती है। उपरोक्त उर्वरकों का एक तिहाई, आधी व दो तिहाई मात्रा रोपण के पहले, दूसरे व तीसरे वर्ष में देनी चाहिए। चौथे वर्ष व उससे आगे इनकी पूर्ण मात्राएं दी जाती हैं।

सिंचाई व खरपतवार प्रबंधन

यद्यपि यह फसल सूखे की दशा में तुलनात्मक रूप से अच्छा प्रदर्शन करती है, सूखे की दशा में एक पूरक सिंचाई उपज व गुणवत्ता दोनों में वृद्धि करती है। पेड़ के बेसिन को पूरे वर्ष खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए।

बागवानी प्रक्रिया

प्रारम्भिक वर्षों में फार्मेशन प्रूनिंग शरीफा के पेड़ को फलन अवस्था दौरान मजबूत बनाता है। इसके लिए जब पौधा 1 मी. की ऊंचाई तक पहुँच जाता है तो शिखर की शाखा को भूतल से 80 सें.मी. ऊपर से काट दिया जाता है। यह मुख्य

तने से बहुसंख्यक शाखाओं को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करता है। बाद के वर्ष में प्राथमिक शाखा को मुख्य तने से लगभग एक फुट छोड़कर काट देना चाहिए। इसके बाद के वर्षों में द्वितीयक व तृतीयक शाखाओं की उसी तरह से छंटाई करनी चाहिए। एक इच्छित ढांचा मिलने के बाद छंटाई की प्रक्रिया को मृत एवं रोगग्रस्त शाखाओं व कमजोर जोड़ों की छंटाई तक सीमित कर देना चाहिए।

चूंकि शरीफा एक परपरागण फसल है, मधुमक्खियों के छत्तों को बगीचे में बनाए रखने से आवश्यक परागण आसान होता है। पोलेन पेरेंट्स का चुनाव फल लगने, कुल उपज व विपणन योग्य फलों के प्रतिशत को प्रभावित करता है। अन्नोना संकर 'अर्का सहन' के मामले में बालानगर लोकल से परागकण लेकर हाथों से निषेचन करने से अच्छे परिणाम मिलते हैं। परागण कार्य प्रात: 5.30–7.00 बजे के बीच कर लेना चाहिए।

कीट नाशीजीव तथा रोग प्रबन्धन

शरीफा में मीली बग एक मुख्य समस्या है जिसे संक्रमण की उन्नत अवस्था में नियंत्रित करना बहुत कठिन है। संक्रमण को कम करने के लिए वैकल्पिक मेजबानों जैसे पपीता, गुड़हल, भिन्डी व अन्य खरपतवार प्रजातियों के उन्मूलन के प्रयास करने चाहिए। सर्वांग कीटनाशक जैसे डाईमिथोएट (2 मि.ली./ली.) के छिड़काव से नाशीजीवों की संख्या को कम किया जा सकता है।

कार्यिकीय विकार

फलों की प्रारंभिक अवस्था में फलों की वृद्धि रूकना, तत्पश्चात फलों का काला पड़ना एवं सख्त हो जाना फल शव–परिरक्षण के लक्षण हैं। नमी की कम उपलब्धता की यह प्राकृतिक प्रतिक्रिया है। अत: विपणन योग्य उपज वृद्धि के लिए फलों की विकास अवस्था में सिंचाई करना अनिवार्य है। दूसरा विकार, अपर्याप्त जल निकासी वाले क्षेत्रों में पेड़ों का बहुत कमजोर दिखाई देना है। इसमें पेड़ों का सूखना प्रारम्भ हो जाता है और शाखाएं डाईबैक के लक्षण दर्शाती हैं। जल निकासी की व्यवस्था से इसकी व्यापकता को कम किया जा सकता है। यदि पौधों को पानी और पर्याप्त आहार नहीं दिया जाता है तो स्टोन फ्रूट फॉर्मेशन दिखाई पड़ता है जिससे फल अपरिपक्व व कठोर रह जाते हैं और उपज कम हो जाती है।

कटाई व उपज

शरीफा रोपण के 4–5 वर्षों के बाद उपज प्राप्ति प्रारम्भ होती है। भारत में शरीफा का पुष्पण मार्च से अगस्त तक होता है और फल–लगने से पकने तक 14–15 सप्ताह का समय लगता है। जब 40% फलों की सतह क्रीमी यानी फलों की त्वचा के खंड में सफेद भाग दिखाई देने लगें, फलों की कटाई कर लेनी चाहिए। फलों को छोटे डंठलों के साथ काट लेना चाहिए।

19.बेल

पूजा बोहरा व अजित अरुण वामन

संक्षिप्त परिचय और महत्त्व

बेल एक पर्णपाती पेड़ है जो मूल्यवान औषधीय गुणों वाला महत्वपूर्ण फल देता है। यह भारतीय मूल का फल है जो सामान्यत: घरों के पिछवाड़े एवं मंदिरों के आसपास पाया जाता है। इसकी वाणिज्यिक खेती उत्तर प्रदेश, बिहार और भारत के अन्य सूखे भागों तक सीमित है। इसे चरम तापमान व सीमांत मृदाओं में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसके फल विटामिन व खनिज तत्वों के समृद्ध स्रोत हैं। इसके पके फलों को मूल्य संवर्धित उत्पादों जैसे शरबत, ताजे रस एवं कैंडी आदि में प्रसंस्कृत किया जाता है। अंडमान एवं निकोबार द्वीपों में इसकी प्रजातियां अर्ध–वन्य स्थितियों में पायी जाती हैं। पहले से मौजूद पेडों की यदि वैज्ञानिक ढंग से देखभाल की जाए तो आर्थिक लाभ लिया जा सकता है।

स्थान का चयन

अधिकतम लाभ के लिए पेड़ों को धूप की आवश्यकता होती है। यह पेड़ भौतिक रूप से सख्त होता है, अत: इसे विभिन्न प्रकार की मृदाओं एवं जलवायुवीय स्थितियों में उगाया जा सकता है।

किस्में

अधिकांश स्थानीय किस्मों के नाम उगाने के स्थान के नाम से जुड़े हुए होते हैं। इनमें कागजी, मिर्जापुर अंकुर, इटावा, अयोध्या व गोंडा आदि सम्मिलित हैं। इसके अलावा अनेक किस्में भी विकसित की गई हैं जैसे एनबी–5, एनबी–9, पन्त अपर्णा, पन्त उर्वशी, पन्त शिवानी, पन्त सुजाता, सी.आई.एस.एच. बेल–1 एवं सी.आई.एस.एच. बेल–2।

प्रवर्धन

यद्यपि मौजूदा बेलों के पेड़ों का प्रवर्धन बीजों से हुआ है, परन्तु प्रवर्धन के लिए पैच वडिंग की सिफारिश की जाती है। मूलवृंत उगाने के लिए जून–जुलाई माह में बीजों को बोया जाता है तथा अगले जुलाई–अगस्त के दौरान एक वर्ष आयु के मूलवृन्तों पर उत्कृष्ट मातृ पौधे से ली गई कलम लगाई जाती है। इसके अलावा जड़ों एवं तने के कतरनों को भी प्रवर्धन के लिए उपयोग किया जाता है।

लेआउट एवं रोपण

कलम लगाए गए पौधों को 8 मी x 8 मी. की दूरी पर व बीजों से उगाए गए पौधों को 10 से 12 मी. दूरी पर रोपा जाता है। पौधों के बेहतर स्थापन के लिए रोपण कार्य मानसून के दौरान किया जाता है।

पौषणिक प्रबन्धन

बेल के पेड़ को साधारणत: खाद या उर्वरक की आवश्यकता नहीं होती है, तथापि मानसून के प्रारम्भ में 20–30 कि.ग्रा. गोबर की खाद /पेड़ की दर से देने पर पौधों की वृद्धि में लाभ होता है। इसके अलावा जब भी कमी के लक्षण दिखाई दें तो सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग करते रहना चाहिए।

सिंचाई और खरपतवार प्रबन्धन

सूखे क्षेत्र की फसल होने के कारण बेल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। तथापि जब तक पौधे खेत में स्थापित नहीं हो जाते हैं तब तक पौधों को पानी दिया जाना चाहिए। इससे फलदायी पौधों पर फलों के लगे रहने, उपज एवं गुणवत्ता में सुधार होता है। चूंकि पौधों के बीच की दूरी अधिक होती है, अत: खरपतवार प्रबन्धन महत्वपूर्ण है। वर्षाकाल के पश्चात् पौधों के बीच के स्थान पर खरपतवार प्रबन्धन में एक हल्की जोताई बहुत प्रभावी होती है।

बागवानी प्रक्रिया

कलम लगाए गए पौधों को रोपण के दौरान उनको सीधा रखने के लिए खूंटे से बांधा जाता है। बेल के पौधों में साधारणत: कोई कटाई छंटाई की आवश्यकता नहीं होती है तथापि बड़े पेड़ से अवांद्दित अंकुरों, रोगग्रस्त तथा आड़ी एवं तिरछी शाखाओं को काटने का सुझाव दिया जाता है।

कीट नाशीजीव तथा रोगों का प्रबन्धन

बेल के पेड़ों में किसी गंभीर नाशीजीव व रोग की सूचना नहीं है। कुछ क्षेत्रों में जीवाणुवीय व्रणों का प्रकोप देखने में आया है। इस रोग से पत्तियां, टहनियां एवं फल प्रभावित होते हैं। प्रभावित भागों पर एक छल्ले से घिरा पानी से लथपथ क्षेत्र बन जाता है। इस रोग का नियंत्रण 1% बोर्डो मिश्रण या 200 पी.पी.एम. स्ट्रेप्टोमाइसिन के छिड़काव से किया जा सकता है।

कुछ चूसक नाशीजीव नए अंकुरों व पुष्प वृन्त के लिए एक समस्या बन जाते हैं। इन्हें कीटनाशकों के क्रमबद्ध छिड़काव से नियंत्रित किया जा सकता है।

कार्यिकीय विकार

बेल फलों का फटना एक मुख्य कार्यिकीय विकार है। इसका कारण भूमि में अचानक नमी में उतार चढ़ाव या फलों को तोड़ने में देरी करना है।

कटाई और उपज

अंकुरित पेड़ों पर रोपण के 4–5 वर्ष बाद और बीज से उगाए गए पेड़ों पर 8–9 वर्षों में फल लगते हैं। फल आमतौर पर अप्रैल–मई में तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं। पकने के बाद जब फल का रंग हरे से पीला होता है तो उसे तोड़ लिया जाना चाहिए। फलों की परिपक्वता के लिए 10 माह का समय लगता है। कटाई के समय डंठल फल के साथ लगा होना चाहिए। एक पूर्ण रूप से परिपक्व पेड़ से एक वर्ष में 300–500 फल प्राप्त होते हैं।

20.कैरमबोला/कामरख

पूजा बोहरा एवं अजित अरुण वामन

संक्षिप्त परिचय और महत्त्व

कैरमबोला दक्षिण पूर्व एशियाई मूल की एक फलीय प्रजाति है जिसे विश्व के अनेक उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में उगाया जाता है। आमतौर पर इसे *कामरख* या स्टार फल कहा जाता है। यह पांच कोने वाला एक आकर्षक फल है जो ऑक्सीकरणरोधी तत्वों, पोटेशियम व विटामिन सी के लिए महत्वपूर्ण है। इस फल में शर्करा व सोडियम की मात्रा कम होती है अत: यह उच्च रक्तचाप एवं मधुमेह आदि के रोगियों के लिए एक स्वस्थ विकल्प हो सकता है, तथापि किडनी सम्बन्धी विकार/समस्याओं के रोगियों को इसके सेवन से बचना चाहिए क्योंकि इससे समस्याओं में जटिलताएं उत्पन्न हो सकती हैं। फलों को तब खाया जाता है जब फलों का हरा रंग बदलकर हल्के हरेपन के साथ पीला हो जाता है। इन्हें विभिन्न व्यंजनों में उपयोग के अलावा मूल्यवर्धित उत्पादों, जैसे जूस, अचार आदि में भी प्रसंस्कृत किया जाता है। कैरमबोला एक विशेष फल है जो द्वीपीय परिस्थितियों में पूरे वर्ष फूल व फल देता है। यह अधिक धूप के साथ–साथ आंशिक छाया को भी सहन कर सकता है, अत: इसे एकल या नारियल के बागानो में अंतर–फसल के रूप में उगाया जा सकता है। घर के पिछवाड़े में इसके कुछ पौधों को उगाकर एक परिवार की आवश्यकता पूरी की जा सकती है। इन्हीं गुणों के कारण इसे द्वीपों में घरों के आस–पास अथवा वाणिज्यिक स्तर पर उगाने के लिए उपयुक्त माना जाता है।

स्थान का चुनाव

यह प्रजाति खुली धूप अथवा आंशिक छाया वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह उग सकती है। अच्छी जलनिकासी वाली मृदाएं पौधों के स्थापित होने में सहायक होती हैं। 180 से.मी. से अधिक वर्षा एवं उच्च आर्द्रता वाले क्षेत्र इस प्रजाति की वाणिज्यिक खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त होते हैं, अत: यह द्वीपों के लिए उपयुक्त है।

किस्में

भारत में कैरमबोला की कोई किस्म विकसित नहीं की गयी है, तथापि बाजार में दो विशिष्ट तरह की किस्में उपलब्ध हैं। खट्टी किस्म अधिक अम्लीय होती है और इसका उपयोग अचार आदि बनाने के लिए किया जाता है। इसे सब्जी को खट्टा करने व पीतल के बर्तनों को साफ करने के लिए भी उपयोग किया जाता है। दूसरी किस्म अर्थात मीठे प्रकार का उपयोग ताजे फलों के रूप में, सलाद, भोजन को सजाने व जूस बनाने के लिए किया जाता है।

प्रवर्धन

कामरख को बीज एवं कायिक प्रवर्धन विधियों जैसे कलम एवं मुकुलन द्वारा उगाया जा सकता है। सच्चे प्रकार के पौधों के लिए साफ्टवुड ग्राफ्टिंग तकनीक को अपनाया जाता है। एक वर्ष आयु के कलमी पौधों को खेत में रोपण के लिए उपयोग किया जाता है। इसका प्रवर्धन गूटी तकनीक द्वारा भी किया जा सकता है।

नक्शा एवं रोपण

रोपण के लिए 45 से.मी x 45 से.मी x 45 से.मी माप के गड्ढ़े तैयार किए जाते हैं और इन्हे 15–20 कि.ग्रा. सड़े गोबर की खाद एवं मिट्टी से भरा जाता है। मिट्टी व खाद को अच्छी तरह मिलाकर गड्ढ़े को फिर से भरा जाता है। रोपण के दौरान उचित आकार के रोपण गड्ढ़ों को खोदा जाता है। पौधों को रोपण के तुरंत बाद जल दिया जाता है क्योंकि यह पौधों को अच्छी तरह स्थापित होने में मदद करता है। बीच के स्थानों में खरपतवार नियंत्रक पॉलिथीन (वीडमैट) बिछाने से भूमि में नमी सरंक्षित होने के साथ–साथ मजदूरों की आवश्यकता में भी कटौती होती है।

पोषण प्रबन्धन

चूँकि फसल में बहुमौसमी पुष्प देखे जाते हैं, पोषक तत्वों को किस्तों में देना लाभदायक होता है। जैविक खादों जैसे गोबर की खाद, केंचुए की खाद, नीम की खली आदि का उपयोग किया जाना चाहिए। एक वयस्क बड़े पेड़ को लगभग 15–20 कि.ग्रा. गोबर की खाद प्रति वर्ष दी जा सकती है।

सिंचाई और खरपतवार प्रबंधन

यह फसल नमी की कमी के प्रति संवेदनशील है, अत: पौधों की उचित वृद्धि के लिए विशेषत: पौधे की प्रारंभिक विकास अवस्था में एवं सूखे के दौरान सिंचाई की आवश्यकता होती है। हालांकि निचले क्षेत्रों में भूमि को जलमग्न नही करना चाहिए और जल निकास का प्रबंध होना चाहिए।

अंतःसस्य क्रियाएं

कैरमबोला की लटकती हुई शाखाओं पर फल लगते हैं जिससे तेज हवाओं के कारण इन्हें क्षति पहुँच सकती है। अत: प्रारम्भ के 2–3 वर्षों के दौरान कमजोर शाखाओं को हटा दिया जाना चाहिए ताकि पौधों का मजबूत ढांचा बन सके। मजबूत दुशाखी कोण वाली चार से पाँच शाखाओं को विकसित होने देना चाहिए। बाद के वर्षों में, शाखाओं की छंटाई एवं मुख्य शाखाओं की कटाई पेड़ की उचित बनावट बनाए रखने के लिए आवश्यक होती है।

कीट–नाशीजीव एवं रोग प्रबन्धन

द्वीपों में नाशीजीवों एवं रोगों की कोई गंभीर घटनाएं दर्ज नहीं हुई हैं।

कार्यिकीय विकार

फलों को रेफ्रीजरेटर में नहीं रखना चाहिए अन्यथा शीतलन क्षति हो सकती है।

कटाई व उपज

कलम और मुकुलन वाले पौधे रोपाई के 2–3 वर्ष में फल धारण करने लगते हैं और वाणिज्यिक उपज 7–8 या इससे अधिक वर्षों में प्राप्त की जा सकती है। चूंकि इसमें बहु फलन ऋतुएं होती हैं, अत: एक वर्ष में तीन फसलें प्राप्त हो सकती हैं और उत्पाद लम्बे समय तक बाजार में उपलब्ध रह सकते हैं। फलों की आकर्षक आकृति पर्यटक स्थलों में बेचने के लिए उन्हें उपयुक्त बनाती है। इस फल को 21^0 से. तापमान पर दो सप्ताह तक भंडारित किया जा सकता है।

21.रामबूटान

पूजा बोहरा एवं अजित अरुण वामन

संक्षिप्त परिचय और महत्त्व

रामबूटान, जिसे आमतौर पर 'रोएं वाली लीची' कहा जाता है, मलायन द्वीपसमूह मूल का एक उष्णकटिबंधीय फल है। इसके फल लाल, पीले या नारंगी रंग के और दिखने में लीची जैसे होते हैं। अंतर यह है कि इस पर रोएं होते हैं और इसका खाने योग्य गूदा बीज के साथ लगा होता है। ये फल रसदार और पौष्टिक होते हैं! इससें स्क्वैश, डिब्बा बंद गूदा, जैम, जेली आदि मूल्य संवर्धित उत्पाद बनाए जा सकते हैं। इसकी खेती थाईलैंड, इंडोनेशिया, मलेशिया, फिलीपींस, श्रीलंका और ऑस्ट्रेलिया व दक्षिण अमेरिका के कुछ हिस्सों में व्यावसायिक रूप से की जाती है। आजकल इसकी खेती भारतीय राज्यों जैसे केरल, तमिलनाडु और कर्नाटक में लोकप्रिय हो रही है। यह फसल मुख्य रूप से अन्य उष्णकटिबंधीय फसलों जैसे मैंगोस्टीन, ड्यूरियन और पुलासान के साथ मिश्रित फसल के रूप में उगायी जाती है। उष्णकटिबंधीय द्वीपों जैसे अंडमान और निकोबार के लिए इस फसल की संभावनाओं को देखते हुए फलों की खेती में विविधीकरण के लिए इसकी खेती एक व्यवहार्य विकल्प हो सकती है।

स्थान का चयन

अच्छे जल निकास वाली कार्बनिक पदार्थों से युक्त दोमट मृदा इसके लिए उपयुक्त होती है। इस फसल को मैंगोस्टीन, ड्यूरियन और पुलासान के साथ अच्छी तरह से उगाया जा सकता है और इसकी खेती नारियल के बागानों में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है।

किस्में

यद्यपि इस फल की 200 से अधिक किस्में इसे उगाने वाले विभिन्न देशों में उपलब्ध हैं, हाल ही में भारत में इस फसल के सुधार कार्यक्रम प्रारम्भ हुए हैं। भा.कृ.अनु.प.–भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर ने दो उन्नत किस्में अर्का कूर्ग अरुण और अर्का कूर्ग पीताभ जारी की है। इनके अलावा, केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु के विभिन्न हिस्सों में निजी नर्सरियों द्वारा कई प्रकार की आशाजनक किस्मों की पहचान की गई है।

प्रवर्धन

रामबूटान को मुख्य रूप से मुकुलन (बडिंग), सन्निकर्ष कलम या एयर लेयरिंग (गूटी) के माध्यम से प्रवर्धित किया जाता है, जबकि नवोद् भिद पौधों को केवल रूटस्टॉक के रूप में उपयोग करना चाहिए। नवोद् भिद पौधों में बीज बोने के 9–10 माह बाद कलम लगाने योग्य परिपक्वता आ जाती है। रोपण सामग्री प्रतिष्ठित नर्सरियों से प्राप्त करनी चाहिए।

लेआउट और रोपण

अन्य फलीय फसलों की तरह रामबूटान को भी मानसून के शुरुआत में रोपित किया जाता है। वानस्पतिक रूप से प्रवर्धित पौधों के लिए 60–90 घन से.मी. के आकार के गड्ढे वांछित दूरी (6 मी. x 6 मी.) पर खोदे जाते हैं, जिसमें प्रति हेक्टेयर 278 पौधे लगाए जा सकते हैं। संकर परागण की सुविधा के लिए रोपण में एक से अधिक किस्में/प्रजाति/क्लोन सम्मिलित करने की सलाह दी जाती है। बीज से बनाये पौधों के लिए अधिक दूरी (10–12 मी.) की सिफारिश की जाती है। रोपण के लिए लगभग एक वर्ष की आयु के पौधों का उपयोग किया जाना चाहिए। पौधों की प्रारंभिक स्थापना के लिए छाया की व्यवस्था आवश्यक है।

पोषक तत्व प्रबंधन

पेड़ जैविक खाद के प्रयोग से खूब फलते फूलते हैं। एक वयस्क पेड़ को लगभग 2–3 कि.ग्रा. केंचुए की खाद और 15–20 कि.ग्रा. गोबर की खाद प्रति वर्ष देने की आवश्यकता होती है। पेड़ की उम्र/वृद्धि दर के आधार पर यह खुराक बढ़ाई जा सकती है। पोषक तत्वों को किस्तों में देने की संस्तुति की जाती है।

सिंचाई और खरपतवार प्रबंधन

रामबूटान की खेती आम तौर पर वर्षा आधारित फसल के रूप में की जाती है। तीन से चार सप्ताह की एक छोटी सूखी अवधि नए फूलों के लगने को प्रोत्साहित करती है; हालांकि, फल वृद्धि एवं विकास की नाजुक अवस्थाओं के दौरान लंबे समय का सूखा हानिकारक होता है। अत: इन नाजुक अवस्थाओं के दौरान रक्षात्मक सिंचाई की आवश्यकता होती है। पेड़ों के बेसिन को पूरे वृद्धि काल के दौरान खरपतवार रहित रखना चाहिए और इसमें जैविक पदार्थों की मल्चिंग उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

सस्य क्रियाएं

खुली केन्द्रीय व्यवस्था में पेड़ों की काट छांट से बेहतर प्रकाश छेदन होता है जिससे नाशीजीव और रोग प्रकोप की घटनाएं कम हो जाती हैं और शाखाओं के आड़े तिरछेपन से बचा जाता है। एक अच्छे छंदोवा (कैनोपी) में सभी दिशाओं में फैलने वाली शाखाएं अधिकतम संख्या में होनी चाहिए। कम दूरी की रोपाई में वानस्पतिक घनत्व को कम करने के लिए नियमित रूप से छंटाई करने की आवश्यकता होती है। पेड़ों की ओजस्विता बनाए रखने के लिए नियमित अंतराल पर मृत व रोगग्रस्त शाखाओं और तनो पर उगने वाली सीधी शाखाओं को हटाते रहना चाहिए। कटाई के बाद नए विकास को बढ़ावा देने के लिए हाल ही में फल दे चुकी वाली टहनियों की छटाई कर दी जाती है। जहां पक्षियों से हानि आम हो, ऐसे क्षेत्रों में फलों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए पेड़ों को जाल से ढक देना चाहिए। स्वभाव से संकर–परागित फसल होने के कारण, प्रति हेक्टेयर 4–5 मधुमक्खियों के छत्तों को बनाए रखना चाहिए जिससे फलो की संख्या में सुधार होता है।

नाशीकीट और रोग प्रबंधन

चूँकि रामबूटान द्वीपों के लिए एक नई फसल है, इसलिए इन पहलुओं पर कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। कर्नाटक और केरल में स्थित बागानों में फलों के विकास की सभी अवस्थाओं पर मीली बग कीट का संक्रमण आम तौर पर देखा गया है, जिसके परिणामस्वरूप उपज और गुणवत्ता में कमी आती है। पेड़ो पर डाईमेथोएट (2 मि.ली./ली.) से छिड़काव करने पर इनसे होने वाली क्षति को कम करने में मदद मिल सकती है। दूसरे रस चूसने वाले अन्य कीट जैसे थ्रिप्स और माइट्स को विभिन्न स्थानों पर देखा गया है। इनको नीम तेल (2 मि.ली./ली.) के प्रयोग से नियंत्रित किया जा सकता है। वर्तमान अध्य यनों में 5 मि.ली./ली. जैवनियंत्रण उत्पादों जैसे लास्ट्रॉ के प्रयोग से चूसक कीटों के नियंत्रण में सकारात्मक परिणाम पाए गए। भारत में अभी तक इस फसल में कोई गंभीर रोग नहीं देखा गया है।

कार्यिकीय विकार

फलों की परिपक्वता की उन्नत अवस्था के दौरान आकस्मिक वर्षा होने पर फलों में फटन की घटनाएं बढ़ जाती हैं। शुष्क मौसम के दौरान मृदा में पर्याप्त नमी बनाए रखने के लिए उचित सिंचाई का प्रबंध करके इस समस्या को कम किया जा सकता है।

तुड़ाई और उपज

वानस्पतिक रूप से प्रवर्धित पौधों में खेत में लगाने के 3–4 वर्षों में फल लगने प्रारम्भ हो जाते हैं। द्वीपीय स्थितियों में पुष्पण मार्च के महीने में प्रारम्भ हो कर मई तक जारी रहता है। फल को परिपक्वता में आने में लगभग चार महीने लगते हैं और मुख्य उपज जून–जुलाई माह में प्राप्त होती है। फल जब लाल या पीले हो जाते हैं तो तुड़ाई कर लेनी चाहिए। फलों का रंग किस्मों पर निर्भर करता है। लगभग 15–20 प्रतिशत फूल फलों में परिवर्तित हो जाते हैं और पूर्ण परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं। दक्षिण भारतीय परिस्थितियों में अच्छे सस्य प्रबंधन से दस वर्षीय पेड़ से लगभग 25 कि.ग्रा. फल प्राप्त हो जाते हैं।

22.मैंगोस्टीन

पूजा बोहरा एवं अजित अरूण वामन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

मैंगोस्टीन दक्षिण पूर्वी एशियाई मूल की फसल है, जिसे फलों की रानी कहा जाता है। अपने रूचिकर स्वाद एवं सौंदर्यपूर्ण आकार के कारण यह विश्व का सबसे सुन्दर फल माना जाता है। यह फसल मलेशिया, इंडोनेशिया, थाईलैंड, वियतनाम, फिलीपीन्स में अत्यंत लोकप्रिय है और भारत एवं पश्चिमी बाजारों में भी लोकप्रिय हो रही है। भारत में तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, गोवा एवं महाराष्ट्र के तटीय क्षेत्रों में इसकी खेती प्रारम्भ की गई है। अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह की जलवायु इसके मूल क्षेत्र की जलवायु के समान होने के कारण द्वीपों में इसकी खेती की अच्छी सम्भावनाएं हैं। इसके अतिरिक्त इसकी खेती नारियल के बागानों में भी अच्छी तरह हो सकती है। हाल ही में राज्य कृषि विभाग, अंडमान एवं निकोबार ने किसानों में इस फसल की रोपण सामग्री का वितरण कार्य प्रारम्भ किया है।

स्थान का चयन

मैंगोस्टीन के पौधे एवं फल खुली धूप के प्रति संवेदनशील होते है और छाया उपलब्ध न होने पर पौधे एवं फल को उल्लेखनीय क्षति हो सकती है। अत: चयनित स्थान पर फल की उचित वृद्धि एवं विकास के लिए उपयुक्त छांव सुनिश्चित की जानी चाहिए। इसे नारियल तथा अन्य उष्णकटिबंधीय फलों जैसे रामबूटान, पुलासान, ड्यूरियन एवं एवोकैडो के साथ मिश्रित फसल के रूप में उगाया जा सकता है। अच्छी जल निकासी वाली मृदा में इसकी खेती अच्छी होती है, अत: निम्न जल निकासी वाले क्षेत्रों में इसे लगाने से बचना चाहिए।

किस्में

भारत में वाणिज्यिक खेती के लिए कोई उन्नत किस्में जारी नहीं की गई हैं। तथापि कुछ प्रख्यात निजी नर्सरियां कुछ बेहतर किस्मों की पहचान करके बड़े पैमाने पर इनका गुणन कर रही हैं।

प्रवर्धन

मैंगोस्टीन को वाणिज्यिक रूप से बीजों के माध्यम से प्रवर्धित किया जाता है और वानस्पतिक रूप से प्रर्वधित करना इसमें आम नहीं है। जड़ों पर रोओं की अनुपलब्धता के कारण कमजोर जड़ प्रणाली इस प्रजाति की अपने मूलवृन्त पर कलम लगाने में बाधा है। बीज मूलत: पार्थेनोजेनेटिक (अर्थात बिना परागण व निषेचन से बने) होने के कारण, बीजों से बने पौधों में कम परिवर्तनशीलता देखी गई है, अत: उन्हें रोपण के लिए उपयोग किया जा सकता है। मई से अगस्त के दौरान ताजे काटे गए फलों को बीज निकालने हेतु तुरन्त उपयोग किया जाना चाहिए। नर्सरी उत्पादन के लिए बड़े आकार के बीजों को वरीयता दी जाती है चूंकि इनसे स्वस्थ नवोद्भिद पौधे उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के बीजों को रेतीली क्यारियों में बोया जाता है, जिन्हें छांवयुक्त् स्थितियों में तैयार किया जाता है। अंकुरण के लिए बीजों को दो सप्ताह का समय लगता है और इन्हें दो पत्तियों की अवस्था में ऊपरी मृदा : रेत : गोबर की खाद (3:2:1) से भरे पॉली बैग में प्रतिरोपित किया जाता हैं।

लेआउट एवं रोपण

मैंगोस्टीन रोपण के लिए वर्षाकाल अनुकूल समय होता है। चौकोर रोपण पद्धति को अपनाते हुए 60–75 घन सेंटीमीटर आकार के गड्ढे खोदे जाते हैं। रोपण घनत्व 123 पौधे प्रति हैक्टेयर (9मी x 9 मी.) से 278 पौधे प्रति हैक्टेयर (6मी x 6 मी.) के बीच होता है। अच्छी तरह विकसित पौधे जिन पर 16 जोड़ी पत्तियाँ हों, उन्हें खेत रोपण के लिए चुना जाता है। प्रत्यक्ष सूर्य प्रकाश के प्रति संवेदनशील होने के कारण रोपण के तुरन्त बाद नारियल की पत्तियों या शेड नेट (50%) के उपयोग से छांव उपलब्ध करायी जानी चाहिए। यदि केले का अगेती रोपण किया जाए तो विकास की प्रारम्भिक अवधि के दौरान छांव के लिए उनका भी उपयोग हो सकता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

यद्यपि मैंगोस्टीन की तरूण अवस्था में इसे कम पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, परन्तु फल लगने की अवस्था में उपज को अधिकतम करने हेतु अनुकूलतम पोषक तत्व सहायक होते हैं। रोपण के दौरान गड्ढे में 10–12 कि.ग्रा. गोबर की खाद डालकर मृदा में मिलायी जानी चाहिए। नई फसल होने के कारण पोषक तत्वों की आवश्यकता पर कोई अनुसंधान कार्य नहीं हुआ है। तथापि प्रथम वर्ष के दौरान 500 ग्रा./पेड़ की दर से 15:15:15 को तीन किस्तों में दिया जा सकता है जिसे क्रमिक रूप से बढ़ाकर 10 वर्ष आयु के पेड़ के लिए 5 कि.ग्रा. किया जा सकता है। फलदायी पेड़ के लिए गौण एवं सूक्ष्मपोषक तत्वों की सिफारिश भी की जाती है।

सिंचाई एवं खरपतवार प्रबंधन

पौधों का विकास धीमी गति से होता है और पौधे जल जमाव व लम्बी सूखी अवधि के प्रति संवेदनशील होते हैं। वाणिज्यिक खेती के अंतर्गत सूखी अवधि के दौरान जीवन सुरक्षात्मक सिंचाई करनी चाहिए। फल विकास की सम्पूर्ण अवधि के दौरान टपक सिंचाई करने पर विकृतियों की घटनाएं कम होती हैं जैसे अल्पपारदर्शी गूदा तथा गैम्बोज (पीले रंग का स्राव) विकृतियां। दिसंबर से मार्च के दौरान फलदायी पेड़ों को प्रतिदिन 30–40 लीटर जल दिया जा सकता है। पौधों के बेसिन को हमेशा खरपतवार मुक्त रखना चाहिए ताकि पोषक तत्वों, जल आदि के लिए प्रतिस्पर्धा को कम किया जा सके।

सस्य क्रियाएं

मैंगोस्टीन के लिए सम्पूर्ण वृद्धिकाल में छांव की आवश्यकता होती है तथापि छांव की अधिकता से भी वृद्धि धीमी हो जाती है। मिश्रित फसलीकरण तथा नारियल के बागानों में पौधों की वृद्धि के लिए उपयुक्त सूक्ष्म जलवायु उपलब्ध होती है। नवोद्भिद पौधों को नुकसान से बचाने के लिए बाँस के पोल पर शेड नेट लगाकर पंडाल जैसी छाँव भी उपलब्ध करायी जा सकती है। पौधों को पतली लकड़ी के साथ बांधकर रखने से तेज हवाओं से होने वाली क्षति से बचा जा सकता हैं। पेड़ के बेसिन में धान के पुआल या अन्य जैविक पदार्थों जैसे नारियल की भूसी से मल्चिंग की जा सकती है ताकि नमी का संरक्षण एवं खरपतवारों का प्रकोप कम हो सके।

कार्यिकीय विकृतियां

अल्पपारदर्शी गूदा तथा गैम्बोज (पीले रंग का स्राव) विकृतियां मैंगोस्टीन की प्रमुख विकृतियां हैं, जो पुष्पण और फल विकास के दौरान जल असंतुलन से उत्पन्न होती हैं। आकस्मिक वर्षा और सूखा–नम स्थितियों से प्रकोप बढ़ता है। अल्पपारदर्शी गूदा विकृति का लक्षण गूदे में जल से लथपथ धब्बे होते हैं जब कि पेड़ के तने, शाखाओं और फलों से पीले राल जैसे पदार्थ का स्त्राव देखा जाता है। रोग तीव्र होने पर गूदा भी प्रभावित होता है जिससे ये खाने योग्य नहीं रह जाते हैं। टपक सिंचाई अपनाने तथा फल विकास के दौरान कैल्शियम क्लोराइड 10% का तीन बार छिड़काव (फल लगने के पश्चात् 6, 7 एवं 8वें सप्ताह में) करने से दोनों प्रकार की विकृतियों में कमी आती है।

कटाई एवं उपज

उचित रूप से प्रबंधित पौधों में रोपण के 6–8 वर्षों में पुष्पण होता है, तथापि प्रतिकूल स्थितियों में 10–12 वर्ष भी लगते हैं। द्वीपीय स्थितियों में पुष्पण जनवरी में प्रारम्भ हो कर अप्रैल तक जारी रहता है। पुष्पण के पश्चात् फल पकने में लगभग चार माह का समय लगता है जो सामान्यत: मई से अगस्त के दौरान पकते हैं। फलों का रंग आकस्मिक रूप से फीके हरे से लाल फिर गहरी बैंगनी रंग में परिवर्तित हो जता है। ऐसा होने पर फलों की कटाई कर लेनी चाहिए। अच्छी तरह विकसित एक पेड़ से लगभग 1500 फल मिलते हैं। फलों की कटाई सावधानीपूर्वक करनी चाहिए ताकि इनमें क्षति न हो और जमीन पर गिरने से संपीड़न के कारण बीजकोष सख्त होने से बचाया जा सके।

23.ब्रेड फ्रूट

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

यह मलेशिया मूल का फल है। ब्रेड फ्रूट में कार्बोहाइड्रेट की उच्च मात्रा (27.98%) होती है, जो केलों की मात्रा से भी अधिक है। यह कैल्शियम से समृद्ध, विटामिन ए एवं बी का अच्छा स्रोत है। इस फल का उपयोग मुख्यत: सब्जी आदि बनाने के लिए किया जाता है। अंडमान एवं निकोबार के जनजातीय लोगों के विभिन्न व्यंजनों में ब्रेड फ्रूट प्रमुख घटक है।

जलवायु एवं मृदा

ब्रेड फ्रूट मूलत: उष्णकटिबंधीय पेड़ है, जिसे आर्द्र जलवायु तथा भारी वर्षपात की आवश्यकता है। इसे समुद्री सतह से ले कर 900 मी. तक की ऊंचाई तक उगाया जा सकता है। समान रूप से वितरित 2000–2500 मि.मी. वर्षापात में ब्रेड फ्रूट को अच्छी तरह उगाया जा सकता है। इसके लिए अनुकूल तापमान 15.5^0 से. से 37^0 से. तथा नमी 70–80% है। ब्रेड फूट जलवायु की चरम परिस्थितियों को सहन नहीं कर सकता है। इसकी खेती के लिए लैटराइटिक लाल दोमट मृदा उपयुक्त होती है। मृदा में उच्च ह्यूमस एवं उच्च उर्वरता होनी चाहिए। उथली मृदा में यद्यपि प्रारम्भिक विकास संतोषजनक होता है, परन्तु देर–सवेर वृद्धि अवरूद्ध हो जाती है।

किस्में

ब्रेड फ्रूट की अब तक कोई नामित किस्म जारी नहीं हुई है।

प्रवर्धन

बीज निकालने के बाद शीघ्र ही अपनी अंकुरण क्षमता खो देती है, अत: इन्हें शीघ्र बो दिया जाना चाहिए। बीज रहित किस्मों का प्रवर्धन वानस्पतिक पद्धतियों से किया जाता है जैसे जड़ से निकले अंकुर, जड़ कतरन तथा जड़ के अंकुरों की गूटी। जड़ कतरन वाणिज्यिक पद्धति है। लगभग 2.5 से.मी. व्यास तथा 20 से.मी. लम्बाई कतरने की उपयुक्त होती हैं। क्षैतिज रोपण से केवल 40% की सफलता प्राप्त हुई है।

रोपण की अवधि एवं विधि

बीज से बने पौधों को 12 मी. x 12 मी. की दूरी पर रोपित किया जा सकता है। एक घनमीटर आकार के गड्ढे खोदकर उन्हें ऊपरी मिट्टी तथा गोबर की खाद या अन्य जैविक पोषक तत्वों से भर दिया जाता है। मानसून के प्रारम्भ में रोपण किया जा सकता है ताकि नवोद्भिद पौधे शीघ्र स्थापित हो सकें।

सिंचाई प्रबंधन

प्रथम एक या दो वर्ष सिंचाई की आवश्यकता होती है। तत्पश्चात् सूखे की अवधि के दौरान सिंचाई की आवश्यकता होती है।

खाद देना

सामान्यत: पेड़ को खाद नहीं दी जाती है। पेड़ लगाने वाले क्षेत्र की मृदा प्राकृतिक रूप से उच्च उर्वरता वाली होती है और कछारी जमाव से पेड़ अनुकूलतम वृद्धि प्राप्त कर लेते हैं।

खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार उन्मूलन के लिए पेड़ के बेसिन के इर्द-गिर्द हल्की गुड़ाई आवश्यक है। गहरी गुड़ाई करने से बचना चाहिए अन्यथा सतह के निकट की जड़ें क्षतिग्रस्त हो जाएंगी। इससे महीन जड़ निकलने में सहायता मिलती है जो प्रवर्धन के लिए उपयोगी हो सकती हैं।

अंत:फसलीकरण/कवर क्रापिंग

ब्रेड फ्रूट की खेती में प्रथम कुछ वर्षों तक अंत:फसलीकरण सम्भव है। नमी वाले क्षेत्र में पेड़ के विकास के बाद भी अदरक, काली मिर्च एवं वनीला जैसी फसलें उगायी जा सकती हैं जिन्हें छांव की आवश्यकता होती है। काली मिर्च एवं वनीला को पेड़ पर चढ़ाया जा सकता है। ब्रेड फ्रूट के पेड़ की छांव उन फसलों के लिए उपयोगी है।

पादप संरक्षण

ब्रेड फ्रूट को कोई गंभीर नाशीजीव या रोग प्रभावित नहीं करता है। कभी कभी फफूंद के कारण साफ्ट रॉट रोग हो जाता है जिससे गलन या फल गिरने लगते हैं। इस रोग का नियंत्रण बोर्डो मिश्रण (1%) के छिड़काव से किया जा सकता है।

कटाई एवं सस्योत्तर प्रबंधन

रोपण के पांचवें या छठवें वर्ष से फल लगते हैं। हस्त परागण से फल लगने की क्षमता में सुधार लाया जा सकता है। पुष्पवृंत निकलने के 60–90 दिनों में फल तैयार हो जाते हैं। परिपक्वता प्राप्त होने पर फल का रंग हरे से पीलेपन वाले हरे रंग में बदल जाता है। रसोई में उपयोग के लिए फलों को पकने से पूर्व तोड़ लिया जाना चाहिए।

उपज

एक पेड़ से वर्षभर में 50–100 फल (25 से 50 कि.ग्रा.) प्राप्त होते हैं। यदि फल गिर जाता है तो क्षतिग्रस्त हो जाता है। अत: फल को तोड़ने के लिए एक लम्बे पोल के एक सिरे पर हुक और कपड़े से बनी थैली लगाकर, उस पोल की सहायता से फल को काट लेना चाहिए ताकि फल नीचे न गिरे।

24.ड्रैगन फ्रूट (पिताया फल)

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

ड्रैगन फ्रूट ने हाल ही में विश्व भर के उत्पादकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया, न केवल इसके लाल बैंगनी रंग तथा खाद्य उत्पाद के रूप में आर्थिक मूल्य के कारण बल्कि इसके प्रचुर स्वस्थ्य लाभों के लिए। फल के छिलके ब्रैक्ट्स या स्केल से ढके रहते हैं, संभवत: इसके कारण ही यह पौराणिक प्राणी ''ड्रैगन'' जैसा दिखता है और इसका नाम ड्रैगन फ्रूट पड़ा है। ड्रैगन फ्रूट कैक्टस प्रजाति की ऊपर की ओर चढ़ती, तेजी से बढ़ने वाली बारहमासी लता है। अपने जन्म के मूल केन्द्रों से यह फल उष्णकटिबंधीय और उप–उष्णकटिबंधीय अमेरिका, एशिया, आस्ट्रेलिया और मध्य पूर्व तक फैल गया है। वर्तमान में इस फल को कम से कम 22 उष्णकटिबंधीय देशों में उगाया जा रहा है। ऐतिहासिक प्रमाणों से सूचित होता है कि इस फसल को 100 वर्ष पूर्व फ्रेंच वासियों ने वियतनाम में प्रवेश कराया और यह राजा के लिए उगाया जाता था। बाद में यह फल देश के धनी परिवारों में लोकप्रिय हो गया है। भारत में ड्रैगन फ्रूट का प्रवेश हाल ही में हुआ है। भारत के कुछ राज्यों में इसे उद्यमियों द्वारा वाणिज्यिक रूप से उगाया जा रहा है। इस फल की खेती द्वीपों में हाल ही में प्रारम्भ की गयी है और इस स्वास्थ्य वर्धक फल का बागान भा.कृ.अनु.प. – केन्द्रीय द्वीपीय कृषि अनुसंधान संस्थान में स्थापित किया गया है।

जलवायु एवं मृदा

ड्रैगन फ्रूट का पौधा विभिन्न प्रकार की मृदाओं जैसे रेतीली दोमट से चिकनी दोमट तक की तथा विभिन्न तापक्रमों में जीवित रहता है। इसकी खेती के लिए उष्णकटिबंधीय जलवायु अत्यंत उपयुक्त है। यद्यपि अंडमान एवं निकोबार द्वीपों में अच्छी वर्षपात होती है, ड्रैगन फ्रूट की खेती छिद्रयुक्त अध:स्तर (पोरस मीडिया) में अच्छे जैविक पदार्थ एवं जल निकासी की स्थितियों में सफलतापूर्वक की जाती है।

किस्में

ड्रैगन फ्रूट की तीन सामान्य किस्में हैं जिन्हें बड़े पैमाने में बेचा जाता है: 1) छिलका एवं गूदे का रंग लाल 2) छिलके का रंग लाल और गूदे का रंग सफेद और 3) पीले छिलके और सफेद गूदा। इनके अलावा विश्व के कई भागों में अनेक प्रकार के संकर उपलब्ध हैं जिनके छिलके और गूदे के विभिन्न रंग होते हैं, पीले रंग से गहरी मेजेंटा या गहरा लाल।

प्रवर्धन

ड्रैगन फल का प्रवर्धन अधिकांशत: कतरनों से किया जाता है। खेत में रोपण के लिए 20–30 से.मी. लम्बीं जड़युक्त कतरनों का उपयोग किया जाता है।

मुख्य खेत में रोपण विधि

ड्रैगन फ्रूट की खेती में सलाखें लगाना महत्वपूर्ण है। पौधों को सीधी वृद्धि एवं विकास के लिए इन्हें कंक्रीट या लकड़ी के स्तम्भों की सहायता देनी चाहिए। जड़युक्त कतरनों को अनुपयोगी टायर या कांक्रीट की बनी चौकाकार संरचनाओं में रोपित किया जाता है ताकि मृदा अपरदन एवं अध:स्तर संयोजन में आंतरिक निकासी की रोकथाम हो सके। अध:स्तर संरचनाओं (मीडिया स्ट्रक्चर) के ठीक मध्य भाग में कांक्रीट या लकड़ी के कॉलम खड़े किए जाते हैं ताकि ड्रैगन फ्रूट के पौधें इन पर चढ़ सकें। कतरनों की वृद्धि प्रारम्भ होने के पश्चात तने को इन कॉलमों से बांध दिया जाता है। सामान्यत: एक कॉलम के लिए चार कतरन रोपे जाते हैं। मुख्य तने के कॉलम पर 90 से.मी. की ऊंचाई तक पहुंचने के बाद शाखाओं को उगने दिया जाता है। एक कॉलम से दूसरे कॉलम की दूरी और एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति की दूरी 3 मी. होती है। कॉलम के ऊपरी सिरे पर गोल/चक्राकार धातुई फ्रेम या कांक्रीट से बनी चौकाकार संरचना बनाने की सिफारिश की जाती है ताकि ड्रैगन पौधे संतुलित रूप में लटकते रह सकें।

खाद देना

ड्रैगन फल की खेती में जैविक पदार्थ महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रत्येक पौधे को 10 से 15 कि.ग्रा. जैविक खाद देनी चाहिए। तत्पश्चात्, प्रत्येक वर्ष जैविक उर्वरकों की मात्रा में 2 कि.ग्रा. की वृद्धि करनी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

कैक्टस परिवार से संबंधित होने के कारण ड्रैगन फ्रूट को जल की आवश्यकता कम होती है। तथापि रोपण, पुष्पण, फल विकास अवस्था तथा गर्म सूखी जलवायुवीय स्थितियों में बारम्बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। जल के प्रभावकारी उपयोग के लिए टपक सिंचाई अपनायी जा सकती है।

खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार नियंत्रण के लिए वीड मैट्स का उपयोग किया जा सकता है। नियमित रूप से बेसिन की सफाई की जानी चाहिए अन्यता लता की वृद्धि एवं विकास अवरूद्ध हो सकते हैं।

पादप संरक्षण

नाशीजीव

इसकी खेती में मीली बग का ग्रसन देखा गया है। नीम के तेल का 3–5 मि.ली./ली. जल की दर से छिड़काव करने से इस नाशीजीव का नियंत्रण किया जा सकता है।

रोग

इस फसल में मुख्य रूप से कवक से होने वाले एंथ्राक्नोज और फंगल स्पॉट रोग देखा गया है। पादप स्वच्छता तथा मैंकोजेब और कॉपर आक्सीक्लोराइड (2.0% की दर से) के छिड़काव से रोग को नियंत्रित किया जा सकता है। जीवाणुवीय तना सड़न रोग को भी ड्रैगन फ्रूट के बागानों में देखा गया है। कॉपर आक्सीक्लोराइड का 0.25% की दर से छिड़काव करने से रोग को नियंत्रण में रखा जा सकता है।

कटाई एवं सस्योत्तर प्रबंधन

ड्रैगन फ्रूट की वृद्धि तेजी से होती है और जड़युक्त कतरनों के रोपण से 8 से 9 माह बाद पुष्पण प्रारम्भ हो जाता है। द्वीपों में पुष्पण मार्च माह में प्रारम्भ होता है और फलन जून से प्रारम्भ हो कर दिसम्बर तक होता है। रोपण के तीन वर्ष बाद ही फलों की स्थिर उपज प्राप्त होती है। पुष्पण के 25–35 दिनों के पश्चात् फल कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। फलों के रंग चमकदार हरे रंग से लाल रंग में बदल जाने पर फलों की कटाई अवस्था की पहचान होती है। फलों के रंग बदलने के 3–4 दिनों बाद स्थानीय बाजारों के लिए कटाई का उपयुक्त समय है। परन्तु लम्बी दूरी तक परिवहन/निर्यात के लिए रंग बदलाव देखने के बाद तुरन्त कटाई की जानी चाहिए। फलों की कटाई चाकू या हंसिया से की जानी चाहिए।

उपज

ड्रैगन फ्रूट की खेती में प्रारम्भिक लागत कुछ अधिक है विशेषकर जंगल (ट्रेल्लीस) आदि के निर्माण के लिए, परन्तु एक बार पौधे स्थापित हो जाने के बाद 20 वर्षों तक लगातार फल प्राप्त हो सकते हैं। फलों की उपज दूसरे वर्ष से प्राप्त हो सकती है। तीसरे वर्ष के अंत में औसत उपज 10000–12000 कि.ग्रा./है. होती है।

25.गोभी वर्गीय फसलें (फूल गोभी एवं बंद गोभी)

दिव्या परिसा, सूबेदार यादव एवं आई. जयशंकर

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

अंडमान एवं निकोबार द्वीपों में दैनिक मानव आहार में गोभी की फसलें महत्वपूर्ण सब्जियाँ हैं। अनुकूलतम मासिक औसत तापमान 18–25^0 से. है जिसका अधिकतम औसत 25^0 से. तथा न्यूतनतम औसत 8^0 से. है। अंडमान द्वीप में अगेती किस्मों को वरीयता दी जाती है क्योंकि अनुकूलतम वृद्धि एवं उच्च उपज के लिए इसे उच्च तापमान की आवश्यकता होती है।

भूमि का चयन

गोभी की फसलें अधिकांशत: दोमट से बलुई दोमट मृदा में उगाई जाती है। अच्छी तरह सूखी हुई एवं जैविक रूप से समृद्ध मृदा उच्च उपज प्राप्त करने हेतु उपयुक्त है। अगेती किस्में हल्की मृदाओं में अच्छी तरह उगती हैं। पछेती किस्मों के लिए भारी मृदाएँ उपयुक्त हैं। गोभी की फसलें उच्च अम्लीयता के प्रति संवेदनशील हैं। अच्छी फसल के लिए इन्हें 6.0 से 7.2 की औसत पीएच की आवश्यकता होती है।

खेत की तैयारी

मृदा को सर्वप्रथम एक या दो बार जोता जाता है, तत्पश्चात उसे बारीक करने हेतु दो या तीन बार पाटा जाता है। मृदा में जैविक पदार्थों की वृद्धि के लिए गोबर की खाद 20–25 टन/है. मिट्टी में मिलाया जाना चाहिए। तत्पश्चात् 50 से 100 सें. मी. चौड़ी तथा अनुकूल लंबाई की मेड़ एवं फरो बनाए जाते हैं।

किस्में

फूल गोभी	अर्ली कुंवारी, पूसा मेघना, पूसा हिम ज्योति, पूसा दीपाली, पूसा शरद, पूसा स्नोबॉल के–1, पूसा सिंथेटिक, पूसा हाइब्रिड–2, पूसा हाइब्रिड–3 तथा पूसा शुभ्रा
बंद गोभी	पूसा अगेती, गोल्डन एकड़, रेड ड्रम हैड तथा प्राइड ऑफ इंडिया

नर्सरी तैयारी

फूल गोभी एवं बंद गोभी के एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए अनुकूलतम नर्सरी क्षेत्र की आवश्यकता 100 वर्ग मीटर है। अच्छी तरह सूखे हुए खुले स्थान का चयन करें। मृदा को बारीक बनाएं एवं इसमें 10 कि.ग्रा. गोबर की खाद या 5 कि.ग्रा. वर्मी कम्पोस्ट/वर्ग मीटर मिलाएं। उपयुक्त निकासी सुविधा वाली ऊंची क्यारियाँ (1 मीटर चौड़ी, 5 से 7 मीटर लंबी एवं 20 से 30 सें.मी. ऊंची) तैयार करें। नवोद्–भिद पौधों को प्रो–ट्रे में उगाया जा सकता है। बीजों को बेविस्टिन या थीरम 2 ग्रा./कि.ग्रा. की दर से उपचार सुनिश्चित करें। रोपण कार्य 10 सें.मी. की पंक्तियों मं और 1–2 सें.मी. गहराई में किया जाना चाहिए। पंक्तियों को गोबर की खाद से ढक दिया जाना चाहिए। बीज बोने के पश्चात त्वरित एवं अच्छे अंकुरण के लिए क्यारियों को सूखे घास या धान के पुआल से ढक कर रखना चाहिए। नियमित रूप से जल देना, निकासी तथा रोग–कीट प्रबंधन कार्य किया जाना चाहिए। भारी वर्षा की क्षति से बचने के लिए नर्सरी संरक्षण में पौधो को उगायें।

रोपण की अवधि एवं विधि

बाजार मूल्यों में उतार–चढ़ाव के जोखिम को कम करने एवं उच्च आय को सुनिश्चित करने हेतु मासिक अंतराल पर क्रमबद्ध पद्धति से बोने का सुझाव दिया जाता है। द्वीप में फूल गोभी एवं बंद गोभी का रोपण अक्तूबर–दिसंबर माह में किया जाता है। ऊंची बीज क्यारियों में पंक्तियों के बीच 10 सें.मी. की दूरी रखते हुए बीजों को बोया जाता है। 30 से 40 दिन वाले नवोद्–भिद पौधों को 45 सें.मी. x 45 सें.मी. तथा 60 सें.मी. x 60 सें.मी. की दूरी बनाकर प्रतिरोपित करें।

बीज दर

बंद गोभी एवं फूल गोभी की अगेती किस्मों के लिए 500–750 ग्रा./हे. जबकि पछेती किस्मों के लिए 400–500 ग्रा./है. की दर से बीजों की आवश्यकता होती है।

उर्वरक और खाद प्रबंधन0

मृदा परीक्षण द्वारा निर्धारित मृदा की उर्वरता स्तर पर खाद एवं उर्वरकों की आवश्यकता निर्भर करती है। यदि मृदा परीक्षण संभव न हो तो खेत की अंतिम तैयारी के दौरान 20 से 25 टन/है. की दर से गोबर की खाद का उपयोग किया जाता है। 250 कि.ग्रा. यूरिया, 300 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 100 कि.ग्रा. म्यूरिएट ऑफ पोटाश प्रति हैक्टेयर दिया जाना चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

मार्च–अप्रैल के दौरान गहरी जोताई से खेत में खरपतवारों की संख्या घटती है। फसल उपज पर खरपतवारों के क्षतिपूर्ण प्रभाव से बचने के लिए 10 से 15 दिनों के अंतराल पर निराई एवं गुड़ाई आवश्यक है।

जल प्रबंधन

प्रारंभिक दिनों में 3–4 दिनों के अंतराल पर नियमित सिंचाई आवश्यक है। तत्पपश्चात इसे 7 से 10 दिनों के अंतराल पर दिया जा सकता है। गुणवत्तायुक्त अच्छी उपज के लिए नाली या ड्रिप सिंचाई बेहतर है। नमी संरक्षण एवं खरपतवार प्रबंधन के लिए प्लास्टिक, सूखे घास, धान के पुआल से मल्चिंग का सुझाव दिया जाता है।

कीट नाशीजीव प्रबंधन

फूल गोभी में कार्यिकीय विकृतियां

1. **बटनिंग:** इस विकृति की पहचान छोटे कर्ड के विकास से होती है। बटनिंग का कारण अधिक आयु के नवोद्–भिद पौधे, निम्न स्तर की नाइट्रोजन आपूर्ति, गलत किस्मों का रोपण, यानी अगेती किस्म को देर से रोपित करना तथा कीटों या कुछ रोगों के कारण जड़ों की क्षति से भी होता है।
2. **ब्राउनिंग:** यह समस्या बोरॉन की कमी से उत्पन्न होती है। कर्ड के मध्य भाग में जल से लथपथ छोटे धब्बे प्रकट होते हैं। तत्पश्चात तने की कैवेटी की दिवारों के आस–पास रिक्त ऊतकों से तना खोखला हो जाता है। रोग तीव्र होने पर कर्ड की सतह पर गुलाबी या रस्टी ब्राउन धब्बे विकसित हो जाते हैं। प्रभावित कर्ड में कड़वा स्वाद उत्पन्न हो जाता है। बोरेक्स या सोडियम बोरेट 20 कि.ग्रा./हे. की दर से उपयोग कर इसे नियंत्रित किया जा सकता है। अत्यधिक कमी होने पर बोरेक्स द्रव्य 0.25 से 0.50% का 1 से 2 कि.ग्रा./है. की दर से छिड़काव का सुझाव दिया जाता है।
3. **व्हिपटेल:** इसका कारण मोलिबडेनम की कमी है। पत्ती के पटल उचित रूप से विकसित नहीं होते हैं और ये एक पट्टी के आकार में रह जाते हैं। विकास विकृत हो जाता है और बेचने योग्य हैड बन नहीं पाता है। यह 4.5 पीएच से कम अम्लीय मृदाओं में होता है। 5–7.5 टन/है. लाइम स्टोन या सोडियम या अमोनियम मॉलिबडेट के उपयोग से मृदा का पीएच स्तर 6.5 करके इसकी रोकथाम की जा सकती है। सोडियम मॉलिबडेट 0.5% के पर्णीय छिड़काव की सिफारिश भी की जाती है।

रोग

ब्लैक लैग

यह घटना अनेक प्रदेशों में होती है, विशेषकर वृद्धि काल के दौरान वर्षपात वाले क्षेत्रो में। बीजों द्वारा कवकों का वहन किया जाता है, अत: यह प्रारंभिक अवस्था में उत्पन्न होता है। प्रभावित पौधे के तने को लंबवत चीरने पर कवक का काला रंग देखा जा सकता है। संपूर्ण जड़ प्रणाली नीचे से ऊपर की ओर गलने लगती है। प्रभावित पौधे अक्सर खेतों में गिर जाते हैं। चूंकि, मुख्य संक्रमण बीजों द्वारा होता है, अत: गर्म जल उपचार 50^0 से 55^0 से. पर 5 मिनट तक करना बीच उपचार के लिए उपयोगी है। रोग को कम करने हेतु कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का 2 ग्रा./लीटर की दर से छिड़काव किया जाता है। रोग प्रभाव से बचने के लिए प्रतिरोधी किस्म, जैसे पूसा ड्रम हैड का उपयोग किया जाता है।

ब्लैक रॉट

यह एक जीवाणुवीय रोग है, संक्रमित पौधा अविकसित रह जाता है। एक ओर का बीजपत्त पीले से काला पड़ जाता है, नीचे की ओर झुककर समय से पूर्व गिर पड़ता है। नीचे की अनेक पत्तियां भी शीघ्र गिर जाती हैं। शेष पत्तियों का रंग पीला पड़ जाता है जिस पर काली शिराएं दिखती हैं। पत्ती के सीमांत क्षेत्र में 'वी' आकार के क्लोरोटिक से पीले घाव उभर आते हैं। बीजों को प्लांटमाइसिन (100 पीपीएम) या एग्रिमाइसिन 100 (100 पीपीएम) या स्ट्रेप्टोसाइकलिन से उपचारित करने पर रोग में उल्लेखनीय कमी देखी गई है।

मस्टर्ड एफिड्स

एक हरे सफेद छोटे कीट बंद गोभी एवं अन्य गोभी फसलों को संक्रमित करता है, जब मेघाच्छादित मौसम होता है। ये कीट पौधों से रस चूस लेते हैं। संक्रमित पत्तियाँ मुड़ जाती हैं और पौधा कुम्हला कर मर जाता है। अगेती रोपण एफिड संक्रमण से बचाता है। एफिडों के नियंत्रण के लिए नीम सूत्रणों का छिड़काव किया जाता है। किसी भी कीटनाशक, जैसे मिथाइल डेमाटोन या डाइमिथोएट 30 ईसी 1 मि.ली./ली. जल की दर से फसल पर छिड़काव करने पर एफिडों का प्रभावकारी नियंत्रण होता है।

डायमंड बैक मौथ

एक छोटे पतले हरे रंग की सूंडी जो पत्तियों को खाती है, उनमें सुराख कर देती हैं। संक्रमित फल विपणन के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। द्वीपीय जलवायु में डायमंड बैक मोथ प्रकोप को प्रभावकारी रूप से नियंत्रण करने में ट्रैप क्रॉप के रूप में सरसों का उपयोग किया जाता है। अत: द्वीप में डायमंड बैक मोथ के नियंत्रण के लिए इस पद्धति की सिफारिश की जाती है। बंद गोभी रोपण से 15 दिन पूर्व सरसों की फसल को बोया जाता है।

कटाई, सस्योत्तर प्रबंधन एवं उपज

फूल गोभी की अनुकूलतम परिपक्वता अवस्था में कटाई की जानी चाहिए, जब कर्ड सख्त रहता है। प्रतिरोपण के 80 से 90 दिनों के पश्चात कर्ड कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। अगेती किस्मों की उपज 80–120 क्विंटल/है. जबकि पछेती किस्मों की उपज 150–200 क्विंटल/है. है। अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह की स्थितियों में बंद गोभी की कटाई दिसंबर से फरवरी के दौरान की जाती है। प्रतिरोपण से 60–80 दिनों में अगेती बंद गोभी के किस्मों की कटाई की जाती है, जबकि पछेती किस्मों की कटाई प्रतिरोपण के 100–120 दिनों पर की जाती है। पछेती किस्मों की उपज 400–500 क्विंटल/है. तथा अगेती किस्मों की 250–300 क्विंटल/है. होती है।

26.टमाटर

दिव्या परिसा, सूबेदार यादव एवं आई. जयशंकर

टमाटर अत्यंत महत्वपूर्ण 'रक्षात्मक आहार' है क्योंकि इसमें विशेष पौष्टिक गुण है और इसका उत्पादन व्यापक रूप से होता है। टमाटर खनिज तत्वों जैसे कैल्सियम (48 मि.ग्रा. /100 ग्रा.), सोडियम (12.9 मि.ग्रा),सूक्ष्म तत्व, कॉपर (0.19 मि.ग्रा) विटामिनों जैसे विटामिन ए (900 आई.यू), विटामिन बी काम्पलेक्स (थाइमीन), आवश्यक अमीनो अम्ल एवं स्वस्थ कार्बनिक अम्ल जैसे सिट्रिक एसिड, फार्मिक तथा एसिटिक एसिड्स स्रोतों से समृद्ध है। इसमें एस्कोर्बिक एसिड (15–20 मि.ग्रा./ 100 ग्रा.खाने योग्य भाग) की समृद्धता के कारण भारत में इसे आमतौर पर "गरीबों का संतरा'' कहा जाता है।

भूमि का चयन

टमाटरों को जैविक रुप से समृद्ध तथा अच्छी जल धारण क्षमता वाली मृदाओं में उगाया जाता है।अच्छी उपज के लिए बलुई दोमट मिट्टी या दोमट मिट्टी जिसका पी.एच. 6.0 से 7.0 के बीच हो उपयुक्त होता है जो टमाटर की अनुकूलतम वृद्धि एवं अच्छी उपज के लिए उपयुक्त है।

खेत की तैयारी

नवोद्–भिद पौधे ऊंची क्यारियों या मेड़ पर प्रतिरोपित किए जाते हैं। खेत को चार पांच बार अच्छी तरह जुताई कर 80 से 90 सें.मी. ऊंची क्यारियाँ और नालियाँ तैयार की जाती हैं। पौधों की बीच की दूरी उगाने जानेवाली किस्म की वृद्धि गुणों (डिटरमिनेट, इनडिटरमिनेट या सेमी– डिटरमिनेट) पर आधारित होती है और यह 60x30–45 सें.मी., 75 x 60 सें.मी., 75 x 75 सें.मी. की दूरी पर उगायी जाती है। कम दूरी पर प्रतिरोपित पौधों से जल्द–एवं उच्च उपज प्राप्त होती है परंतु फल का आकार छोटा होता है।

किस्में

अर्का सौरभ, अर्का विकास, अर्का आलोक, आयुष, अर्का सम्राट, अर्का रक्षक, बीटी–10 बीटी–1, अर्का आहूती, अर्का आभा, पूसा अर्ली ड्वार्फ, पूसा रूबी, पूसा शीतल, पूसा गौरव, पूसा रोहिणी।

नर्सरी की तैयारी

टमाटर की नर्सरी के लिए अच्छी तरह से सूखे खुले स्थान का चयन करें। मिट्टी की बारीक जोताई की जानी चाहिए। मिट्टी में 10 कि.ग्रा. गोबर की खाद या 5 कि.ग्रा.वर्मीकंपोस्ट प्रति वर्ग मीटर की दर से मिलाएं। जलनिकास के लिए 20–30 सें.मी. ऊंची (1मी. चौड़ी और 5–7 मी. लम्बी) क्यारियाँ तैयार करें। नवोद्–भिद प्रौधों को प्रो–ट्रे तकनीक द्वारा भी उगाया जा सकता है। बीजों का बैविस्टीन, थिरम 2 ग्रा./कि.ग्रा की दर से उपचार करें। बीजों को 5 सें.मी की दूरी (1–2 सें.मी. गहराई में) पर बोया जाना चाहिए। कतारों को गोबर की खाद डालकर सूखी पत्तियों से क्यारियों को ढक देना चाहिए। नियमित रूप से जल देना, जल की निकासी और रोग–कीट प्रबंधन किया जाना चाहिए। नर्सरी पर शेल्टर लगाकर इसे सुरक्षित करें ताकि भारी बारिश की क्षति बच सके।

रोपण अवधि एवं पद्धति

उष्णकटिबंधीय नमी जलवायु वाले क्षेत्र – जैसे अंडमान द्वीप समूह में टमाटर वर्षभर उगाया जाता है। टमाटर बोवाई की तीन प्रमुख अवधियां हैं, ग्रीष्मकालीन फसल की बोवाई दिसम्बर–जनवरी में, वर्षाकाल (मई–सितम्बर) एवं संरक्षित खेती के लिए मई–जून में बोवाई की जाती हैं। द्वीप में टमाटर की खुले आसमान में खेती के लिए सितम्बर–अक्टूबर में बोवाई उपयुक्त है। टमाटर के नवोद्–भिद पौधों की रोपाई ऊंची क्यारियों पर 60 सें.मी. x 60 सें.मी. दूर कतारों एवं पौधों के बीच 45x45 सें.मी. दूरी रख कर, की जानी चाहिए।

बीज दर

विभिन्न किस्मों के अनुसार टमाटर बीजों की दर अलग–अलग होती है। खुले परागणवाली किस्मों में बीज दर 400–500 ग्रा./है. तथा एफ संकर में 125–175 ग्रा./है. है।

उर्वरक एवं खाद

अंडमान द्वीप समूह में टमाटर के लिए खाद एवं उर्वरक मृदा के प्रकार तथा किस्मों की वृद्धि गुणों पर निर्भर करती हैं। टमाटर के लिए प्रति हैक्टयर 20 से 25 टन गोबर की खाद की आवश्यकता होती है। गोबर की खाद को अंतिम जोताई के दौरान मिट्टी के साथ मिला दिया जाना चाहिए। टमाटर की खेती के लिए, एक हैक्टयर क्षेत्र के लिए 250 से 300

कि.ग्रा. यूरिया, 300 से 350 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 100 कि.ग्रा. पोटाश की सिफारिश की जाती है। यूरिया का एक तिहाई भाग, सिंगल सुपर फास्फेट तथा पोटाश की संपूर्ण मात्रा को प्रतिरोपण के दौरान दिया जाना चाहिए तथा शेष दो तिहाई यूरिया को क्रमशः प्रतिरोपण के 25 और 55 दिनों पर दिया जाना चाहिए। अंडमान द्वीप समूह में टमाटर फलों में फटन को दूर करने तथा उपज एवं गुणवत्ता में वृद्धि के लिए 10 कि.ग्रा. बोरेक्स तथा 5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट के प्रारम्भिक डोज़ की अतिरिक्त सिफारिश की जाती है।

खरपतवार प्रबंधन

खेत को 10 से 15 दिनों के अंतराल पर निराई गुड़ाई द्वारा खरपतवार मुक्त रखना चाहिए, विशेषकर मई से अक्टूबर के दौरान क्योंकि इस अवधि में लगभग प्रत्येक दिन की वर्षा और पर्याप्त सूर्य प्रकाश होता है, जो खरपतवार विकास के लिए अनुकूल स्थितियाँ हैं। खरपतवार नियंत्रण के लिए पुआल या प्लास्टिक से मल्चिंग करना भी प्रभावकारी होता है। टमाटर की खेती में खरपतवार प्रबंधन के लिए बीज जमने से पूर्व उपचार के रूप में पेंडीमेथालिन (1.0 कि.ग्रा. ए.आई./है. की दर से) के छिड़काव के साथ प्रतिरोपण के 45 दिनों के बाद हाथों द्वारा खरपतवारों की निराई करना चाहिए। खरपतवार उग आने के बाद सेनकर (0.5 कि.ग्रा.ए.आई./है. की दर से) का छिड़काव भी खरपतवार कम करने में प्रभावकारी है।

जल प्रबंधन

अंडमान द्वीप समूह में टमाटर की खेती में अधिकांशत: रिज एवं फरो विधि से सिंचाई की जाती है। ग्रीष्मकालीन फसल में दिसंबर से अप्रैल के दौरान प्रारंभिक दिनों में निरंतर सिंचाई की (मेड़ एवं नाली) विधि से आवश्यकता होती है, तत्पश्चात् चार–पांच दिनों के अंतराल पर की जा सकती है। सूखे की लंबी अवधि के बाद अचानक भारी सिंचाई के कारण फलों में फटन (क्रैक) आ जाती है। इसी प्रकार नियमित सिंचाई के पश्चात् सूखा पड़ने पर फूल गिरने लगते हैं। मई से सितम्बर के दौरान निरन्तर वर्षा और सामान्य तापमान के कारण सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। अब दक्षिणी अंडमान में दिसम्बर से अप्रैल के दौरान ड्रिप सिंचाई अपनायी जा रही है।

नाशीजीव/कीट प्रबंधन

कुम्हलाहट/ विल्ट

यह एक कवकीय रोग है, जिसके दो प्रकार हैं त्वरित कुम्हलाहट तथा विलंबित कुम्हलाहट। अंडमान द्वीप में मेघाच्छादित तथा नम जलवायु के कारण यह आम समस्या है। त्वरित मुरझान रोग में पत्तियों पर भूरे–काले परिगलित कोणीय धब्बे, अंडाकार एवं सकेन्द्रित चक्के संगठित हो जाते हैं। विलम्बित मुरझान रोग में पत्तियों पर पानी से लथपथ धब्बे उभरते हैं, जो आकार में बढ़कर बैंगनी भूरे रंग से बदलकर अंतत: काले रंग के हो जाते है। पत्तियों के निचले भाग में सफेद वृद्धि विकसित हो जाती हैं। यह डंठल, मेरूदण्ड और तने पर फैल जाते हैं। संक्रमण की रोकथाम के लिए मैंकोजेब या ज़िनेब 0.2% का रक्षात्मक छिड़काव किया जाना चाहिए।

जीवाणुवीय उकठा रोग (बैक्टीरियल विल्ट)

द्वीपीय जलवायु में टमाटर की खेती में जीवाणुवीय उकठा रोग एक बड़ी समस्या है। इस रोग से पौधे मुरझा जाते हैं तथा पत्तियाँ ऊपर की ओर और नीचे की ओर मुड़ जाती हैं, पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और इनकी मृत्यु हो जाती हैं। बीजों को 0.1% मरक्यूरिक क्लोराइड सॉल्यूशन से उपचार करना प्रभावकारी है। नवोद्–भिद पौधों पर बोर्डो मिश्रण 0.5% या कॉपर आक्सीक्लोराइड 0.25% का छिड़काव किया जा सकता है। स्ट्रेप्टोमाइसिन 0.25% की दर से प्रतिरक्षात्मक छिड़काव प्रतिरोपण के 15 दिनों और 30 दिनों के पश्चात् किया जाना चाहिए।

ब्लासम एंड रॉट

यह अधिक गंभीर समस्या है, फलों के लगने के अंत में विवर्णता प्रारम्भ हो जाती है। काले धब्बे विकसित हो जाते है जो फल के आधे से दो तिहाई भाग तक फैल जाते हैं। तत्पश्चात् ऊतक सिकुड़ने लगते हैं और इसकी त्वचा गहरी भूरी से काली हो जाती है। इसका कारण है, अमोनियम सल्फेट का उपयोग, असंतुलित मैग्नीशियम एवं पोटाशियम, कैल्सियम की कमी। इसके उपचार के लिए 0.5% कैल्सियम क्लोराइड का पर्णीय छिड़काव किया जाता है। यूरिया के रूप में नाइट्रोजन का उपयोग करना चाहिए।

तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन तथा उपज

टमाटर की फसल रोपण के 70–80 दिनों के बाद तुड़ाई के लिए तैयार हो जाती है। सामान्यत: फलों को हाथों से डंठल को हल्के से मरोड़ कर फल तोड़ लिए जाते हैं ताकि डंठल पौधे के साथ ही रह जाए। तुड़ाई के लिए आवश्यक परिपक्वता

इस पर निर्भर करती है कि किस उद्देश्य के लिए तोड़ा जा रहा है जैसे ताजे ताजे बाजारों के लिए, प्रसंस्करण, लम्बी दूरी के परिवहन के लिए आदि। टमाटर में निम्नलिखित परिपक्वता मानकों को अपनाया जाता है:

1. **परिपक्व हरा:** दूर के बाजारों के लिए जैसे दिगलीपुर।
2. **टर्निंग या ब्रेकर स्टेरज :** ठोस फल, फल का एक चौथाई भाग गुलाबी रंग में परिवर्तित हो जाता है परन्तु शोल्डर भाग पीलेपन वाला हरा रहता है, इन्हें लम्बी दूरी के परिवहन के लिए तोड़ लिया जाता हैं।
3. **गुलाबी अवस्था :** सम्पूर्ण फल का तीन चौथाई हिस्सा गुलाबी रंग में परिवर्तित हो जाता है, इन्हें स्थानीय बाजारों के लिए तोड़ा जाता है।
4. **हल्की लाल :** सम्पूर्ण फल लाल या गुलाबी हो जाता है परन्तु गूदा ठोस रहता है, इन्हें भी स्थानीय बाजारों के लिए तोड़ लिया जाता हैं।
5. **लाल पका हुआ या हैंड राइप :** मह फल पूर्णत: पका हुआ और रंग चढ़ा हुआ होता है। गूदा नरम हो जाता है, इन्हें प्रसंस्करण और बीज निस्सारण के लिए तोड़ा जाता है। खुले परागन किस्मों से 200–250 क्वि./है. जब कि एफ–1 संकरों किस्मों से 400–600 क्वि./है. उपज प्राप्त होती है।

27.लोबिया

दिव्या परिसा, सुबेदार यादव एवं आई. जयशंकर

संक्षिप्त परिचय और महत्त्व

लोबिया, वर्षा और ग्रीष्म काल के दौरान पूरे द्वीप में उगाई जाने वाली लोकप्रिय सब्जी है। इस फसल का उपयोग अनेक प्रकार से किया जाता है, नरम फलियों का उपयोग सब्जी के रूप में और सूखे बीन्स का उपयोग दलहन के रूप में किया जाता है। इसके पोषक तत्त्वों और मृदा गुणों के कारण से इसे चारा, हरित खाद और कवर क्रॉप के रूप में भी उपयोग किया जाता है। दलहन प्रजाति की फसल होने के कारण लोबिया अंत:फसलीय प्रणाली के लिए उपयुक्त है। द्वीप में इसे नारियल के बागानों में जमीनी फसल, साबूदाना के खेतों में अंत:फसल के रूप में, धान के खेतों एवं बगीचों में गौण फसल के रूप में उगाया जाता है। यह फसल सतत कृषि का एक अभिन्न अंग है। 100 ग्रा. हरी नरम फलियों में 4.3 ग्रा. प्रोटीन, 2.0 ग्रा. फाइबर, 8.0 ग्रा. कार्बोहाइड्रेट, 74 मि.ग्रा. फोस्फोरस, 2.5 मि.ग्रा. लौह, 13.0 मि.ग्रा. विटामिन–सी, 0.9 मि.ग्रा. खनिज इत्यादि पाये जाते हैं।

भूमि का चयन

अंडमान व निकोबार द्वीप समूहों में अनेक प्रकार की मृदाओं में लोबिया को उगाया जा सकता है। बलुई दोमट मृदा सबसे उपयुक्त होती है। भारी मृदा से भी अच्छी उपज प्राप्त होती है। अन्य मृदाओं की तुलना में लोबिया बलुई दोमट मृदा में शीघ्र परिपक्व हो जाती है। अत्यधिक अम्लीय या क्षारीय मृदा में यह अच्छी तरह नहीं उगती है। उच्च उपज के लिए उपयुक्त पी.एच. रेंज 6.0 से 6.5 है।

खेत की तैयारी

खेत की 2 से 3 बार जोताई करने के पश्चात् पटेला की सहायता से इसे समतल किया जाता है। उच्च उपज और कम परिश्रम के लिए ऊंची क्यारियों और दो कतार वाली प्रणाली अपनाई जानी चाहिए।

प्रजातियाँ:

पूसा फाल्गुनी, पूसा दो–फसली, पूसा कोमल, पूसा सुकोमल, पूसा ऋतुराज, अर्का सुमन, अर्का गरिमा और अर्का समृद्धि।

बुवाई की अवधि एवं पद्धति

इसे द्वीपीय जलवायु में ग्रीष्म कालीन फसल के रूप में दिसंबर–जनवरी में तथा वर्षाकालीन फसल के रूप में मई–जून में बोया जाता है।

बीज दर

अंडमान द्वीप में झाड़ी प्रकार के किस्म की बीज दर 20–25 कि.ग्रा./है. तथा पोल टाइप में 10–12 कि.ग्रा./है. की सिफारिश की जाती है।

उर्वरक और खाद

अंडमान द्वीप की स्थितियों में, खेतों की अंतिम जोताई के समय प्रारंभिक मात्रा के रूप में 10–15 टन/हे. की दर अच्छी तरह अपघटित गोबर की खाद डाली जाती है। प्रति है. 100 कि.ग्रा. यूरिया, 250–300 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट और 80–100 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश की खुराक की सिफारिश की जाती है। प्रारम्भिक डोज़ के रूप में 50 कि.ग्रा. यूरिया, सम्पूर्ण सिंगल सुपर फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश डालें। शेष 50 कि.ग्रा./है. यूरिया बुवाई के 25वें तथा 45वें दिन दो समान किश्तों में डाला जाना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

द्वीपीय जलवायु में लोबिया फसल के शुरूआती 40–45 दिनों के दौरान खरपतवारों का प्रतिकूल प्रभाव का खतरा अधिक होता है, तत्पश्चात् फसल की कैनोपी जमीन को ढक देती है जिससे खरपतवारों का प्रभाव नाममात्र का रह जाता है। बुवाई के 15 से 20 दिनों के बाद पहली बार निराई की जाती है तत्पश्चात् 10–15 दिनों के अंतराल पर की जाती है, कुल मिलाकर 3 से 4 बार निराई की आवश्यकता होती है। हाथों से निराई करने पर खर्च अधिक आता है और इससे फसल को नुकसान भी पहुंच सकता है। अत: रासायनिक शाकनाशियों जैसे उद्भव पूर्व की शाकनाशक, पेंडीमेथालिन 1.5 कि.ग्रा. ए.आई/ हैक्टे. की दर से घास और चौड़ी पत्तियों को नियंत्रित करने के लिए उपयोग किया जा सकता है।

जल प्रबंधन

अन्य सब्जियों की तुलना में लोबिया आमतौर पर जल–भराव के प्रति संवेदनशील है और इसकी खेती के लिए कम नमी की आवश्यकता होती है। द्वीपीय जलवायु में वर्षाकाल के दौरान (मई–अक्टूबर) सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है, जबकि ग्रीष्मकाल के दौरान (फरवरी–अप्रैल) 5–7 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। केवल नालियों (फरो) में ही जल डाला जाना चाहिए। परन्तु अब दक्षिणी अंडमान और दिगलीपुर क्षेत्र के कुछ भागों में ड्रिप सिंचाई का भी उपयोग किया जाता है।

कीट/नाशीजीव प्रबंधन

पाउडरी फफूंद, फाइटोफ्थोरॉट, रस्ट, काऊपी मोज़ेक वायरस, सेप्टोरिया लीफ स्पॉट और एंथ्रेक्नोज़ इत्यादि लोबिया के सामान्य रोग हैं। कवकीय रोगों का नियंत्रण 7 दिनों के अंतराल पर कवकनाशियों जैसे डाइथेन एम–45 (2 ग्रा./ली.), वेटेबल सल्फर (3 ग्रा./ली.) या डाइनाकैब (1 मि.ली./ली.) के छिड़काव से किया जा सकता है। फली बेधक, एफिड, हॉपर और एग्रो माइज़िड मक्खियाँ लोबिया को प्रभावित करते हैं। एफिड्स के नियंत्रण के लिए डाइमेथोएट (0.5 मि.ली./ली.) और फली बेधक के लिए इमिडाक्लरोपिड (2 मि.ली./ली.) का सुझाव दिया जाता है।

तुड़ाई, सस्योत्तर प्रबंधन एवं उपज

लोबिया की फलियाँ बुवाई के 40 से 50 दिनों में तुड़ाई के लिए तैयार हो जाती हैं। जब फलियाँ नरम और आधी पकी होती हैं तब उन्हें तोड़ लिया जाता है। लोबिया की फलियाँ काफी तेजी से बढ़ती हैं और यदि उन्हें सही अवस्था में नहीं तोड़ा जाता है तो उनमें अन्य फसलों के विपरीत फुलाव आने लगता है। लोबिया को बार–बार तोड़ना पड़ता है। अच्छी गुणवत्ता वाली नरम हरी फलियां पाने के लिए 3 से 4 दिनों के अंतराल पर तुड़ाई की जानी चाहिए। झाड़ीदार किस्मों में 4–5 बार जबकि लता वाली किस्मों में 8–9 बार तुड़ाई की जा सकती है। झाड़ीदार किस्मों की उपज 50–60 क्विं/है. और पोल प्रकार के किस्म की उपज 80–100 क्विं/है. होती है।

28. डॉलिकस बीन

दिव्या परिसा, सूबेदार यादव और आई. जयशंकर

संक्षिप्त परिचय और महत्व

डॉलिकास बीन अंडमान निकोबार द्वीपसमूह की एक महत्त्वपूर्ण सब्जी की फसल है। पत्तियों पर तैलीय ग्रंथियों की मौजूदगी डॉलिकास बीन्स की विशेषता है। डॉलिकास बीन प्रोटीन, खनिज और विटामिनों के अच्छे स्रोत हैं। मेथिऑनइन–अमीनोअम्ल डॉलिकास बीन में सीमित मात्रा में होता है। बीजों में ट्रिप्सिन में अवरोध उत्पन्न–करने वाले फाइटिक एसिड और पॉलीफेनॉल होता है और साथ में लेक्टिन भी पाया जाता है। लेक्टिन के प्रभाव को गर्म करके दूर किया जा सकता है। डॉलिकास बीन मुख्य रूप से हरी फलियाँ होती हैं जिन्हें सब्जी के रूप में पकाया जाता है।

भूमि का चयन

डॉलिकास बीन अधिकांशत: दोमट से लेकर बलुई दोमट मिट्टी में उगाई जाती है। इसकी खेती के लिए अच्छी तरह से सूखी हुई तथा जैविक तत्वों से समृद्ध मृदा उपयुक्त है। डॉलिकास बीन उच्च अम्लता के प्रति संवेदनशील होती है। अच्छी उपज के लिए 6.0 से 7.2 के औसत पीएच की आवश्यकता होती है।

खेत तैयारी

मृदा की सर्वप्रथम एक या दो बार गहरी जोताई करने के पश्चात् दो या तीन बार उस पर पाटा चलाने की जरूरत होती है ताकि मिट्टी बारीक बन जाए। मृदा में जैविक तत्वों को बढ़ाने के लिए इसमें प्रति हैक्टेयर 20–25 टन गोबर की खाद डालना चाहिए। तत्पश्चात् गुणवत्ता पूर्ण फसल उत्पादन के लिए उपयुक्त लम्बाई और 75–100 सें.मी. चौड़ी रिज तथा फरो या अंडमान द्वीप में वर्षाकाल (मई–अक्टूबर) में पोल प्लांटिंग के लिए 30–40 से.मी. व्यास का गड्ढा बनाएं।

किस्में : अर्का जय, अर्का विजय, पूसा अर्ली प्रोलिफिक

बोवाई की अवधि और विधि

अंडमान द्वीप की जलवायु में डॉलिकॉस बीन की बुवाई ग्रीष्म कालीन फसल के रूप में दिसंबर–जनवरी के दौरान और वर्षाकालीन फसल के रूप में मई–जून के दौरान की जानी चाहिए।

बीज दर

अंडमान द्वीप में झाड़ीदार प्रकार के लिए बीज दर 50–60 कि.ग्रा./है., पोल टाइप के लिए 20–25 कि.ग्रा./है. की सिफारिश की जाती है।

उर्वरक और खाद

खेतों की अंतिम जोताई के समय प्रारम्भिक खुराक के रूप में 10–15 टन/है. की दर से भली–भांति अपघटित गोबर की खाद डाली जाती है। 100 कि.ग्रा. यूरिया, 200–300 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट और 60–80 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश की सलाह दी जाती है। प्रारंभिक खुराक के रूप में 50 कि.ग्रा. यूरिया, सिंगल सुपर फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश का पूरा परिमाण डालें। बोवाई के बाद 30वें तथा 60वें दिन शेष 50 कि.ग्रा. प्रति है. यूरिया को दो समान किस्तों में डाला जाना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

डॉलिकास बीन की खेती में शुरूआती 40–45 दिनों में खरपतवारों से अधिक नुकसान पहुंचता है, उसके बाद जब फसल का फैलाव (कैनोपी) जमीन को ढक लेता है तब इसका प्रभाव नाममात्र का रह जाता है। पहली निराई, बुवाई के 15 से 20 दिनों के बाद, उसके बाद 10–15 दिनों के अंतराल पर की जाती है। कुल मिलाकर 4 से 5 बार निराई की आवश्यकता होती है। पौधरोपण के बाद 30वें और 60वें दिन पर दो बार हाथों से निराई के साथ–साथ प्रति हेक्टेयर 1.5 कि.ग्रा ए.आई. प्रति है. की दर से उदभव पूर्व की खरपतवारनाशक पेंडीमेथालिन का प्रयोग खरपतवार नियंत्रण के लिए सर्वाधिक प्रभावकारी है।

कीट/नाशीजीव प्रबंधन

पाउडरी मिल्डयु, फाइटोफथोरा और रस्ट डॉलिकास बीन के सामान्य रोग हैं। 7 दिनों के अंतराल पर डाइथेन एम–45 (2 ग्रा./ली.), वेटेबल सल्फर (3 ग्रा./ली.) कवकनाशकों के छिड़काव से कवकीय रोगों पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

फलीबेधक और एफिड डॉलिकास बीन को संक्रमित करते हैं। उनके प्रबंधन के लिए 0.02 प्रतिशत की दर से इमिडाक्लोरोपिड तथा 0.03 प्रतिशत की दर से डाइमिथोएट का प्रयोग करने की सलाह दी जाती है।

तुड़ाई, सस्योत्तर प्रंबधन और उपज

झाड़ीदार प्रकार में बोवाई के 75 दिनों के बाद तथा पोल टाइप में बुवाई के 3 महीने बाद फसल तैयार हो जाती है। अच्छी गुणवत्ता वाली नरम एवं पूर्णत: विकसित हरी फलियाँ प्राप्त करने के लिए 3–4 दिनों के अंतराल पर तुड़ाई की जानी चाहिए। झाड़ीदार किस्म में 4–5 बार जबकि पोल किस्म में 8–10 बार बिनाई की जाती है। उपज–झाड़ीदार किस्म में 50–60 क्विं/है., जबकि पोल टाइप में 70–90 क्विं/हैक्टेयर।

29.चौलाई/ अमरेन्थस

दिव्या परीसा, सूबेदार यादव और आई. जयशंकर

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

अंडमान द्वीप में, चौलाई पूरे वर्ष पैदा होने वाली सबसे खास पत्तेदार सब्जी है। इसकी पत्तियाँ एवं रसीले तने लौह (38.5 मि. ग्रा./100 ग्रा.), कैल्शियम (350–400 मि.ग्रा./100 ग्रा.), विटामिन ए और विटामिन सी के अच्छे स्रोत होते हैं। इसकी छोटी अवधि, खाद और उर्वरकों के प्रति अति क्रियाशीलता, अधिक उपज, खेती में सुगमता और द्वीपों में उपलब्ध विशिष्ट कृषि–जलवायु परिस्थितियों में अनुकूलता, विभिन्न प्रकार की किस्मों की उपलब्धता और किसी भी फसल प्रणालियों में सम्मिलित होने में अनुकूलता के कारण यह किसानों की पसंदीदा फसल बन गई है।

भूमि का चयन

चौलाई अच्छी जल निकास वाली एवं जैविक पदार्थों से समृद्ध दोमट मृदा में अच्छी तरह से उगती है। इसकी खेती के लिए पीएच स्तर 5.5–7 उपयुक्त होता है।

खेत की तैयारी

खेत को 2–3 बार जोतकर समतल किया जाता है। अंडमान द्वीपीय जलवायु के अंतर्गत वर्षाकाल की खेती के लिए (मई–अक्टूबर) ऊंची क्यारियाँ बनाने का सुझाव दिया जाता है।

किस्में

सी.ए.आर.आई.ए.एम.ए.–ग्रीन, सी.ए.आर.आई.ए.एम.ए.–रेड, अर्का सुगुना, पूसा किरण, पूसा कीर्ति, पूसा लाल चौलाई, सीओ 1, सीओ 2, सीओ 3, पूसा बडी चौलाई और अर्का अरुणिमा।

अवधि एवं बोवाई की विधि

विभिन्न समयान्तराल (स्टैगरिंग) बोवाई के रूप में वर्षभर, दिसम्बर–जनवरी (सूखे की अवधि) में सिंचाई की सुविधाओं के साथ, मई–जून में वर्षाकाल की फसल के रूप में उगायी जा सकती है। बहु–कटाई फसल के लिए खरपतवार निकालने और निराई–गुड़ाई करने के लिए पंक्तियों में बोवाई सुविधाजनक मानी जाती है। जबकि एकल कटाई के लिए सामान्य छिड़काव पद्धति से बोवाई की जाती है।

बीज की दर

फसल के मौसम के अनुसार बीज दर में भी भिन्नता होती है। अंडमान मौसम में शुष्क मौसम (जनवरी–अप्रैल) के दौरान फसल के लिए 30–40 कि.ग्रा./है. तथा वर्षाकाल के लिए 20–25 कि.ग्रा./है. बीज की आवश्यकता होती है।

उर्वरक और खाद प्रबंधन

चौलाई के लिए 200–250 कि.ग्रा.यूरिया, 300–300 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट और पोटाश 80–100 कि.ग्रा./है. के साथ साथ 20–25 टन/है. की दर से गोबर की खाद की सिफारिश की जाती है। खेत की अंतिम तैयारी के समय गोबर की खाद की पूरी मात्रा दी जाती है। यूरिया की आधी मात्रा, सिंगल सुपर फॉस्फेट और पोटाश की पूरी मात्रा प्रारम्भिक डोज़ के रूप में दी जाती है तथा यूरिया की आधी मात्रा प्रत्येक कटाई के बाद 2–5 भागों में विभाजित कर एक हल्की सिंचाई के बाद दी जाती है।

खरपतवार प्रबंधन

चौलाई एक छोटी अवधि की उथली जड़ों वाली फसल है। खरपतवारों को अंकुरित होने से रोकने, मिट्टी की सतह पर पपड़ी बनने से रोकने और मिट्टी को भुरभुरा रखने के लिए एक हल्की सिंचाई की जाती है। प्रारंभिक अवस्था में खेत को विशेष रूप से खरपतवार मुक्त रखना चाहिए। हाथों से खरपतवारों को निकालना खरपतवार नियंत्रित करने की अभी भी एक आम परम्परा है। द्वीपीय जलवायु के अंतर्गत खरपतवार नियंत्रण के लिए बहु–कटाई फसलों के लिए 4–5 बार तथा एकल कटाई की फसलों के लिए 1–2 बार 'हो' से गुड़ाई के साथ–साथ एक बार हाथ से खरपतवार निकालना एक सामान्य प्रक्रिया है।

जल प्रबंधन

अंडमान द्वीपीय जलवायु में वर्षाकाल (मई से अक्टूबर) में सामान्य बारिश के कारण सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। जनवरी से अप्रैल महीने के दौरान 4 से 6 दिनों के अंतर पर सिंचाई करते रहना चाहिए।

नाशीजीव और रोग

वर्षाकाल में गर्म और आर्द्र परिस्थितियों में पत्तियों के मुरझाने की बीमारी सबसे गंभीर होती है। इस बीमारी में पत्तियों के फलकों पर सफेद और अनियमित धब्बों के कारण उपज बिक्री के योग्य नहीं रह जाती है। पत्ती की इस बीमारी को नियंत्रित करने के लिए प्रतिरोधी किस्में जैसे ग्रीन चौलाई किस्म, सीओ–1 की बोवाई, छिड़काव, सिंचाई न करना तथा मैंकोजेब 4 ग्रा./ली. गोबर को तरल रूप में घोल कर छिड़काव करना चाहिए। इसी प्रकार, पत्ती पर फुदकने वाले और पत्तियों के छोटे कीट (लीफ माइनर) भी पुराने पौधे और एकल फसल पर दिखाई देते हैं। लेकिन चौलाई की फसल का अच्छी तरह से प्रबंध करके इनके संक्रमण को कम किया जा सकता है। इमिडाक्लोरोपिड 0.02% या डाइमिथोएट 0.03% का 15 दिनों के अंतराल पर छिडकाव करने से इन्हें नियंत्रित किया जा सकता है।

कटाई, सस्योत्तर प्रबंधन और उपज

सुबह के समय पौधों को उखाड़कर या काटकर चौलाई की कटाई करते हैं। पहली विधि में, बड़े पौधे बोवाई के 30, 45 व 55 दिनों बाद जड़ों सहित उखाड़े जाते हैं। बहु–कटाई वाली फसलों में पहली कटाई बोवाई के 25–35 दिनों के बाद की जाती है और बाद की कटाईयाँ एक सप्ताह के अंतराल पर की जाती है। एकल कटाई वाली फसल की उपज 75–100 क्वि./है. तथा 3–4 कटाई वाली फसलों की उपज 200–250 क्वि./है. तक होती है।

30.बर्मा धनिया

दिव्या परिसा, सूबेदार यादव और आई. जयशंकर

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

बर्मा धनिया अंडमान द्वीप में आमतौर पर उगाई जाने वाली एक उष्णकटिबंधीय बारहमासी शाक/भाजी है। इसकी महक और स्वाद साधारण धनिया के समान है किंतु पौधे की आकृति अलग होती है। इसकी पत्तियाँ चौड़ी होती हैं जबकि साधारण धनिए की पत्तियाँ दांतेदार हृदय आकार की होती हैं। इसे द्वीपीय जलवायु में वर्षभर उगाया जाता है परन्तु मई से दिसंबर में इसकी खेती अधिक होती है।

भूमि का चयन

बर्मा धनिया सभी प्रकार की मृदाओं में उगाई जा सकती है। बलुई से लेकर बलुई दोमट मिट्टी, जिसमें जैविक तत्वों की समृद्धि हो और जलनिकासी की सुविधा अच्छी हो, अनुकूलतम मानी जाती है। मृदा का अधिकतम पी.एच. 6.0 से 6.7 हो। यह अम्लीय मृदा के प्रति संवेदनशील है।

खेत की तैयारी

खेत में 2–3 बार हल चलाकर इसकी अच्छी तरह जोताई की जाती है। अंतिम बार जोताई करने से पूर्व प्रति हैक्टेयर 20–25 टन गोबर की खाद डाली जाती है और सतह से ऊंची क्यारियाँ (ऊंचाई 10–15 सें.मी. और चौड़ाई 45–60 सें.मी.) और नालियाँ (30 सें.मी.चौड़ी) बनाई जाती हैं।

प्रजातियाँ : सी.ए.आर.आई. ब्रॉड धनिया, स्थानीय प्रजातियाँ

बुवाई का समय और विधि :

द्वीपीय जलवायु में बर्मा धनिये की बुवाई जून से लेकर नवम्बर तक की जानी चाहिए। 30 सें.मी. x 10 सें.मी. चौड़ी एवं ऊंची प्रत्येक क्यारी में दो कतारों में बीज बोए जाते हैं।

बीज दर : प्रति हैक्टेयर 4–5 कि.ग्रा.।

उर्वरक तथा खाद :

प्रति हैक्टेयर 20–25 टन गोबर की खाद का प्रयोग करें। यह बार–बार कटाई की जाने वाली फसल है और वर्षभर इसकी कटाई की जा सकती है। इसलिए प्रति हैक्टेयर सालाना 300–350 कि.ग्रा. यूरिया, 400 कि.ग्रा.सिंगल सुपर फॉस्फेट और 100 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश डालने की सलाह दी जाती है। प्रारंभिक खुराक के रूप में 100 कि.ग्रा. यूरिया, सिंगल सुपर फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा डाली जानी चाहिए। कटाई के बाद 30वें, 60वें और 90वें दिन तीन बार समान मात्रा में शेष बची यूरिया का प्रयोग किया जाना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

फसल की शुरूआती अवस्थाओं में खरपतवार निकालते समय सावधानी बरतनी चाहिए। हाथों से निराई एक सामान्य प्रक्रिया है। बुवाई के पश्चात् 10–15वें दिन निराई की जानी चाहिए और खरपतवारों को हटा दिया जाना चाहिए। बुवाई के पश्चात् 25वें और 45वें दिन दो बार हाथ से निराई के साथ–साथ उदभव पूर्व छिड़काव के रूप में प्रति हैक्टेयर पेंडीमेथालिन 0.5 कि.ग्रा. ए.आई खरपतवार नियंत्रण के लिए अत्यंत प्रभावी है।

जल प्रबंधन

अंडमान द्वीप की जलवायु में प्रतिरोपण के तुरंत बाद पहली सिंचाई की जानी चाहिए और उसके बाद एक महीने तक हर तीसरे दिन हल्की सिंचाई की जानी चाहिए। वर्षा ऋतु (मई से अक्टूबर) में बार–बार बारिश होने के कारण सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। तथापि, जनवरी से अप्रैल माह के दौरान 4 से 6 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की जानी चाहिए।

कीट, नाशीजीव और रोग प्रबंधन

टिप बर्न, क्राउन रॉट और 'सफेद पत्तियाँ' बर्मा धनिये में पाए जाने वाले प्रमुख रोग हैं। घने रूप से लगाई गई फसलों में वर्षा के मौसम में क्राउन रॉट देखे जाते हैं जबकि 'सफेद पत्तियाँ' सूखे महिनों में नजर आती हैं। उचित दूरी पर

पौधे लगाकर और प्रति लीटर 2 ग्रा. की दर से कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का प्रयोग करके क्राउन रॉट को रोका जा सकता है। 'सफेद पत्तियां' शुष्क महिनों में पत्तियों पर पाउडरी परत होती है। पत्तियों पर नियमित रूप से जल का छिड़काव करके इसे रोका जा सकता है। जड़ गांठ सूत्रकृमि बर्मा धनिये में देखी जाती हैं। प्रति हैक्टेयर 200–250 कि.ग्रा. की दर से नीम या करंज की खली का उपयोग करके या एकल फसल पद्धति अपनाकर इस पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

कटाई, सस्योत्तर प्रबंधन और उपज

पहली कटाई प्रतिरोपण के बाद 80–90 दिनों पर की जानी चाहिए और बाद में प्रत्येक 30–40 दिनों के अंतराल पर कटाई की जाती है। उपज – प्रति हैक्टेयर 60–80 क्विंटल।

31.कद्दू वर्गीय सब्जियाँ

दिव्या परिसा, सूबेदार यादव और आई. जयशंकर

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

कद्दू कुकुरविटेसी परिवार से संबंधित है। इन्हें अंडमान और निकोबार द्वीपों में प्रचुर मात्रा में उगाया जाता है। यह सब्जियों का व्यापक समूह है जिसका उपयोग सलाद के लिए (खीरा) या पकाने के लिए (लौकी, करेला), अचार के लिए (सफेद भारतीय खीरा) या मीठे फल के रूप में (तरबूज और खरबूज) किया जाता है या इसे मुरब्बे के रूप में (पेठा) परिरक्षित किया जाता है। यह कैलोरी, खनिज या विटामिन का काफी अच्छा स्रोत है जैसे कि करेला (विटामिन सी 96 मि.ग्रा./100ग्रा.), कुम्हड़ा (विटामिन ए 1600 आईयू/100 ग्रा.), कक्रोल (प्रोटीन 3.1 ग्रा./100 ग्रा.), परवल (531 मि.ग्रा./100 ग्रा.)। पोषक तत्वों की दृष्टि से कद्दू के बीजों में काफी अधिक प्रोटीन और तेल पाया जाता है। कद्दू की सब्जी अत्यंत सुपाच्या होती है, यह शरीर को ठंडक प्रदान करती है और इसमें मूत्रवर्धक और हृदय के लिए पुष्टिकारक गुण होते हैं।

भूमि का चयन

कद्दू को सभी प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है। जैविक तत्वों से समृद्ध और बेहतर जल निकासी की सुविधा वाली बलुई से लेकर बलुई दोमट मृदा इसके लिए सर्वोत्तम मानी जाती है। इसे बलुई तटों पर सतह से ऊंची क्यारियों में उगाया जा सकता है। मृदा का अधिकतम पीएच 6.0 से 6.7 है। अम्लीय मृदा इसके लिए नुकसानदायक है, अत: 5.5 से कम पीएच वाली मृदा में कद्दू को नहीं उगाया जा सकता है।

खेत की तैयारी

भूमि की 2 से 3 बार गहरी जोताई की जाती है और 3–4 बार पाटा लगाया जाता है। अंतिम बार जोताई के दौरान मृदा में अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद 20–25 टन/है. की दर से मिलायी जाती है। विभिन्न फसलों के आधार पर विभिन्न दूरियों को अपनाते हुए 60 से.मी. व्यास वाले और 30–40 से.मी. गहरे गड्ढे बनाएं।

प्रजातियाँ:

फसल	प्रजातियाँ
खीरा	पोइनसेटी, पूना खीरा और पूसा संयोग
लौकी	अर्का बहार, पूसा नवीन, पूसा समर प्रोलिफिक लौंग, पूसा समर प्रोलिफिक राउंड, पूसा मेघदूत
करेला	अर्का हरित, पूसा दो मौसमी, पूसा विशेष
चिचिण्डा	कोंकण स्वेता, सीओ–1, सीओ–2, और पीकेएम–1
तुरई	अर्का स्वाति, अर्का सुमित और पूसा नसदार
कद्दू	अर्का चंदन, पूसा विश्वास और पूसा विकास
तरबूज	अर्का मानिक, अर्का ज्योति और सुगर बेबी
खरबूजा	अर्का जीत, अर्का राजहंस, हरा मधु, पूसा रसराज और पूसा सरबती
पेठा	सीओ1, सीओ2और इंदु

बुवाई की अवधि एवं विधि

कद्दू को अंडमान द्वीप समूह में वर्षभर उगाया जाता है। किंतु इसे अधिकांशत: जनवरी से फरवरी तथा मई से जून में बोया जाता है। खीरे को सितंबर–अक्टूबर माह में भी बोया जाता है।

बीज दर

फसल	प्रति हेक्टेयर बीज दर
खीरा	3–5 कि.ग्रा.
लौकी	5–6 कि.ग्रा.
करेला	4–6 कि.ग्रा.
चिचिण्डा	3–6 कि.ग्रा.
तुरई	5–7 कि.ग्रा.
कद्दू	3–5 कि.ग्रा.
तरबूज	3–5 कि.ग्रा.
खरबूजा	4–6 कि.ग्रा.
पेठा	3–5 कि.ग्रा.

उर्वरक और खाद

खादों और उर्वरकों का प्रयोग स्थान और मृदा के प्रकार पर निर्भर करता है। अंडमान द्वीप समूह में खेत को तैयार करने की अंतिम अवस्था में या कद्दू वर्ग की फसल की बुवाई के लिए गड्ढों को भरते समय 20–25 टन/है. गोबर की खाद का प्रयोग करें। आमतौर पर कद्दू के लिए उर्वरक की आवश्यकता कम होती है। कद्दू वर्ग की अधिकांश फसलों के लिए 200–250 कि.ग्रा./है. यूरिया, 300–350 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट और 100 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश की जरूरत होती है। बुवाई/प्रतिरोपण के समय सिंगल सुपर फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा तथा यूरिया की आधी मात्रा का प्रयोग किया जाना चाहिए। शेष बचे नाइट्रोजन को दो किस्तों में टॉप ड्रेसिंग के रूप में पहली बार वाइनिंग के समय और दूसरी बार फल तैयार होते समय डाला जाता है।

खरपतवार नियंत्रण

अप्रैल से दिसंबर के दौरान प्रतिदिन बारंबार वर्षा और अधिक धूप पड़ने के कारण अंडमान द्वीप समूह में खरपतवार नियंत्रण एक प्रमुख समस्या है। विकास की शुरूआती अवस्थाओं में एक या दो बार हाथों से निराई करनी होती है। खरपतवार को बढ़ने से रोकने के लिए मल्चिंग (प्लास्टिक और आर्गेनिक) का भी प्रयोग किया जाता है। जब लता पूरी तरह विकसित हो जाती है तब निराई और गुड़ाई की आवश्यकता नहीं होती है।

जल प्रबंधन

अंडमान द्वीप समूह में, दिसंबर–फरवरी माह में बोयी गई फसल को तीसरे या चौथे दिन के अंतराल पर सिंचाई की आवश्यकता होती है तथा मई–जून में बोयी गई फसल को किसी प्रकार की सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि इसे बार–बार बारिश का पानी मिलता रहता है। फल के बढ़ने के दौरान नमी अधिक होने से फल का आकार और पैदावार दोनों घट जाती हैं। अधिक सिंचाई से बचना चाहिए क्योंकि इससे फल गिर जाते हैं। उत्तरी अंडमान खासकर दिगलीपुर के मैदानी क्षेत्रों में कद्दू उगाने के लिए आमतौर पर बेसिन और फरो सिंचाई का उपयोग किया जाता है। फरवरी से अप्रैल माह के दौरान दक्षिणी और मध्य अंडमान की उबड़–खाबड़ खेतों में अब ड्रिप सिंचाई भी की जाती है।

कीट, नाशीजीव और रोग प्रबंधन

थ्रिप्स

छोटे कीट, पत्तियों और कच्ची डंठलों पर हमला करते हैं जिससे चांदी की तरह चमकीले रंग नज़र आने लगते हैं। थ्रिप्स की समष्टि पौधों के विकास को अवरूद्ध कर देती हैं। वे पौधों में विषाणु रोगों के अंतरण से पौधों को अप्रत्यक्ष रूप से भी नुकसान पहुंचाती हैं। इस कीट को नियंत्रित करने के लिए संक्रमित फसल पर 1 ग्रा./ली. की दर से एसीफेट या 0.2 ग्रा./ली. की दर से एसिटामिप्रिड का छिड़काव करना अत्यंत कारगर है।

फ्रूट फ्लाई

वृहत परपोषी श्रृंखला वाले इस पॉलीफैगस कीट की वयस्क मक्खी 4–5 मि.मी. लंबी होती है, जो कि पारदर्शी पंखों के साथ फेरूगिनस–ब्राउन रंग की होती है। हैचिंग के बाद, मैग्गट फलों के भीतर अपना आहार प्राप्त करते हैं और संक्रमित फलों को चिपचिपे द्रव की मौजूदगी से पहचाना जा सकता है जो कि अंडनिक्षेपण के लिए मक्खियों द्वारा बनाए गए छिद्रों से बाहर निकलता रहता है। विभिन्न सूक्ष्म जीवों के गौण संक्रमण की वजह से संक्रमित फल सड़ने लगते हैं। कीट को फैलने से रोकने के लिए मैग्गट सहित संक्रमित फलों को इकट्ठा करके कर देने से फ्रूट फ्लाईज़ पर नियंत्रण पाया जा सकता है। प्यूपा को मारने के उद्देश्य से फसल की कटाई के पश्चात लताओं के नीचे की मृदा को अच्छी तरह मिलाएँ और संक्रमित खेत की जुताई करें। विषाक्त चारे का प्रयोग करें। 500 ग्रा. गुड़, 20 ग्रा. यीस्ट हाइड्रोलाइसेट के साथ 20 ग्रा. मेलाथिऑन 50 प्रतिशत डब्ल्यू. पी. या 50 मि.ली. डाइजिनोन 20 प्रतिशत ई.सी. मिलाकर चारा तैयार किया जाता है। विषाक्त चारे के लिए 2 लीटर पानी में और चारे के छिड़काव के लिए 20 लीटर पानी में इस मिश्रण को घोला जाता है। फल लगने के दौरान चारे के ट्रैप में 0.1 प्रतिशत मिथाइल यूजिनॉल, 0.025 प्रतिशत मेलाथिऑन का उपयोग करते हुए नर मक्खियों को नाश करने वाली तकनीक अपनाएं। फ्रूट फलाई के लिए मिथाइल यूजिनॉल सेक्स एट्रैक्टेंट होता है और नर मक्खियां इसकी महक से इस चारे की ओर खींचे चले आते हैं तथा मेलाथिऑन से मर जाते हैं। 7–10 दिनों के अंतराल पर इस ट्रैप सॉल्यूशन का प्रयोग करें।

रेड पम्पकिन बीटल

चमकदार पीले लाल रंग के इस पोलीफैगस कीट के वयस्क पौधे के चारों ओर की नम मृदा में अंडे देते हैं। हैचिंग के बाद कोआ जड़ों और पौधे के भूमिगत हिस्से को अपना भोजन बना लेते हैं और साथ ही जमीन से सटे फलों से भी अपना

भोजन प्राप्त करते हैं। व्यस्क कीट पत्ती की सतह पर भोजन के लिए टूट पड़ते है जिससे पत्तियों पर अनियमिताकार छेद बन जाते हैं। वयस्क कीट कच्चे पौधों और नरम पत्तियों को पसंद करते हैं और इस अवस्था् में क्षति पौधे को मार डालती है। प्रात:काल जब वातावरण में ठंडक होती है और वे निश्चल पड़े रहते हैं, तब इन्हें इकट्ठा करके नष्ट कर देने से रेड पम्पकिन बीटल पर नियंत्रण पाया जा सकता है। कटाई के तुरंत पश्चात संक्रमित खेतों की गहरी जोताई मृदा में मौजूद कोआ को मार डालती है। किरोसिन तेल के साथ राख को मिलाकर इसकी रिपेलेन्ट डस्टिंग की जानी चाहिए। भारी डस्टिंग नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे पौधे का विकास अवरूद्ध हो जाता है।

जड़ गांठ सूत्रकृमि

इन पौधों के परजीवी ईलवर्म रूट गॉल्स को उत्तेजित करते हैं जिससे संक्रमित पौधों का विकास घटकर अवरूद्ध हो जाता है। अनाजों, गेंदा इत्यादि जैसी गैर–मेजबानी फसलों के साथ लम्बी अवधि के फसलों के साथ रोटेशन से इस पर नियंत्रण पाया जाता है। गर्मी के महिनों में खेतों की जोताई करें। नीम की खमी 12–15 टन/है. की दर से का उपयोग करें।

इपीलैक्ना बीटल

यह करेले का अत्यंत विनाशकारी कीट है जो खेत की पूरी फसल का निष्पत्रण (डिफोलिएट) करके इसे नष्ट कर देता है। वयस्क और निम्फ दोनों ही हानिकारक होते हैं, जो पत्ती के ऊतकों को खाकर अपना पोषण करते हैं और पत्तियों का केवल ढ़ांचा बचा रह जाता है। बाद के मौसम में उगने वाली फसल बुरी तरह प्रभावित होती है। पीले अंडों के ढेर, निम्फ और धावा करने वाले व्यस्कों को एकत्र करके नष्ट कर देने से इपीलैक्ना बीटल पर नियंत्रण पाया जा सकता है। इस कीट के लिए 2 ग्रा./ली. की दर से इमिडाक्लोरोप्रिड का प्रयोग अत्यंत कारगर है।

एफिड

शिशु कीट और वयस्क दोनों कोमल टहनियों और पत्तियों की अधर सतह से रस चूस लेते हैं, प्रभावित हिस्सा पीला होकर घुमावदार हो जाता है, इन पर सिकुड़न आ जाती है और अंत में पौधे मर जाते हैं। ये एफिड अनेक विषाणुवीय रोगों का भी प्रसार करते हैं। संक्रमण की शुरूआती अवस्था में ही एफिड समूह के साथ–साथ प्रभावित हिस्सों को नष्ट कर देने से इस पर नियंत्रण पाया जा सकता है। फसल पर 1.0 प्रतिशत की दर से एज़ाडिरेक्टिन (नीमाजॉल 1 मि.ली./1) या 0.03 प्रतिशत फॉस्फॉमिडॉन या 0.03 प्रतिशत मिथाइल डेमीटॉन का छिड़काव किया जाना चाहिए।

सफेद मक्खी (व्हाइट फ्लाई)

यह एक खतरनाक नाशीजीव है जो स्वस्थ फसलों में विषाणुवीय रोगों का प्रसार करके इन्हें भारी नुकसान पहुंचाता है। सफेद मक्खी के निम्फ पत्तियों की अधर सतह से रस चूस लेते हैं और प्रभावित हिस्सा पीला पड़ जाता है, पत्तियां सिकुड़कर नीचे की ओर मुड़ जाती है। गंभीर संक्रमण की अवस्था में पौधे का विकास अवरूद्ध हो जाता है। फसल पर 1.0 प्रतिशत की दर से एजेडिरेक्टिन (नीमाजॉल 1 मि.ली./1) का छिड़काव करके व्हाइट फ्लाई पर नियंत्रण रखा जा सकता है।

सर्पेंटांइन लीफ माइनर

लार्वा पत्तियों में सुरंग जैसा बना देते हैं जिससे पत्ती की मेसोफिल नष्ट हो जाती है और पत्ती की सतह पर चमकदार सफेद दरारें उभर आती हैं। इसका प्रबंधन संक्रमित पत्तियों को एकत्रित करने के पश्चात् जलाकर किया जा सकता है।

फ्यूज़ेरियम विल्ट

यह तरूण पौधों में पाया जाने वाला सामान्य कवकीय रोग है। इससे बीजपत्र मुरझा जाते हैं और पुराने पौधों में पत्तियाँ अचानक सूख जाती हैं और कौलर क्षेत्र में वैस्कूलर बंडल पीले या भूरे हो जाते हैं। प्रति कि.ग्रा. बीज में 2.5 ग्रा. की दर से थिरैम या कार्बेंडाज़िम या ट्राइकोडर्मा विरिडे के प्रयोग से फ्यूज़ैरियम विल्ट को नियंत्रित रखा जा सकता है। एक सप्ताह के अंतराल पर प्रति लीटर जल में कार्बेंडाज़िम (1ग्रा.), मैंकोज़ेब (2 ग्रा.) के मिश्रण का फसलों पर छिड़काव बहुत कारगर है।

एंथ्रेक्नोज़

एंथ्रेक्नोज़ एक विनाशकारी कवकीय रोग है जो गरमी और नमी के मौसम में पनपता है। जब तक रोग प्रतिरोधी प्रजातियाँ नहीं उगाई जाती, तब तक खीरा, तरबूज और खरबूजे में भारी नुकसान हो सकता है। जमीन के ऊपर का पूरा हिस्सा प्रभावित हो सकता है। पत्ती के लेजिऑन्स जल से भींगे हुए दिखने लगते है और फिर इन पर पीले रंग के गोल धब्बे बन जाते हैं। पर्णसमूह पर ये धब्बे अनियमित आकार के होते हैं और फिर भूरे या काले हो जाते हैं। एंथ्रेक्नोज़ से बचने के लिए रोगमुक्त बीजों का प्रयोग करें। तीन वर्ष के रोटेशन अवधि में असंबद्ध फसलों के साथ कद्दू की फसलों को रोटेट करें। इस

रोग के नियंत्रण के लिए 2 से 3 बार 10 दिनों के अंतराल पर कार्बेंडाजिम (0.15 प्रतिशत) या क्लोरथैलोनिल (0.2 प्रतिशत), मैंकोजेब (0.25 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

पाउडरी मिल्ड्यू

पत्ती की सतहों, वृंतों और तनाओं पर पाउडरी कवक विकसित होने लगते हैं। यह पहले प्राय: पत्तियों के क्राउन पर और पत्ती की भीतरी सतह पर विकसित होता है। पाउडरी मिल्ड्यू समूह की विपरीत दिशा में पत्ती् की उपरी सतहों पर पीले धब्बे बन सकते हैं। पुराने पौधे पहले प्रभावित होते हैं। संक्रमित पत्तियाँ प्राय: मुरझाकर मर जाती हैं। पौधे समय से पहले ही जीर्ण हो जाते हैं। 0.1 प्रतिशत बेविस्टिन का दो बार छिड़काव और उसके बाद 0.1 प्रतिशत कैराथेन या ट्राइडिमॉर्फ का दो बार छिड़काव इस रोग को प्रभावी रूप से नियंत्रित कर सकता है।

डाउनी मिल्ड्यू

उच्ची आर्द्रता, खासकर जब गर्मी के मौसम में लगातार वर्षा हो रही हो, में यह कवकीय रोग पनपता है। पत्तियों की ऊपरी सतह पर अधिक या कम भद्दे पीले दाग, इस रोग के लक्षण हैं। पत्तियों की ऊपरी सतह पर सफेद–बैंगनी रंग के रंद्र भी नजर आते हैं। यह रोग तेजी से फैलता है और पत्तियाँ तेजी से झड़ने लगती है और पौधे शीघ्र ही मर जाते हैं। संक्रमित पत्तियों को हटाकर तथा फसल पर 10 दिनों के अंतराल पर 3 से 4 बार 0.25 प्रतिशत मैंकोज़ेब का छिड़काव करके इस पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

मोज़ेक

नई पत्तियों में छोटा–सा हरा–पीला धब्बा बनने लगता है जो पत्ती के शेष भाग से अधिक पारभासी होता है। पत्तियों में हरी–पीली चित्तियां और फफोले बनने लगते हैं तथा गंभीर संक्रमण की स्थिति में पौधे का विकास रूक जाता है। रस, बीज और एफिड की अनेक प्रजातियों के जरिए विषाणु का प्रसार होता है। नॉन–कुकुरविटेसियस फसलों के साथ फसल चक्र करके और खेत से संक्रमित पौधों को हटाकर इस पर नियंत्रण पाया जा सकता है। खरपतवार मेजबानों को उखाड़ दें और खेत के चारों ओर मकई जैसी अवरोध फसलों को लगाएँ। एफिड रोग वाहकों को नियंत्रित करने के लिए फसल पर प्रत्येक सप्ताह के अंतराल पर 0.05 प्रतिशत डाइमिथोएट या इमिडाक्लोप्रिड (3.5 मि.ली/10 ली.) या 0.05 प्रतिशत फोस्फोमिडॉन का छिड़काव करें।

गम्मी स्टेम ब्लाइट

इस कवकीय संक्रमण की वजह से पत्ती के सीमान्त स्थान पर गहरे भूरे से लेकर काले रंग के अनियमित धब्बे नजर आते हैं। जल से लथपथ तना सड़ने लगता है, बाद में इससे लिसलिसा स्राव होने लगता है तथा गंभीर स्थिति में पौधे मर जाते हैं। कार्बेंडाज़िम (2 ग्रा./कि.ग्रा.) या थिराम (3 ग्रा./कि.ग्रा) बीज के साथ बीज का उपचार या 10 दिनों के अंतराल पर कार्बेंडाज़िम 1 ग्रा./क्लोरोथैलोनिल 2 ग्रा./ ली का छिड़काव से इसका नियंत्रण किया जा सकता है।

डैम्पिंग ऑफ और फ्रूट रॉट

कवक नवोद्–भिद पौधों, तरूण पौधों तथा कच्चे, फलों को भी संक्रमित कर सकते हैं। प्रारम्भ में पत्तियों पर छोटे–छोटे धब्बों के रूप में संक्रमण देखा जाता है, जिनकी संख्या और आकार तेजी से बढ़ने लगता है। आस–पास के धब्बों के जुड़ जाने के बाद और गंभीर रूप से संक्रमण की स्थिति में पत्ते जले हुए और मुरझाए हुए दिखते हैं। खेतों में फल सड़ सकते हैं या कटाई के समय सड़ने की प्रक्रिया शुरू हो सकती है। खेत में फसल चक्रण तथा उचित जल निकासी जरूरी है। रोग मुक्त बीजों का प्रयोग और प्रति कि.ग्रा. बीज में 2.5 ग्रा. की दर से थिराम या प्रति कि.ग्रा. बीज में 2.5 ग्रा. कार्बेडिज्मा से इसका उपचार करें। ढुलाई में फलों को सड़ने से रोकने के लिए इसकी पैकिंग से पूर्व 30 सैकेण्ड के लिए 45^0 से. पर और 2 मिनट के लिए 40^0 सें. पर बोरेक्सी वाश (2.5%)करें।

कटाई, सस्योत्तर प्रबंधन एवं उपज

फसल	कटाई, कटाई के बाद प्रबंधन और पैदावार
खीरा	द्वीपीय जलवायु में खीरा बुवाई के बाद लगभग 70 से 80वें दिन में कटाई के लिए तैयार हो जाता है। फल लगने से लेकर विपणन योग्य आकार तक बढ़ने में इसे 6 से 8 दिनों का समय लगता है। खीरे को नरम और हरा रहते हुए तोड़ लिया जाता है। 2–4 दिनों के अंतराल पर तुड़ाई की जानी चाहिए। उपज प्रति हेक्टेयर 10 से 12 टन तक होती है।

लौकी	बीजों की बुवाई के बाद लगभग 60 से 100 दिनों में लौकी तैयार हो जाती है। फल लगने से लेकर विपणन योग्य आकार होने में लगभग 15 दिनों का समय लगता है। 3 से 4 दिनों के अंतराल पर फल को तोड़ा जाता है। इसके छिलके पर मौजूद हल्के रोम को देखकर और इसके छिलके को थोड़ा दबाकर इसकी कोमलता और खाने लायक पके होने का अंदाजा लगाया जाता है। फलों को 2–3 सप्ताह के लिए 10^0 से. तापमान और 60 से 70 प्रतिशत आर.एच. के अंतर्गत भंडारित किया जा सकता है। ओपन पोलिनेटेड प्रजाति के लिए उपज प्रति हेक्टेयर 20 से 25 टन तथा हाइब्रिड के लिए प्रति हेक्टेयर 60 से 65 टन है।
करेला	करेले की बुवाई से लेकर इसकी कटाई में 55 से 110 दिनों का समय लगता है। फलों को मुख्य रूप से तभी तोड़ा जाता है जब वे नरम और हरे हों। 2 से 3 दिनों के अंतराल पर फलों को तोड़ा जाना चाहिए। औसत पैदावार प्रति हेक्टेयर 20 से 30 टन है।
चिचिण्डा	पौधरोपण के लगभग 50 से 70 दिनों के बाद चिचिण्डा पहली कटाई के लिए तैयार हो जाता है। फलों में बिक्री योग्य परिपक्वता 5 से 7 दिनों में आती है। 3 से 4 दिनों के अंतराल पर फलों को तोड़ा जाता है। फलों को कमरे के तापमान पर 3 से 4 दिनों तक स्टोर रखा जा सकता है। औसत पैदावार प्रति हैक्टेयर 15 से 20 टन है।
तोरई	तोरई बुवाई के लगभग 60 दिनों बाद कटाई के लिए तैयार हो जाती है। अपरिपक्व नरम अवस्था में ही फसलों को तोड़ लिया जाता है। एन्थिसिस के 5–7 दिनों बाद फसल बिक्री के लायक पक जाते हैं। अधिक पका फल रेशेदार होगा और इसे खाया नहीं जा सकेगा। अधिक पकने से बचने के लिए 3–4 दिनों के अंतराल पर फलों को तोड़ लेना चाहिए। पैदावार : प्रति हैक्टेयर 10 से 15 टन।
कद्दू	पके हरे कद्दू की बुवाई से लेकर इसकी कटाई में 70 से 110 दिनों का समय लगता है। पके हरे फल के लिए इन्हें तब तोड़ा जाता है जब ये नरम और हरे हों। 5 से 6 दिनों के अंतराल पर इन्हें तोड़ लिया जाना चाहिए। औसत पैदावार प्रति हैक्टेयर 30–40 टन।
तरबूज	प्रजाति और मौसम के आधार पर तरबूज बुवाई के लगभग 100 दिनों के बाद कटाई के लिए तैयार हो जाता है। निम्न से परिपक्वता का अंदाजा लगाया जाता है। 1) प्रतान के सूख जाने से 2) उदर के रंग में बदलाव आने या आधार का रंग पीला पड़ जाने से 3) फल पर थपकी देने पर इससे धीमी आवाज आने पर 4) फलों को दबाने पर पके फल से हल्की सी चटकने की आवाज आने पर। तरबूजे को 2–3 सप्ताह से ज्यादा समय तक स्टोर नहीं किया जा सकता ।
खरबूजा	प्रजाति के आधार पर बुवाई के लगभग 90 दिनों बाद खरबूजे कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। फल लगने से लेकर पकने तक में खरबूजे को 30 दिनों का समय लगता है। कमरे के तापमान पर अर्थात् 8 दिनों तक 30^0 से० के तापमान पर फलों को स्टोर किया जा सकता है। पैदावार प्रति हैक्टेयर 40 से 50 टन के बीच है।
पेठा	प्रत्येक जगहों में मांग के आधार पर फलों को अपरिपक्व या पूर्णत: परिपक्व अवस्थाओं में काट लिया जाता है। एंथिसिस के एक सप्ताह बाद अपरिपक्व फलों की कटाई की जाती है और प्रत्येक एक सप्ताह के अंतराल पर कटाई की जाती है। पैदावार प्रति हैक्टेयर 30 से 40 टन के बीच होती है।

32.भिन्डी

दिव्या परिसा, सूबेदार यादव और आई. जयशंकर

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

अंडमान और निकोबार द्वीप में भिन्डी सबसे आम सब्जी है। इसकी खेती इसके मुलायम एवं कच्चे फल के लिए की जाती है जो कि पकाने के बाद करी और सूप के रूप में इस्तेमाल की जाती है। भिन्डी कैल्शियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस और विटामिन ए, बी, सी इत्यादि का प्रमुख स्रोत है। यह ल्यूकोरिया तथा कमजोरी से पीड़ित लोगों के लिए अच्छी होती है। गुड़ बनाने के लिए गन्ने के रस को साफ करने के लिए इसकी जड़ों और तनों का उपयोग किया जाता है। भिन्डी में आयोडीन की अधिक मात्रा होती है इसीलिए इसमें घेघा रोग को नियंत्रित करने की क्षमता होती है।

भूमि का चयन

भिन्डी दोमट से बलुई दोमट तक की मृदा में उगाई जा सकती है। हालांकि, चिकनी दोमट मिट्टी में इसकी अच्छी उपज होती है। अच्छी जल निकासी वाली और कार्बनिक पदार्थ से समृद्ध मृदाएँ उपयुक्त मानी जाती हैं। जड़ें अधिक जल ठहराव के प्रति अति संवेदनशील हैं, इसलिए जलभराव वाले क्षेत्रों से बचना चाहिए। इसकी खेती के लिए मिट्टी का पीएच 6 से 6.8 उपयुक्त माना जाता है।

खेत की तैयारी

बुवाई के 15 दिन पहले पहली जोताई के समय गोबर की खाद अच्छी तरह मिला देनी चाहिए। 10 दिनों के बाद अगली जोताई तथा बोने से 2–3 दिन पहले आखिरी जोताई करनी चाहिए। अंतिम जोताई के समय नाइट्रोजन की आधी मात्रा और फास्फोरस व पोटाशियम की पूरी मात्रा मिट्टी में मिला देनी चाहिए।

किस्में

अर्का अभय, पूसा मखमली, पूसा सावनी, अर्का अनामिका, होक–152, परभनी क्रांति, हाइब्रिड, पूसा ए–4, पंजाब पद्मिनी और आजाद क्रांति।

नर्सरी तैयारी की विधि

इसकी खेती के लिए पौध उगाने की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन अंतरालों को भरने के लिए नवोद्–भिद पौधों को 'प्रो–ट्रे' में या मई माह के दौरान रोपण के लिए उगाया जा सकता है, जब फसल की प्रारम्भिक अवस्था में जल महत्त्वपूर्ण कारक बन जाता है।

अवधि एवं बुवाई की विधि

द्वीप जलवायु में, भिन्डी को दिसंबर–जनवरी में गर्मियों की फसल के रूप में और मई–जून में वर्षाकाल की फसल के रूप में बोया जाता है।

बीज की दर

अंडमान द्वीप में ग्रीष्मकाल (फरवरी–अप्रैल) के दौरान वानस्पतिक वृद्धि अपेक्षाकृत कम होती है, अत: 18–20 कि.ग्रा./ हैक्टेयर बीज और वर्षाकाल (मई–अक्तूबर) के लिए 8–10 कि.ग्रा./है. बीज की आवश्यकता होती है।

उर्वरक और खाद प्रबंधन

खेत की अंतिम जोताई के समय 20–25 टन/है. पूर्ण रूप से सड़ी गोबर की खाद बेसल डोज़ के रूप में दी जाती है। 200 कि.ग्रा. यूरिया, 250–300 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट और 80–100 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से देने की सिफारिश की जाती है। 100 कि.ग्रा. यूरिया, सिंगल सुपर फॉस्फेट और पोटाश की पूरी मात्रा को बेसल डोज के रूप में देते हैं। शेष 100 कि.ग्रा. यूरिया बुवाई के 30 से 55 दिनों बाद दो बराबर भागों में देनी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार निकालने और 'हो' से निराई व गुड़ाई करने का कार्य 10–15 दिनों के अंतराल पर करते रहना चाहिए। बुवाई के 30वें तथा 45वें दिनो पर 'हो' से निराई व गुड़ाई करने से मृदा में वायु संचारण व पौधों की वृद्धि में सहायता मिलती है। खरपतवारनाशक जैसे बेसलिन (फ्लूक्लोरलिन) 2.5 ली./है. की दर से बुवाई से पहले तथा खरपतवारों की संख्या कम करने के लिए लासोलिन (एलाक्लोर) 5 ली./है. अंकुरण पूर्व देना चाहिए। सूखे घास या प्लास्टिक की मल्चिंग को खरपतवारों की संख्या कम करने में प्रभावी पाया गया है।

जल प्रबंधन

पहली बार सिंचाई बीज अंकुरण के बाद दी जाती है, बाद में बीज उगने के बाद खेत को सिंचित किया जाता है। बाद की सिंचाइयाँ गर्मी के दौरान (फरवरी से अप्रैल) वानस्पतिक वृद्धि के समय 3–4 दिनों के अंतराल पर, फूल व फल बनने के समय 2–3 दिनों के अंतराल पर दी जाती हैं, जबकि वर्षा के मौसम में अक्सर रोजाना वर्षा होने की वजह से अतिरिक्त सिंचाई पर ज्यादा जोर देने की आवश्यकता नहीं होती है। दक्षिण अंडमान में सूखे मौसम में (फरवरी से अप्रैल) में दी गई फरो सिंचाई की अपेक्षा ड्रिप के रूप में दी गई सिंचाई से अधिक उपज प्राप्त होती है। मृदा में नमी सरंक्षण के लिए घास की मल्चिंग का प्रयोग करना चाहिए।

कीट/ नाशीजीव प्रबंधन

यलो वेन मोज़ैक वायरस रोग

यह भिन्डी का सबसे गंभीर रोग है। पत्तियों की नसों का पीलापन विशेष लक्षण है और फसल में रोग की अवस्था के अनुसार उपज में 100% तक नुकसान हो सकता है। वायरस प्रभावित पौधों के फल क्रीम या सफेद रंग में बदल जाते हैं। एक सफेद मक्खी के माध्यम से वायरस का प्रसार होता है। पास के खेतों से मोज़ैक के लिए अतिसंवेदनशील खरपतवार को हटाना, सफेद मक्खियों का नियंत्रण, प्रभावित पौधों को उखाड़ना और दफन करना, बुवाई के समय का समायोजन करना और प्रतिरोधी किस्मों की खेती, जैसे कि अर्का अनामिका, अर्का अभय, आदि को उगाने की सिफारिश की जाती है।

अन्य महत्वपूर्ण कीट जैसे जेसीड, फल और तना छेदक और जड़ गाँठ सूत्रकृमि हैं। जेसीड और सफेद मक्खी के नियंत्रण के लिए डायमिथोएट 3–5 मि.ली./10 ली. से पर्णीय छिड़काव करना चाहिए। फल और तने छेद्कों को नियंत्रित करने के लिए, सभी क्षतिग्रस्त फलों व लटकती शाखाओं को हटा देना चाहिए। इमिडाक्लोरोमिड/5 मि.ली./10 ली. का 10 से 20 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए। एफिड को नियंत्रित करने के लिए, 0.05% नीम के तेल का प्रयोग करना चाहिए।

तुड़ाई, सस्योत्तर प्रबंधन और उपज

भिन्डी की बोवाई के 40–45 दिन बाद जब फल मुलायम हो, तुड़ाई शुरू हो जाती है। अच्छे बाजार मूल्य के लिए 6–8 सें.मी लंबे फलों की तुड़ाई करना पसंद किया जाता है। आमतौर पर फूल खिलने के 5–6 दिनों बाद यह अवस्था प्राप्त होती है। फलों को एक चाकू से या डंठल को झुकाकर झटके के साथ हर दूसरे दिन तोड़ा जाता है। भिन्डी को कमरे के तापमान पर सिर्फ 2 से 3 दिनों के लिए ही भंडारित किया जा सकता है। गर्मी के मौसम में (जनवरी से अप्रैल) 60–80 क्विं./है. उपज, जबकि अंडमान द्वीप समूह में वर्षा के मौसम (मई–सितंबर) में 120–130 क्विं/है. तक की उपज प्राप्त होती है।

33.पोई

दिव्या परिसा, सूबेदार यादव एवं आई. जयशंकर

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

पोई लोकप्रिय उष्णकटिबंधीय पत्तेदार हरी सब्जी वाली फसल है, जो आम तौर पर घर के रसोई–उद्यान(किचन गार्डन) में उगाई जाती है। यह गर्म और आर्द्र जलवायु में अच्छी तरह से उगती है। अत: द्वीपों में इसकी खेती वर्षभर संभव है। इसमें दो प्रमुख किस्में हैं, एक जिसका हरे रंग का तना और गहरे हरे रंग की पत्तियाँ होती हैं और दूसरा जिसका तना बैंगनी रंग का और हरी पत्तियों पर गहरी गुलाबी नसें होती हैं। हालांकि पोई में वसा और कैलोरी बहुत कम मात्रा में होती है (100 ग्राम कच्ची पत्तियों में केवल 19 कैलोरी) फिर भी इसमें विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट की मात्रा अविश्वसनीय रूप से अधिक होती है। पोई का तना और पत्ती विटामिन का एक अच्छा स्रोत है।

भूमि का चयन

फसल की अच्छी उपज के लिए अच्छी जल निकास वाली, भुरभूरी और दोमट से चिकनी मृदा अच्छी होती है। मृदा का पीएच 6.0–7.5 के बीच उपयुक्त होता है और इसे हल्की क्षारीय मृदा में भी उगाया जा सकता है।

खेत की तैयारी

मिट्टी को भुरभूरी बनाने के लिए एक गहरी जोताई के बाद 'हेरो' से एक या दो जोताई करके खेत तैयार किया जाता है। अंडमान की जलवायु के अंतर्गत वर्षा के मौसम (मई–अक्टूबर) में पोई की खेती के लिए एक उचित लम्बाई की 80–100 से.मी. चौड़ी क्यारियाँ बनाई जाती हैं।

किस्में : सी.ए.आर.आई. पोई सेलेक्शन, सी.ए.आर.आई. पोई रेड एवं स्थानीय किस्में।

बुवाई की अवधि एवं विधि

इसकी फसल पूरे वर्ष उगाई जा सकती है, लेकिन इसकी खेती के लिए दिसंबर–जनवरी और मई–जून के महीनों को वरीयता दी जाती है। बीजों की बुवाई, छिड़काव या पंक्तियों में की जाती है। पंक्तियों में बोवाई करना अधिक सुविधाजनक है क्योंकि इसमें खरपतवार निकालने, निराई व गुड़ाई करने और कटाई करने में आसानी रहती है। पंक्तियों की बीच की दूरी 20–30 से.मी. रखी जाती है और लगभग 5–10 से.मी. पर पंक्तियों के भीतर पौधे की दूरी बनाए रखने के लिए पौधों की छंटाई की जाती है।

बीज दर

मौसम के अनुसार बीज दर में भिन्नता होती है। अंडमान जलवायु में, छिड़काव पद्धति के रूप में प्रत्यक्ष बोवाई के लिए 12–15 कि.ग्रा./है. जबकि पंक्तियों में बोवाई के लिए 8–10 कि.ग्रा./ है. की सिफारिश की जाती है।

उर्वरक और खाद प्रबंधन

खेत की अंतिम तैयारी के समय पोई की फसल में 20–25 टन गोबर की खाद/है. की दर से दी जाती है, इसके अलावा 200 कि.ग्रा. यूरिया, 300–350 कि.ग्रा. सिंगल सूपर फॉस्फेट और 80–100 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति हैक्टयर की दर से प्रयोग किया जाता है। यूरिया की आधी मात्रा और सिंगल सूपर फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा को बेसल डोज के रूप में देते है। रोपण के 30– 60 दिनों के बाद शेष आधे यूरिया की मात्रा को दो भागो में दिया जाता है।

खरपतवार प्रबंधन

हाथों से खरपतवार उखाड़ना एक आम प्रक्रिया है। बोवाई के 10–15 दिनों के बाद खरपतवार निकाले जाते हैं और फसल की प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार को निकालते समय सावधानी बरतनी चाहिए। लास्सो (एनाक्लोर) @ 0.75 किलो ए.आई. या पेन्डीमेथेलिन 0.5 कि.ग्रा. ए.आई./हैक्टयर की दर से पूर्व अंकुरण के रूप में छिड़काव के साथ साथ 25 से 45 दिनों के बाद दो बार हाथों से खरपतवारों की सफाई अत्यधिक प्रभावी पाया गया है।

जल प्रबंधन

सूखे की अवधि (जनवरी से अप्रैल) में 4–5 दिनों के नियमित अंतराल पर सिंचाई की जानी चाहिए जबकि द्वीप की जलवायु के अंतर्गत लगातार बारिश के कारण मई से अक्टूबर तक सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं होती है। सूखे की अवधि (जनवरी से अप्रैल) के दौरान पानी की बचत और गुणवत्ता वाली पत्तियों की अधिक उपज के लिए ड्रिप सिंचाई प्रणाली के साथ–साथ क्यारी बनाने की सिफारिश की जाती है।

कीट, नाशीजीव एवं रोग प्रबंधन

लीफ माइनर, कटवर्म और जड़–गांठ सूत्रकृमि पोई की फसल को क्षति पहुंचाते हैं। इसके लिए नाइलॉन के जाल (32–45 मैश) का इस्तेमाल करके, संक्रमित पत्तियों को हटाकर, कटवर्म को हाथ से चुन कर, नीम की खली का प्रयोग करके तथा मार्च–अप्रैल के महीनों के दौरान काले रंग की मल्चिंग, खेत को धूप में तपाकर आदि पद्धतियों से क्षति को कम किया जा सकता है।

फसल की कटाई, सस्योत्तर प्रबन्धन एवं उपज

प्रतिरोपण के 35–40 दिनों के बाद तनों को भूमि से 20 सें.मी. की ऊंचाई से काटकर फसल की पहली कटाई की जाती है। दोहरी पंक्ति प्रणाली में, बोवाई में 45–50 दिनों के बाद नीचे की 2–4 पत्तियों को छोड़ते हुए तनों को भूमि से 10–15 से.मी. ऊपर से काट कर पहली कटाई करते हैं। एकल फसल से 15–20 टन/है. और बहु–कटाई की फसल से 54–60 टन/ है. तक उपज प्राप्त हो जाती है।

34.पालक

दिव्या परिसा, सूबेदार यादव और आई. जयशंकर

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

पालक, अंडमान द्वीप की सामान्य पत्तेदार सब्जियों में से एक मुख्य फसल है। इसे गमले में भी उगाया जा सकता है। यह विटामिन ए और सी का बहुमूल्य स्रोत है और इसमें प्रोटीन, कैल्शियम और लौह भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। द्वीप की जलवायु में इसे सालभर उगाया जाता है, लेकिन मई से जनवरी महीने के दौरान इसकी खेती अधिक लोकप्रिय है।

भूमि का चयन

हालांकि यह उचित जल निकासी वाली सभी प्रकार की मृदाओं में उगाई जा सकती है, फिर भी रेतीली दोमट और जलोढ़ मृदाएँ इसके लिए सबसे उपयुक्त हैं। अम्लीय मृदाएँ फसल की वृद्धि व उपज के लिए अच्छी नहीं होती हैं। मृदा का पीएच 6.0 से 7.0 के बीच होना चाहिए। यह जल भराव और खराब जल निकासी के प्रति अधिक संवेदनशील फसल है।

खेत की तैयारी

सर्वप्रथम भूमि को एक या दो गहरी जोताई की जरूरत होती है और मिट्टी को पूरी तरह से भूरभुरी बनाने के लिए दो या तीन बार 'मशीन' से गुड़ाई करने की आवश्यकता होती है। मिट्टी में जैविक पदार्थों को बढ़ाने के लिए गोबर की खाद 20–25 टन/है. की दर से मिट्टी में मिलानी चाहिए। रोपण के लिए उचित लंबाई वाली 60–80 से.मी. चौड़ी और 15–20 से.मी. ऊंची क्यारियाँ बनानी चाहिए।

किस्में :

ऑल ग्रीन, पूसा ज्योति, पूसा भारती, पूसा हरित और जॉबनेर ग्रीन।

बुवाई की अवधि एवं विधि

अंडमान द्वीपीय जलवायु में पालक वर्षभर उगाया जा सकता है, परन्तु बोवाई की मुख्य अवधि दिसंबर–जनवरी (सूखे की अवधि) के दौरान सिंचाई सुविधा के साथ की जाती है तथा वर्षाकाल की फसल के रूप में मई–जून के दौरान बोवाई की जाती है। अंकुरण में सुधार करने के लिए, बीज बोने से पहले रातभर पानी में भिगोए रखे जाते हैं।

बीजों को खेत में छिड़ककर या पंक्तियों में बोवाई की जाती है। पंक्तियों में बोवाई करना अधिक उपयुक्त होता है क्योंकि इससे खरपतवार निकालने, निराई–गुड़ाई करने और कटाई करने में सुविधा रहती है। पंक्तियों को 20 से.मी. दूरी पर बनाया जाता है और पंक्तियों में पौधों के बीच की दूरी 5 से.मी. रखने के लिए पौधों की छंटाई की जाती है।

बीज की दर

फसल के मौसम के अनुसार बीज दर भिन्न होती है। अंडमान के मौसम में शुष्क मौसम (जनवरी–अप्रैल) की फसल के लिए 30–40 कि.ग्रा.बीज/है. की आवश्यकता होती है। हालांकि, वर्षाकाल (मई–अक्टूबर) के लिए 20–25 कि.ग्रा./है. बीज काफी होता है।

उर्वरक और खाद प्रबंधन

चूंकि पालक एक पत्तेदार सब्जी है, इसलिए इसे वृद्धि के लिए अधिक नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। मिट्टी विश्लेषण के आधार पर की गई सिफारिश के अनुसार उर्वरकों का अनुप्रयोग बेहतर रहता है, लेकिन सामान्यतः पालक को 200 कि. ग्रा. यूरिया, 200–250 कि.ग्रा. सिंगल सूपर फॉस्फेट एवं 70–80 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश/है. के साथ–साथ 15–20 टन/है. गोबर की खाद देने की आवश्यकता होती है। गोबर की खाद की पूरी मात्रा, सिंगल सूपर फॉस्फेट व पोटाश की पूरी मात्रा और यूरिया की आधी मात्रा बोवाई के समय देनी चाहिए। रोपाई के 30–50 दिनों बाद यूरिया की शेष आधी मात्रा को दो भागों में दिया जाता है और इसके बाद एक हल्की सिंचाई की जाती है।

खरपतवार प्रबंधन

हाथ से खरपतवारों को उखाड़ना अभी भी एक सामान्य प्रक्रिया है। द्वीप जलवायु के अंतर्गत खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए आमतौर पर बहु–कटाई फसलों के लिए हाथों से खरपतवार निकालने के साथ–साथ 4–5 बार 'हो' से गुड़ाई तथा एकल उपज कटाई वाली फसलों के लिए 2–3 बार 'हो' से गुड़ाई करने की आवश्यकता होती है। यह भूमि में उचित वायु संचारण के लिए मिट्टी को भुरभुरी करने में मदद करता है।

जल प्रबंधन

इन द्वीपों की जलवायु के अंतर्गत बुवाई के तुरंत बाद पहली सिंचाई की जाती है। जनवरी से अप्रैल महीने के दौरान 4–6 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की जाती है। हालांकि, वर्षाकाल (मई से अक्टूबर) के दौरान लगातार बारिश के कारण सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है।

कीट/नाशीजीव प्रबंधन

पौधों का मुरझाना, पत्ती के धब्बे और एन्थ्रेक्नोज़ से पत्तियों की उपज और गुणवत्ता प्रभावित होती हैं। द्वीपीय जलवायु के अंतर्गत पत्ती धब्बा रोग का प्रमुख स्थान है। प्रभावित पत्तियों को तुरंत काटकर, मृदा को अधिक नमी व नाइट्रोजन से बचाकर इस रोग का प्रबंधन किया जा सकता है। इसके लिए मेन्कोज़ेब 4 ग्रा./ली. की दर से गोबर में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। पौधों को अच्छी तरह से कवर करें ताकि छिड़काव पत्तियों की सतह के नीचे तक पहुंच जाए। पत्ते खाने वाले कैटरपिलर और पत्तियों के रस चूसने वाले कीट इस फसल के लिए सामान्य कीट हैं। इनके नियंत्रण के लिए बोवाई के 30 दिनों बाद 15 दिनों के अंतराल पर इमिडाक्लोरोपिड 0.20% की दर से या डायमिथोएट 0.30% का छिड़काव करने का सुझाव दिया जाता है।

कटाई, सस्योत्तर प्रबंधन एवं उपज

बुवाई के लगभग 3–4 सप्ताह बाद फसल कटाई के लिए तैयार हो जाती है। बाद की कटाईयाँ फसल की किस्म व मौसम के अनुसार 20–25 दिनों के अंतराल पर की जाती हैं। फसल की कटाई सुबह नहीं करनी चाहिए क्योंकि फसल पर ओस पड़ी रहती है। विपणन के लिए कटाई के बाद इसे धोकर काटा–छांटा जाता है और वर्गीकृत करके गुच्छों में बांध दिया जाता है। पालक की बहु–कटाई फसल की पैदावार 18–28 टन प्रति हैक्टेयर और एकल कटाई वाली फसल की उपज 8–10 टन प्रति हैक्टेयर तक होती है।

35.मिर्च

दिव्या परिसा, सूबेदार यादव एवं आई. जयशंकर

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

अंडमान द्वीप समूह में मिर्च एक आम सब्जी है। हरी मिर्च विटामिन–सी, कैल्शियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, पोटाश, कॉपर एवं सल्फर का मुख्य स्रोत्र है। मिर्च का गूदा अचार, सिरका या ब्राइन के रूप में उपयोग किया जाता है। मिर्च के वर्णक/रंग को जिंजर बीयर तथा अन्य पेय पदार्थों की तैयारी में उपयोग किया जाता है। कुक्कुट आहार में भी लाल मिर्च सम्मिलित किया जाता है। हरी मिर्च में रूटिन तत्व की अधिक मात्रा होती है जिसका औषधीय उपयोग है।

भूमि का चयन

मिर्च को विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है। अंडमान द्वीप में, रेतीले दोमट से बलुई दोमट के साथ साथ अच्छी जल निकास वाली वातातित एवं जैविक खादों से समृद्ध मृदाएँ उपयुक्त होती हैं। इसके लिए अधिक अम्लीय और क्षारीय मिट्टी उपयुक्त नहीं होती है। पौधों की वृद्धि व विकास के लिए पी एच स्तर 6.0 से 6.5 के बीच अच्छा होता है। बीजों का अंकुरण और पौधे की ओजस्विता लवणता से प्रभावित होती है।

खेत की तैयारी

खेत की 2–3 बार जुताई करके समतल बनाया जाता है। अंतिम जोताई के समय गोबर की खाद 20–25 टन/है. की दर से मिट्टी में अच्छी तरह मिलाई जाती है। अंडमान द्वीप में मिर्च की खेती के लिए 15–20 से.मी. ऊंची और 60–80 से.मी चौड़ी तथा उपयुक्त लम्बाई की क्यारियाँ बनाई जाती हैं।

किस्में

के.ए.–2, एल.सी.ए.–334, पूसा ज्वाला, स्थानीय किस्में।

नर्सरी तैयारी की विधि

15–20 से.मी. ऊंची, 1 मी. चौड़ी तथा 3–7 मी. लम्बी जल निकासी वाली क्यारियाँ बनायी जानी चाहिए। 10 कि.ग्रा. गोबर की खाद या 5 कि.ग्रा. वर्मीकंपोस्ट प्रति वर्गमीटर की दर से डाला जाना चाहिए। पक्तियों के बीच 5 सें.मी. दूरी रखकर 1–2 से.मी. की गहराई पर बुवाई करनी चाहिए। पंक्तियों को गोबर की खाद के पाउडर से ढक देते हैं। पौधों को प्रो–ट्रे तकनीक से भी तैयार किया जा सकता है जिसमें प्लगों को वर्मीकम्पोस्ट तथा नारियल के रेशे की कम्पोस्ट (1:1) से भर दिया जाता है। क्यारियों से 35–42 दिनों में तथा ट्रे से 25–30 दिनों में नवोद्–भिद पौधे प्रतिरोपण के लिए तैयार हो जाते हैं।

समय और बुवाई की विधियां

अंडमान द्वीप में मिर्च मुख्य रूप से ग्रीष्म काल में (जनवरी से अप्रैल) तथा वर्षाकाल में (मई से अक्टूबर) के दौरान उगायी जाती है। बोवाई के 35 से 45 दिनों में नवोद्भिद पौधे प्रतिरोपण के लिए तैयार हो जाते हैं। पौधे बेहतर रूप से स्थापित होने के लिए तने के छोटे एवं मोटे नवोद्भिद पौधों को वरीयता दी जाती है। अगेती पौधों को एकल रूप में अलग–अलग दूरियों पर (30 से.मी. x 30 से.मी., 45 से.मी. x 45 तथा 30 से.मी. 20 से.मी.) प्रतिरोपित किया जाता है। मृत्यु दर को कम करने के लिए प्रत्यारोपण के तुरन्त बाद सिंचाई की जानी चाहिए।

बीज की दर

एक हैक्टेयर क्षेत्र में बोवाई के लिए 1.0 से 1.5 कि.ग्रा. बीजों की आवश्यकता होती है।

उर्वरक और खाद

इसके लिए ह्यूमस वाली अच्छी उपजाऊ भूमि की आवश्यकता होती है तथा अंतिम जोताई के समय 15 से 20 टन/हैक्टेयर की दर से गोबर की अच्छी तरह से सड़ी खाद की आवश्यकता होती है। इसके अलावा, 200 –250 कि.ग्रा. यूरिया, 300 कि.ग्रा. सूपर फॉस्फेट और 80 से 100 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश की आवश्यकता होती है। 100 कि.ग्रा. यूरिया, सिंगल सूपर फॉस्फेट की पूरी मात्रा और 50 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश को बेसल खुराक के रूप में दिया जाता है। शेष 100 कि.ग्रा. यूरिया और 50 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश 30 और 60 दिनों के अंतराल पर दो समान किस्तों में दी जाती है।

खरपतवार प्रबंधन

आम तौर पर खरपतवार निकालने का कार्य हाथों से किया जाता है। खरपतवार नियंत्रण एवं मृदा में नमी सरंक्षण के लिए प्लास्टिक की फिल्म, सूखी घास और चावल की पुआल से मल्चिंग की जाती है। खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए फ्लूक्लोरालिन 1.5 कि.ग्रा. ए.आई./है. की दर से प्रयोग किया जाता है।

जल प्रबंधन

भूमि में पौधों के बेहतर स्थापन के लिए प्रत्यारोपण के बाद पहली सिंचाई दी जाती है। दूसरी सिंचाई प्रत्यारोपण के 10 दिन बाद की जाती है। इस अवधि के दौरान गैप फिलिंग का कार्य भी किया जा सकता है। इसके बाद आवश्यकता के अनुसार सिंचाई की जाती है। आम तौर पर फरवरी से अप्रैल तक 4–5 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की जाती है। द्वीप जलवायु के अंतर्गत मई से अक्टूबर तक अधिकतर प्रतिदिन की वर्षा के कारण सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

नाशीजीव प्रबंधन

डैपिंग ऑफ रोग

उगने से पहले नवोद्भिद पौधों की पानी सोखने, तने की मुरझान के कारण मृत्यु हो जाती है। निम्न स्तरीय जल निकासी, नमी वाली मृदा, 90–100% आरएच तथा 20^0 से. तापमान डैपिंग ऑफ रोग के अनुकूल है। कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.25% की दर से मिट्टी को तर करके इस रोग का नियंत्रण किया जा सकता है।

फल गलन और डाई बैक

इस रोग में कवकों के कारण नई टहनियाँ सिरे से नीचे की ओर से गलने लगती है इसी कारण से इस रोग को डाई –बैक कहा जाता है। संक्रमण आम तौर पर तब होता है जब फसल पुष्पण अवस्था में होती है। फूल सूखकर गिरने लगते है। रोग को रोकने के लिए रोगमुक्त बीज का उपयोग करना महत्त्वपूर्ण है। बीजजनित रोग नियंत्रण के लिए थीरम या कैप्टॉन 4 ग्रा./कि.ग्रा. से बीज उपचार प्रभावी पाया गया है।

विषाणुजनित रोग

पत्तियों के इस वायरल रोग में पत्तियाँ मिडरिब की ओर मुड़कर विकृत हो जाती हैं। तनों पर गांठ की दूरियां कम होने के कारण पौधे की वृद्धि अवरूद्ध हो जाती है और पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है। वायरस आमतौर पर सफेद मक्खी द्वारा प्रसारित होता है। अत: सफेद मक्खी को नियंत्रित करना रोग नियंत्रण में सहायक होता है। मोज़ैइक विषाणुओं में इस रोग की प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों पर हल्के और गहरे हरे रंग के धब्बे व पौधों की वृद्धि में रूकावट होती है। पत्तियों और फलों पर पीले हरित विहीन गोल धब्बे पड़ जाते हैं। अधिकांश वाइरल बीमारियों के नियंत्रण के उपाय ज्ञात नहीं है। अत: अधिकांशत: यांत्रिक व सस्य क्रियाओं की ज्यादातर सिफारिश की जाती है। आगे के संक्रमण से बचने के लिए संक्रमित पौधों को उखाड़ना और जलाना या दफना देना चाहिए। मिर्च की फसल के एकल कल्चर से बचें। स्वस्थ एवं रोगमुक्त बीज का चयन करना चाहिए।

तुड़ाई, सस्योत्तर प्रबंधन और उपज

प्रतिरोपण के 2–3 माह बाद 5–10 दिनों के अंतराल पर हरी मिरचों की तुड़ाई की जा सकती है। हरी मिर्च को लगभग 0^0 सेल्सियस एवं 95 से 98% सापेक्षिक आर्द्रता में 40 दिनों तक संग्रहित किया जा सकता है। सूखी मिर्च को कीटों से सुरक्षित सूखे स्थानों पर एक महीने के लिए रखा जा सकता है। वाणिज्यिक एवं खुले परागन वाले किस्मों से 80–120 क्विं/है. तथा एफ1 संकर किस्मों से 400–500 क्विं/है. की उपज प्राप्त होती है।

36.बैंगन

पी.के. सिंह, आर.के. गौतम, अवनीन्द्र कुमार सिंह एवं के. शक्तिवेल

संक्षिप्त परिचय

बैंगन अंडमान एवं निकोबार की एक प्रमुख सब्जी की फसल है। इसके फल मुख्य रूप से सब्जी के रूप में प्रयोग होते हैं। बैंगन के फलों में मुख्यतः फाइबर, कार्बोहाइड्रेट, खनिज व विटामिन पाये जाते हैं, साथ ही फलों से कम वसा व कैलोरी प्राप्त होती है। उखटा रोग बैंगन की एक प्रमुख बीमारी है जो बैक्टीरिया द्वारा फैलती है। इस रोग से बैंगन की फसल में 20 से 50% तक हानि पहुंचती है। यह बीमारी न केवल द्वीपों में बैगन की फसल को हानि पहुंचाती है बल्कि देश के अन्य भागो में भी बैंगन वर्गीय फसलों की एक प्रमुख बीमारी है। इस बीमारी को दवाईयों द्वारा नियंत्रित करना कठिन है, लेकिन रोग प्रतिरोधी किस्में उगाकर इसे आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है। इस बीमारी को नियंत्रित करने के लिए भा.कृ.अ.प.–केन्द्रीय द्वीपीय कृषि अनुसन्धान संस्थान,पोर्ट ब्लेयर ने काफी प्रयास किये हैं। इसके लिए एक रोग प्रतिरोधी किस्म "कैरी बैगन 1" विकसित की है जो इस बीमारी के लिए पूरी तरह प्रतिरोधी है। साथ ही यह किस्म आंशिक सूखा अथवा कम पानी में भी अन्य किस्मों की अपेक्षा अधिक उपज देती है। यह किस्म द्वीपों में अक्टूबर से मई के बीच उगाने के लिए उपयुक्त है। इस किस्म के फल हरे रंग के बड़े, अंडाकार व कम बीज वाले होते हैं। इस के अलावा केन्द्रीय द्वीपीय कृषि अनुसन्धान संस्थान ने बैगन वर्गीय सब्जियों में उखटा रोग को नियंत्रित करने के लिए एक बायो कन्सोर्षिया का विकास भी किया है। साथ ही द्वीपों के लिए बैगन की नवीन सस्य तकनीकियाँ भी विकसित की हैं।

बैंगन की द्वीपों के लिए प्रमुख प्रजातियाँ

द्वीपों में बैंगन की खेती करने लिए उपयुक्त प्रजातियाँ हैं –"कैरी बैगन 1" (उखटा रोग प्रतिरोधी किस्म), पूसा क्रान्ति, पूसा पर्पल लॉन्ग, गुलाबी, ब्लैक राउंड, एम.डी.यू–1 आदि हैं।

भूमि की तैयारी

बैंगन की खेती के लिए बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त पाई गई है। भूमि की तैयारी अच्छी तरह करनी चाहिए। इसके लिए पौध की रोपाई से 15–20 दिन से पहले गोबर की खाद 20–25 टन प्रति हैक्टयेर की दर से खेत में मिलायें तथा खेत की 3–4 गहरी जुताई करें। तैयार खेत में 4–6 सप्ताह के स्वस्थ पौधों को 60x45 सें.मी. दूरी पर लगाएँ । रोपाई थोड़ी उठी हुई (5 सें.मी.) पंक्तियों में करनी चाहिये ताकि आकस्मिक पानी भराव से पौधों को नुकसान ना हो। रोपाई के समय पौधों को स्यूडोमोनास या बैविस्टीन एवं ट्राईकोडर्मा से उपचारित करना लाभदायक रहता है।

बीज की मात्रा व पौध तैयार करने की विधि

बैंगन की एक हैक्टेयर खेती के लिए 250–300 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। बीज की बुबाई के लिए 7.2x1.2 मी.आकार की 10–15 सेमी ऊँची क्यारियाँ बनायें। एक हैक्टेयर खेत की रोपाई के लिए इस तरह की 10 क्यारियों की आवश्यकता होगी। क्यारियाँ तैयार करते समय उचित मात्रा में गोबर की खाद मिलायें। नर्सरी में फैलने वाली बीमारी जैसे डैम्पिंग ऑफ से बचने के लिए बैविस्टीन (15–20 ग्राम/10 ली. पानी) में घोलकर ड्रेचिंग करें। इसके अलावा बीमारी नियंत्रण के लिये बीज को बुबाई से पहले स्यूडोमोनास (4 ग्राम/किलो ग्राम बीज) की दर से भी उपचारित कर सकते हैं। बीज की बुबाई 5– 7 सें.मी. की दूरी पर कतारों में करनी चाहिए तथा बुबाई के बाद बीज को बारीक मिट्टी से ढक कर हल्की सिंचाई करनी चाहिये। क्यारियों में उचित तापमान व नमी बनाये रखने के लिए उन्हें सूखी घास से ढकना चाहिए तथा समय–समय हल्की सिंचाई करनी चाहिए। बीज उगने पर सूखी घास को हटा देना चाहिये। बैंगन के पौधे 4–6 सप्ताह में खेत में रोपाई के लिये तैयार हो जाते हैं। द्वीपों में बैंगन के बीज की बुवाई अक्टूबर–नवम्बर माह में करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

बैंगन लम्बी अवधि की फसल होने के कारण इसे अधिक उर्वरक की आवश्यकता होती है। अधिक पैदावार के लिए गोबर की खाद 15–20 टन के अलावा 50 किलो ग्राम नत्रजन 50 किलो ग्राम फॉस्फोरस एवं 50 किलो ग्राम पोटाश प्रति हैक्टेयर की दर से पौधरोपण के दौरान भूमि में जुताई के समय मिलाना चाहिये। इसके अलावा 50 किलोग्राम नत्रजन दो भागों में रोपाई के 30 एवं 50 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में देना चाहिये। द्वीपों में भूमि में सूक्ष्म तत्वों की कमी होने के कारण बोरेक्स, जिंक सल्फेट अदि सूक्ष्म तत्वों के मिश्रण का 0.2% के हिसाब से रोपाई के 45 दिन बाद छिड़काव करना उपयोगी होता है।

निराई–गुड़ाई

द्वीपों में खरपतवार नियंत्रण एक कठिन समस्या है। इसके लिए मल्चिंग एवं समय पर निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। पौध की रोपाई के 30 दिन वाद एक गुड़ाई अवश्य करनी चाहिए। बैंगन की अधिक पैदावार के लिए 15 दिन के अंतराल पर निराई–गुड़ाई करनी चाहिये। साथ ही खरपतवार नाशी दवा फ्लुक्लोरालिन (1.5 किलो ग्राम/है.) से पौध की रोपाई के बाद छिड़काव कर सकते हैं।

सिंचाई

बैंगन में शुष्ककाल में 10–15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करें। अधिक जल भराव की स्थिति में जल निकासी की उचित व्यवस्था करनी चाहिये।

फलों की तुड़ाई एवं पैदावार

फलों के उचित आकार एवं रंग के आधार पर सुबह के समय तुड़ाई कर थोड़ी देर छांव में रखें। फलों को तोड़ते समय ध्यान रखें की फलों के डंठल फलों के साथ लगे रहें। द्वीपों में बैंगन की अच्छी पैदावार होने पर 20–25 टन/हैक्टेयर तक उपज प्राप्त हो जाती है।

कीट एवं रोग नियंत्रण

बैंगन का तना व फल छेदक कीट: बैंगन में तना व फल छेदक सबसे अधिक हानि पहुंचाने वाला एक प्रमुख कीट है। इसका निवारण समय–समय पर खेत की सफाई, कीट ग्रसित शाखाओं व फलों को काट कर जलाने, फेरोमोन ट्रैप अदि के इस्तेमाल से कर सकते हैं। साथ ही कीटों का अधिक प्रकोप होने पर जैव कीटनाशियों का प्रयोग करना चाहिये।

बैंगन का झुलसा रोग

इसकी रोकथाम के लिए रोग रोधी किस्म जैसे कैरी बैगन–1 आदि बोयें। साथ ही बीज को ट्राईकोडर्मा (5 ग्राम/किलोग्राम बीज) या कार्बेन्डाज़िम (5 ग्राम/किलोग्राम बीज) से शोधन कर बोयें एवं कार्बन्डाज़िम (1 ग्राम प्रति लीटर) की दर से 10 दिन के अंतराल पर का छिड़काव करें।

कीट एवं रोग नियन्त्रण की आइ. पी. एम. रणनीति

I. शस्य क्रियाएं

1. बैंगन की खेती के लिए खेत से पुरानी फसलों के अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।
2. कीट व बीमारी आदि को नष्ट करने के लिए गर्मी में खेत की गहरी जुताई करें।
3. नर्सरी की क्यारियों को बीज की बुवाई से पहले 15 –20 दिन तक काली पॉलीथिन (60–100 गेज) से ढक कर रखने से खरपतवार, नेमेटोड, कीट व रोग आदि नष्ट हो जाते हैं।
4. रोग रोधी किस्में बोयें– जैसे कैरी बैगन 1, पंजाब बरसाती, अर्का कुसुमकर, पूसा पर्पल क्लस्टर आदि।
5. डैम्पिंग ऑफ बीमारी से बचाव के लिए बीज की बुवाई ऊँची क्यारियों में करनी चाहिए।
6. बिमारियों से बचाव के लिए उर्वरकों का संतुलित प्रयोग करें व खेत में पानी का उचित निकास बनायें।
7. बैंगन में तना व फल छेदक कीट के नियन्त्रण के लिए समय–समय पर राख का बुरकाव करें।

II. यांत्रिकी नियन्त्रण

1. पौधों की पत्तियों से कीड़ों व उनके अन्डों को समय–समय पर चुन कर नष्ट कर दें।
2. रस चूसने वाले कीड़ों के लिए पीले पैन/छिपने वाले ट्रैप्स 10/है. की दर से प्रयोग करना चाहिए।
3. तना व फल छेदक ग्रसित तनों को समय–समय पर तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
4. खेत को साफ रखने के लिए 15 दिन के अंतराल पर निराई–गुड़ाई करनी चाहिये।
5. रोग ग्रसित फलों को समय–समय पर चुन कर नष्ट कर देना चाहिए।

III. जैवनियंत्रण

1. मित्र कीटों के लिए बैंगन के खेत की मेड़ों पर दालों के पौधे लगायें।
2. फसल के मित्र कीटों को बचाने के लिए कीटनाशी दवाओं का कम व संतुलित प्रयोग करें।

IV. जैव कीटनाशक

1. बीज व मिट्टी से पैदा होने वाली बीमारियों के नियंत्रण के लिए बीज को ट्राइकोडर्मा या स्यूडोमोनास (2ग्राम/100 ग्राम बीज) की दर से उपचारित कर बोयें।

V. वानस्पतिक कीटनाशक

1. रूट नोट नेमेटोड की रोकथाम के लिए नीम की खली 200 किलो ग्राम/है. की दर से भूमि की तैयारी के समय मिलाना चाहिये।
2. रस चूसने वाले कीड़ों व सर्पेन्टाइन लीफ माइनर की रोकथाम के लिए 5% नीम के बीजों का रस (NSKE) का छिड़काव फसल की शुरूआत में करें।

VI. रासायनिक कीटनाशक

1. केवल सुरक्षित रासायनिक कीटनाशियों का प्रयोग बहुत अधिक आवश्यकता होने पर ही करना चाहिए।
2. लीफ स्पॉट बीमारी के लिए कार्बेन्डाज़िम (50%@300ग्राम/है.) छिड़काव करें।
3. नेमेटोड व रस चूसने वाले कीटों की रोकथाम के लिए कार्बोफ्युरान @ 1कि.ग्र./है. फसल की बढ़बार के समय प्रयोग करें।
4. ऐसे स्थानों पर जहाँ बैंगन का झुलसा रोग अधिक फैलता हो, ब्लीचिंग पाउडर 15 कि.ग्रा./है. की दर से का प्रयोग करें।
5. जैसीड आदि पत्तों के कीटों की रोकथाम के लिए पौधों को रोपाई से 6 घंटे पहले डाईमेथोएट 0.02% के घोल में डुबोकर रोपाई करें या साइपरमैथ्रिन 50 ग्र./है. की दर से 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

37.कसावा

वी. दामोदरन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

कसावा कंद स्टार्च से समृद्ध एक महत्वपूर्ण गौण आहार है। यह उद्योग (स्टार्च एवं सागो) के लिए कच्ची सामग्री है और पशु, मत्स्य एवं कुक्कुट आहार का एक घटक है, चूंकि स्टार्च के कण जल में स्थिर रहते हैं। इसे खाद्य उत्पादों के रूप में प्रसंस्कृत किया जाता है, जैसे चिप्स, सागो, सेबई, पापड़ इत्यादि।

मृदा का चयन

यह फसल सूखे के प्रति अत्यंत सहिष्णुता वाली है जो 35^0 से. के उच्च तापमान को भी सहन करती है। इस फसल के लिए अच्छी गहराई वाली हल्की अम्लीय मृदा को वरीयता दी जाती है। कसावा सूखी लैटराइट बलुई दोमट (या) लाल दोमट मृदा जिसका पीएच स्तर 4.5–6.5 है, में अच्छी तरह उगता है। कंदों के समान विकास के लिए वातित मृदा की आवश्यकता होती है। द्वीपीय पारितंत्र के लिए उच्च उपज देने वाले अनेक किस्मों की जांच की गई और श्री जया और श्री विजया अत्यंत उपयुक्त पाई गई।

रोपण अवधि

सिंचित स्थितियों के अंतर्गत कसावा का रोपण वर्षभर किया जा सकता है। वर्षा आधारित खेती के लिए तने की कतरनों/काट का रोपण अप्रैल–मई के दौरान दक्षिण–पश्चिमी मानसून के प्रारंभ होने पर किया जाता है तथा इसके बाद रोपण का उपयुक्त समय अगस्त–सितम्बर है जो उत्तर–पूर्वी बौछारों की प्रारंभिक अवधि है।

भूमि की तैयारी

सपाट क्यारियों में रोपण : हल्की अवसंरचनाओं वाली मृदाओं के लिए।

मेड़ पर रोपण : ढलानयुक्त भूमि पर वर्षा आधारित फसल के लिए, ढलान के आर–पार मेड़ तैयार करें जिसकी ऊंचाई 25–30 सें.मी. हो।

गड्ढे/टीले की पद्धति : 45 घन से.मी. के गड्ढों को तैयार करें तथा गोबर की खाद डालकर इसे मिट्टी में मिलाएं और इससे 25–30 सें.मी. ऊंचे टीले बनाएं (अपर्याप्त जल निकासी वाली मृदाओं के लिए)।

रोपण सामग्री

कसावा का प्रवर्धन परिपक्व तनों से प्राप्त कतरनों, जो नीचे के भाग से 10 सें.मी. और ऊपरी भाग से 25–30 सें.मी. काट कर अलग किए गए तने के मध्य भाग से प्राप्त हुआ हो। परंपरागत पद्धति में तना रोपण के लिए 20 सें.मी. लंबे तने के टुकड़ों, जिस पर 10 से 12 कलियां हों, रोपण सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता है। तथापि, 10 या 12 कलियों में से केवल 2 कलियों में अंकुर आने दिया जाता है, जिसे रखकर शेष सभी को हटा दिया जाता है। मिनीसेट तकनीक में प्रत्येक कली की अंकुरण क्षमता को उपयोग करने तथा इन्हें नए पौधे के रूप में उगाने और इस प्रकार गुणन अनुपात में वृद्धि करना संभव है।

रोपण सामग्री का चयन

7–10 माह की परिपक्वता वाली रोग एवं कीटमुक्त सामग्री जिसकी मोटाई 2–3 से.मी. हो, रोपण के लिए चुनी जाती है। तने को ऊपर से एक तिहाई भाग काट कर अलग करने के पश्चात् तने के निचले एवं मध्य भाग से प्राप्त खूटियों को पौध की बेहतर स्थापना एवं जड़ उपज की दृष्टि से रोपण में वरीयता दी जाती है। खूटियों को तैयार करने के दौरान अनियमित कट की अपेक्षा चिकना वृताकार कट होना चाहिए।

15 से 20 सें.मी. लम्बी खूंटी उच्च उपज के लिए लाभदायक पाई गई। उथले रोपण से अधिक संख्या में जड़ निकलते हैं। जब मृदा पर्याप्त रूप से ढीली एवं भुरभुरी होती है, तब खूंटियों को 5 से.मी. गहराई पर रोपित किया जा सकता है। खूंटियों को अधिक गहराई में रोपित करने पर मूल तना फूल जाता है जिससे जड़ का आकार और उपज घट जाते है।

रोपण विधि

खूंटियों के रोपण की विभिन्न पद्धतियों, जैसे लंबवत (भूमि से 90^0), तिरछी (45^0 कोण) तथा क्षैतिज में देखा गया कि लंबवत रोपण में काटी गई सतह के आस–पास कैलस ऊतकों की कंद बनने वाली जड़ों का विकास हो सका।

दूरी एवं पौधों की संख्या

शाखा उगने के आधार पर कसावा जीन प्ररूपों को शाखीय, अल्पशाखीय, तथा आशाखीय प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है। अनुकूलतम उत्पादन के लिए आशाखीय प्रकार में 75 सें.मी.x 75 सें.मी.की दूरी आवश्यक होती है जबकि अल्पशाखीय तथा शाखीय प्रकारों में 90 से.मी. x 90 सें.मी. की दूरी आवश्यक होती है। सामान्यत: एक खूंटी/टीला रोपित किया जाता है, परंतु दो खूंटी प्रति टीले रोपित करने पर कंदों की कुल उपज में सुधार हो सकता है लेकिन कंद का आकार घट जाता है।

सस्य क्रियाएं एवं गुड़ाई

सस्य क्रियाएं महत्त्वपूर्ण हैं, विशेषकर फसल की प्रारंभिक अवस्था में, खरपतवारों के नियंत्रण तथा मृदा की भौतिक अवस्था में सुधार करना होता है। रोपण के 45–60 दिनों पर प्रथम गुड़ाई पर्याप्त गहराई से की जानी चाहिए तथा प्रथम गुड़ाई के पश्चात एक माह बाद दूसरी गुड़ाई की जाती है। प्रथम गुड़ाई के दौरान दो अंकुरों को विपरीत दिशाओं में रखते हुए शेष अतिरिक्त अंकुरों को हटा दिया जाता है।

खाद एवं उर्वरक

कसावा की उच्च उपजवाली किस्मों के लिए 12.5 टन गोबर की खाद/कम्पोस्ट के साथ उर्वरकों की खुराक 100:50:100 कि.ग्रा. एनपीके/है. (217 कि.ग्रा. यूरिया, 250 कि.ग्रा. रॉक सल्फेट तथा 166 कि.ग्रा. म्यूरिएट ऑफ पोटाश) दी जाती है। कसावा की अल्पावधि किस्मों तथा स्थानीय किस्मों के लिए उर्वरकों की खुराक को दो किस्तों में देने की सिफारिश की जाती है। कसावा की निरंतर खेती से सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी होती है, विशेषकर जस्ते की। इन मामलों में रोपण अवधि के दौरान जिंक 1 ग्रा./पौध की दर से मृदा में डालने पर मृदा में इसके स्तर का रखरखाव तथा कंद उपज में सुधार होता है।

अंतर–फसलीकरण

कसावा लंबी अवधि की फसल होने के कारण इसे हमेशा ही साथी फसल, जैसे, राजमा, लोबिया, मूंगफली तथा काली मूंग के साथ उगाया जाता है जो अल्पावधि की फसलें हैं।

पौध संरक्षण

कंद सड़न

संक्रमित कंदों में आंतरिक ऊतकों का भूरा रंग मलिन हो जाता है, सड़ कर दुर्गंध आती है तथा यह उपभोग या विपणन के लिए अनुपयुक्त हो जाता है।

नियंत्रण उपाय

- निकासी की व्यवस्था करें
- संक्रमित कंदों को हटा दें
- मृदा में जैव उर्वरक (ट्राइकोडर्मा विरीडी) डालें।

कटाई एवं उपज

मृदा में आई दरार, पत्तियों का पीला होना एवं गिरना कंद की परिपक्वता को सूचित करता है। पौधे के मूल से मिट्टी हटाकर खुदाई की जाती है। तने के मूल से 1–2 फीट छोड़कर पौधे को काट दिया जाता है।

38.शकरकंद

वी. दामोदरन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

शकरकंद एक शाकीय बारहमासी पौधा है, जिसे वार्षिक फसल के रूप में उगाया जाता है। तना कतरनों से विकसित अपस्थानिक जड़ स्टार्च के जमाव से कंदों में परिवर्तित हो जाते हैं। इन कंदों में कार्बोहाइड्रेट (18–29%), स्टार्च (1–2%) तथा अपचायी शर्करा (0.5–2%) मौजूद हैं। किस्मों के आधार पर 100 ग्रा. कंद में 4 से 12 मि.ग्रा. कैरोटीन की मात्रा होती है।

जलवायु एवं मृदा

उच्च जैविक तत्वों से समृद्ध एवं अच्छी निकासी वाली बलुई दोमट मृदा इस फसल के लिए उपयुक्त है। भारी मृदा, लवणीय एवं क्षारीय मृदाएँ इसके लिए अनुपयुक्त हैं। उच्च उपज प्राप्ति के लिए पी.एच का स्तर 5.6 से 6.6 तक अनुकूल माना जाता है। छोटे दिन व लंबी रातें कंद के विकास के लिए उपयुक्त हैं।

किस्में

द्वीपीय स्थितियों में सी.ए.आर.आई.–एस.पी.1 तथा सी.ए.आर.आई.–एस.पी.2 उच्च उपज वाली किस्में हैं।

सी.ए.आर.आई.–एस.पी.1 (सी.ए.आर.आई.–स्वर्णा)

पौधे फैले हुए, उभरती पत्तियाँ हल्की बैंगनी रंग की, डंठल बैंगनी रंग के, कंद हल्के गुलाबी तथा गूदा नारंगी रंग का होता है। फसल की अवधि 110–120 दिन तथा उपज क्षमता 20–21 टन प्रति हैक्टेयर होती है। यह घुन की प्रतिरोधी एवं द्वीपीय स्थितियों के लिए उपयुक्त किस्म है।

सी.ए.आर.आई.–एस.पी.2 (सी.ए.आर.आई.–अपर्णा)

पौधे अर्द्ध विस्तृत, उभरती पत्तियां हल्के बैंगनी रंग की, डंठल हरित गुलाबी रंग के, कंद हल्के गुलाबी, गूदा सफेद रंग का होता है। इस फसल की अवधि 110–120 दिन तथा उपज क्षमता 20–21 टन प्रति हैक्टेयर होती है। यह घुन के प्रति सामान्य प्रतिरोधी एवं द्वीपीय स्थितियों के लिए उपयुक्त किस्म है।

नर्सरी संवर्धन

शकरकंद से उच्च उपज प्राप्त करने के लिए अग्रभाग की कतरनें सर्वोत्तम हैं। कंद उत्पादन के लिए 3 से 5 गांठ वाली 20–40 सें.मी. लंबी बेल उपयुक्त होती हैं। पत्तियों सहित बेल की कतरनों को मुख्य खेत में रोपण से पूर्व छांव में दो दिनों तक रखने से अच्छी जड़ें निकलती हैं, बेल जल्द स्थापित हो जाती है और उच्च कंद उपज प्राप्त होती है। यदि बेलों को दूर तक ले जाना है तो भार कम करने हेतु पत्तियों को हटा दिया जा सकता है।

खेत की तैयारी एवं रोपण

खेत में 20–25 टन गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर की दर से डाल कर दो–तीन बार अच्छी तरह जुताई करनी चाहिए। जुताई के दौरान यह सावधानी बरतनी चाहिए कि गहराई तक न जाएं, चूंकि इससे जड़ गहराई तक चली जाती हैं और कंद पतले हो जाते हैं। अत: अच्छी फसल के लिए मिट्टी की गहराई 15 से 20 सें.मी. पर्याप्त है। कतरनों को 60 से.मी. x 20 से.मी. की दूरी पर मेड़ो पर रोपित किया जा सकता है या समतल क्यारियों में रोपित किया जा सकता है, जहां भारी वर्षा एवं जल भराव की समस्या नहीं है। कुछ क्षेत्रों में 40 सें.मी. लंबी बेल का उपयोग किया जाता है और रोपण इस प्रकार किया जाता है कि कतरन का मध्य भाग मिट्टी में दबा हो और दोनों छोर जमीन के ऊपर खुले छूटें हों।

रोपण अवधि

इस फसल का उत्पादन पूरे वर्ष किया जा सकता है। तथापि, इसका रोपण जून–सितम्बर तथा फरवरी–मार्च में किया जा सकता है।

पोषण प्रबन्धन

फसल में 87 कि.ग्रा. यूरिया, 400 कि.ग्रा. रॉक फॉस्फेट तथा 100 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश/है. की दर से उर्वरकों के प्रयोग की सिफारिश की जाती है।

सिंचाई

रोपण के तुरंत बाद पहली सिंचाई की जाती है। तत्पश्चात् तीसरे दिन जीवनरक्षक सिंचाई की जा सकती है। वर्षा न होने पर पहले दो दिनों तक सुबह और शाम सिंचाई की जा सकती है। कंद विकास के दौरान नमी की कमी से बचना चाहिए।

अंतः फसल

रोपण के 20–25 दिनों के पश्चात एक निराई आवश्यक है। रोपण के 40–50 दिनों पश्चात बेलों को पलट दिया जाता है ताकि प्रत्येक गांठ से अधिक अपस्थानिक जड़ों के उत्पादन को रोका जा सके।

पौध संरक्षण

शकरकंद घुन

शकरकंद घुन अत्यधिक हानिकारक नाशीजीव है, जिससे फसलों को भारी क्षति होती है। यह घुन चींटी जैसे काले एवं छोटे जीव हैं जिन पर 5–8 मि.मी. लंबी टोंटी होती है। मादा नाशीजीव बेलों के मूल में अंडे देती हैं। इसके कोआ बेलों को आहार के रूप में ग्रहण करते हैं और इसे एक माह में समाप्त कर देते हैं। वयस्क कीट का जीवनकाल 90–120 दिन का होता है। घुन कंद में अनेक सुराख एवं टनल बनाते हैं। हल्की क्षति वाले कंद भी कड़वाहट के कारण उपभोग के लिए अनुपयुक्त हो जाते हैं।

नियंत्रण उपाय

1. रोपण से पूर्व बेल की कतरनों को 10 मिनट तक डाइमिथोएट (0.05% द्रव्य) में डुबोए रखना चाहिए।
2. खेत से फसल के अवशेष एवं कंदों को हटा देना चाहिए।
3. रोपण के 30 दिनों एवं 60 दिनों पर खेतों की मेड़ों पर मिट्टी चढ़ानी चाहिए ।
4. 110 दिनों पर फसल की कटाई की जानी चाहिए।
5. फसल अवशेषों तथा घुन संक्रमित पौधों को नष्ट कर देना चाहिए।
6. भा.कृ.अनु.प. – केंद्रीय कंद फसल अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित फेरोमोन एक ट्रैप प्रति 100 वर्ग मीटर की दर से खेत में लगा देना चाहिए।
7. ट्रैप से घुनों को एकत्रित कर के तथा सावधिक अंतराल पर डिटरजेंट के साथ जल का बदलाव करना चाहिए।
8. कटाई के उपरांत एक पखवाड़े तक फेरोमान ट्रैप का उपयोग जारी रखना चाहिए।

कटाई एवं उपज

110–120 दिनों में पौधे कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। बेलों को हटाकर कंदों को क्षति पहुंचाए बिना, कंदों को खोद कर निकाल लेना चाहिए।

39.बड़ा रतालू (ग्रेटर याम)

वी. दामोदरन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

बड़ा रतालू का उत्पादन गर्म एवं नमी वाले उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्ण स्थितियों में बेहतर होता है और इसे उच्च उत्पादन एवं उत्पादकता के लिए जाना जाता है। इसे जनजातियों में गौण स्टार्च फूड माना जाता है। इसका उपयोग विभिन्न प्रयोजनों, जैसे फ्राइ, चिप्स एवं फ्लेक्स की तैयारी के लिए किया जाता है।

जलवायु एवं मृदा

बड़ा रतालू को उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में व्यापक रूप से उगाया जाता है, जहां मृदा में पर्याप्त नमी एवं अच्छी जल निकासी होती है। इसके लिए अनुकूल तापमान का स्तर 30–35^0 से. है। उच्च तापमान (>40^{0}से.) के साथ सूखे की स्थितियां होने पर इसकी वृद्धि प्रभावित होती है। तथापि, तापमान 20^0 से. से कम होने पर भी वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है। बड़ा रतालू प्रचुर नमी की स्थितियों में बेहतर उत्पादन देता है और इसमें सापेक्ष रूप से सूखे की स्थितियों के प्रति सहिष्णुता होती है। तथापि कंदों की बेहतर वृद्धि और उच्च उपज के लिए अनुकूलतम नमी को पौध वृद्धि के 14वें से लेकर 20वें सप्ताह तक बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। गहरी एवं सूखी बलुई दोमट मृदा जिसका पी.एच स्तर 6–6.5 हो, कंद विकास के लिए उपयुक्त है। भारी मृदाएँ जल भराव की समस्याओं के कारण अनुपयुक्त हैं जिससे कंद का विकास अवरुद्ध तथा कंद सड़ने लगते हैं।

किस्में : सी.ए.आर.आई.–डी.ए–1 (यामिनी), स्थानीय

सी.ए.आर.आई.–डी.ए. 1 (सी.ए.आर.आई. – यामिनी)

पत्ती ह्रदयाकार, डंठल का रंग हरित गुलाबी, कंद का आकार शंक्वाकार, खुरदरा तथा गूदा सफेद होता है तथा नारियल एवं सुपारी बागानों में अंतर्फसल के रूप में उपयुक्त है। इसकी उपज क्षमता 45–50 टन/है. है और यह किस्म एंथ्रेक्नोज़ एवं पत्ती धब्बा रोग के प्रति सहिष्णु तथा द्वीपीय स्थितियों के लिए उपयुक्त है।

खेत की तैयारी

खेत को 3–4 बार जोत कर इसकी तैयारी करनी चाहिए। खेत में 45सेमी x 45सेमी x 45सेमी आमाप के गड्ढों को 1 मीटर x 1 मीटर की दूरी पर खोदा जाना चाहिए और इन गड्ढों में गोबर की खाद 2.0–2.5 कि.ग्रा./गड्ढा या 20–25 टन/है. की दर से ऊपरी मिट्टी के साथ मिलाकर गड्ढ़ों में भरा जाता है, तत्पश्चात् टीले या मेड़ तैयार किए जाते हैं।

प्रवर्धन

आम तौर पर कंदों से प्रवर्धन किया जाता है तथा सामान्य तौर पर कंद को अनेक टुकड़ों में (अग्र भाग, मध्य भाग, निचला भाग) काटा जाता है, जिन्हें सेट्स कहा जाता है। कंद के काटे गए टुकड़ों में निष्क्रिय कली (या) अंकुर होना चाहिए। स्वस्थ पौधा एवं उच्च उपज के लिए कंद का ऊपरी भाग मध्य एवं निचले भाग की तुलना में बेहतर होता है, जब सेट्स के रूप में उनका उपयोग किया जाता है। सेट्स के आकार एवं त्वरित अविर्भाव तथा बड़ीचंदोवा के बीच सकारात्मक सहसंबंध हैं जिसके परिणाम स्वरूप सूखे पदार्थों का उच्च उत्पादन होता है। अनुकूलतम सेट का आमाप 250–300 ग्रा./टुकड़ा/गड्ढा है। एक हैक्टेयर क्षेत्र के लिए 2500–3000 कि.ग्रा. कंदों की आवश्यकता होती है।

कंद की निष्क्रियता

कंदों की निष्क्रियता अवधि 2–3 माह की होती है। रोपण की निर्धारित तिथि से 1–2 दिन पहले कंद को टुकड़ों/सेट्स में काटा जाता है। इससे रोपण से पूर्व काटी गई सतह का उपचार किया जा सकता है। काटी गई सतह पर राख का उपयोग एक सामान्य परंपरागत पद्धति है। काटी गई सतह का कीटनाशकों से भी उपचार किया जा सकता है।

मौसम

बड़ा रतालू उत्पादन में दिन व रात की अवधि महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 12 घंटों से अधिक लंबे दिन बेल की वृद्धि के लिए अनुकूल होते हैं, जबकि छोटे दिन कंद की तैयारी के लिए अनुकूल होते हैं। इस फसल के लिए धूप वांछनीय है और यह छांव नहीं सह सकती है। अत: रोपण कार्य मार्च–अप्रैल में किया जाता है जिससे इस आवश्यकता की पूर्ति होती है।

रोपण

काटे गए कंदों को गाय के गोबर के घोल तथा 0.2% डिथेन एम–45 में डुबोया जाता है, तत्पश्चात् इन्हें छांव में सुखाया जाता है। काटे गए टुकड़ों/सेट्स को टीले के बीचों–बीच 30–40 सें.मी. की गहराई में रोपित किया जाता है।

अंत:सस्य क्रिया

त्वरित अंकुरण तथा बेहतर वृद्धि एवं विकास के लिए रोपण के तुरंत बाद धान के पुआल (या) फसल अवशेष (या) जैविक चारे से मल्चिंग करना लाभदायक है। बड़ा रतालू में अंकुरण 3–4 सप्ताह में होता है तथा पर्याप्त वानस्पतिक वृद्धि के लिए और 8 सप्ताह लगते हैं।

निराई एवं गुड़ाई

निराई एवं गुड़ाई अंत:सस्य क्रिया में अनिवार्य है। बड़ा रतालू, वृद्धि के प्रारंभिक काल में खरपतवारों की प्रतिस्पर्धा के प्रति संवेदनशील है। खरपतवार बड़ा रतालू में हस्तक्षेप करते हैं, जब यह पत्तियों के विकास तथा कंद बनने की अवस्था में होता है। खरपतवारों की वृद्धि को नियंत्रित करने हेतु दो बार निराई पर्याप्त होती है और इससे पादपों की वृद्धि के लिए अनुकूल स्थितियां उपलब्ध होती हैं। पहली निराई 50% अंकुरण के एक सप्ताह बाद तथा दूसरी निराई एक माह के बाद की जानी चाहिए। बढ़ते कंदों को ढकने हेतु गुड़ाई अत्यंत महत्वपूर्ण है जो वर्षा के कारण बाहर निकल आते हैं।

खाद देना

उर्वरकों के अनुप्रयोग पर बड़ा रतालू अच्छी प्रतिक्रिया देता है। रोपण के दौरान बेसल डोज के रूप में 60:60:80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश/है. की दर से डाला जाता है तथा रोपण के 40वें दिन 87 कि.ग्रा. यूरिया/है. की दर से टॉप ड्रैसिंग किया जाना चाहिए।

खूंटी लगाना

मूलत: यह एक बेल फसल है, अत: बेहतर उपज के लिए बेलों को खूंटों से बांधना चाहिए। 3–4 मीटर लंबे तथा 10–15 सें.मी. मोटे बांस के खंबों की सहायता से सहारा दिया जा सकता है ताकि पत्तियां सूर्य के प्रकाश के समक्ष खुली हों और अधिक प्रकाश संश्लेषण हो सके। ऐसे पौधों से सामान्यत: अधिक उपज प्राप्त होती है।

कटाई एवं उपज

बड़ा रतालू रोपण के 8–9 माह बाद कटाई के लिए तैयार हो जाता है, जब बड़े पैमाने पर इसकी पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं तथा परिपक्वता दर्शाते हुए सूखने लगती हैं। कंदों को बिना क्षति पहुंचाए खोद कर निकाला जाता है। इस फसल की कंद उपज 30–35 टन/है. होती है।

रोग

एंथ्रेक्नोज़

एंथ्रेक्नोज़ रोग कवक द्वारा होता है। यह रोग व्यापक है और भारत में उगाई जाने वाली रतालू की प्रजातियों में फैलता है। यह रोग सर्वप्रथम पत्तियों एवं तने पर पिन–शीर्ष जैसे धब्बों के रूप में उभरता है। तने पर धब्बे फैल कर जुड़ जाते हैं और तने को चमकदार काले रंग में बदल देते हैं। पत्ती पर धब्बे भी बढ़ कर जुड़ जाते हैं जिससे पत्तियां सूख कर कुम्हला जाती हैं। यदि तरुण पत्तियाँ संक्रमित होती हैं, तो संपूर्ण पत्तियाँ मुरझा कर मृत हो जाती हैं।

नियंत्रण

फसल अवशेषों को जला देने से, रोग की तीव्रता एवं फैलाव को कम करने में सहायता मिलती है। 10 दिनों के अंतराल पर जिनेब 0.5% का छिड़काव इस रोग के नियंत्रण में प्रभावकारी है।

सर्कोस्पोरा पत्ती धब्बा रोग

यह रोग सर्कोस्पोरा कवक से होता है। यह रोग अच्छे वर्षपात वाले गर्म व नम प्रदेशों में फैलता है। पत्तियों पर गहरे भूरे धब्बे उभरते हैं और रोग बढ़ने पर यह धब्बे बढ़ कर जुड़ जाते हैं।

नियंत्रण

रोग प्रादुर्भाव के पश्चात् 15 दिनों के अंतराल में बेविस्टिन (0.05%) या डाईथेन एम–45 (0.25%) के छिड़काव से इस रोग का नियंत्रण किया जा सकता है।

40.जिमीकंद

वी. दामोदरन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

जिमीकंद या सूरन एक भूमिगत कंद है जो उपज क्षमता और पाक गुणों के कारण लोकप्रिय हो रहा है। उच्च उपज, गैर–तीखेपन वाली किस्मों के प्रवेश के कारण इसे पूरे भारत में व्यावसायिक उत्पादन हेतु अपनाया जा रहा है। यह कार्बोहाइड्रेट और खनिजों जैसे कैल्शियम और फॉस्फोरस से समृद्ध है।

जलवायु और मृदा

जिमीकंद की खेती उष्णकटिबंधीय तथा उपोष्णकटिबंधीय आर्द्र जलवायु में अच्छी तरह होती है, जहां वार्षिक औसत तापमान 30^0–35^0 से. तथा 6–8 माह तक अच्छी तरह वितरित 1000–1500 मि.मी. वर्षपात होता है। इसकी खेती अनेक प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है परन्तु इस फसल के उत्पादन हेतु अच्छी तरह से सूखी बलुई दोमट मिट्टी या बलुई चिकनी दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है जिसका पी.एच.स्तर 5.5 से 7.0 के बीच होता है।

किस्में : गजेन्द्र, श्री पद्मा

प्रवर्धन

जिमीकंद का प्रवर्धन आमतौर पर शाक (ऑफसेट) या घनकंद से होता है। शाक या अंकुर अति सूक्ष्म कंद होते है जो मूल घनकंद से निकलते हैं। कुछ किस्मों/प्रकारों में सूक्ष्म केंद्र उत्पन्न नहीं होते हैं। इनमें मूल घनकंद को लंबवत 500–1000 ग्रा. के टुकड़ों में इस प्रकार काटा जाता है कि प्रत्येक टुकड़े में केंद्रीय कलिका का एक भाग हो जिससे रोपण के पश्चात भावी कली खिल सके। रोपण सामग्री को गाय के गोबर के घोल में डुबाने के पश्चात इन्हें छायादार स्थान पर सुखाया जाए तो अंकुरण को बढ़ाने में प्रभावी होता है।

खेत की तैयारी तथा रोपण

खेत को दो या तीन बार जोत कर तैयार किया जाता है। खेत में 90 सें.मी. x 90 सें.मी. या 75 सें.मी. x 75 सें.मी. की दूरी पर 60सें.मी. x 60 सें.मी. x 45 सें.मी. के गड्ढे खोद कर 4–5 कि.ग्रा. गोबर की खाद डाल कर जमीन के ऊपर की सतही मिट्टी से भर देते हैं। रोपण सामग्री को लम्बवत रखकर मिट्टी से हल्का भर देते हैं। रोपण के लिए मार्च–अप्रैल माह उपयुक्त होते हैं।

पोषण प्रबंधन

रोपण के दौरान कम्पोस्ट/गोबर की खाद (4–5 कि.ग्रा.) डाली जाती है। रोपण के दौरान बुनियादी खुराक के रूप में 87 कि.ग्रा. यूरिया, 300 कि.ग्रा. रॉक फॉस्फेट तथा 83 कि.ग्रा. पोटाशियम म्यूरेट का उपयोग किया जाता है। मिट्टी डालने के बाद छिड़काव के रूप में 87 कि.ग्रा. यूरिया तथा 83 कि.ग्रा. पोटाशियम म्यूरेट का प्रयोग किया जाता है।

अंत:शस्य क्रिया

मल्चिंग

रोपण के तुरन्त बाद, गड्ढों को सूखी पत्तियों से ढक दिया जाता है जिससे नमी का संरक्षण, बेहतर अंकुरण और खरपतवारों का नियंत्रण होता है। इसके लिए धान के पुआल या हरित या सूखी पत्तियों का उपयोग किया जाता है।

निराई

एक या दो बार हाथों से निराई करना आवश्यक है, पहली बार रोपण के 45 दिनों के बाद और दूसरी बार प्रथम निराई के एक माह बाद। उर्वरकों के छिड़काव को अंत:शस्य क्रिया के साथ जोड़ा जा सकता है।

सिंचाई

रोपण के तुरंत बाद प्रथम सिंचाई की जानी चाहिए ताकि अंकुरण समान रूप से हो तत्पश्चात मानसून से पूर्व आवश्यकता के आधार पर सिंचाई की जा सकती है और यह ध्यान रखा जाता है कि खेत में जल का जमाव न हो।

पादप संरक्षण

कॉलर रॉट

यह रोग मुख्यतः जल निकासी की कमी, जल जमाव तथा तने के निचले भाग में यांत्रिक चोट के कारण होता है। सर्वप्रथम प्रभावित क्षेत्र में भूरे रंग के घाव होते हैं जो पूरे छद्दम तने पर फैल जाते है व पौधा पूरी तरह पीला पड़ जाता है।

नियंत्रण

- रोगमुक्त रोपण सामग्री का उपयोग
- खेत की स्वच्छता
- उपयुक्त जल निकासी व्यवस्था का प्रावधान
- नीम की खली का उपयोग
- जैव नियंत्रक जैसे ट्राईकोडर्मा हर्जियानम का उपयोग
- 0.2% केप्टॉन से मिट्टी को गीला करना

कटाई एवं उपज

रोपण के 8–9 माह में फसल कटाई के लिए तैयार हो जाती है। नवम्बर–दिसम्बर माह में फसल की कटाई की जाती है। पत्तियों का पीला होना और नीचे की ओर झुक जाना परिपक्वता का संकेत है। कटाई से पूर्व हल्की सिंचाई की आवश्यकता है। घनकंदों को खोद कर साफ किया जाता है। फिर उनका भंडारण बिना किसी क्षति के महीनों तक अच्छे हवाप्रवाह वाले कमरे में किया जाता है। घनकंद की उपज 40–60 टन/है. होती है।

41.अरबी

वी. दामोदरन

संक्षिप्त परिचय और महत्त्व

अरबी उष्णकटिबन्धीय व उप–उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों की पुरानी कंद फसलों में से बहुत ही महत्त्वपूर्ण कंद फसल है। कंद, पत्तियों व डंठलों को सब्जी के रुप मे उपयोग किया जाता है।

जलवायु व मृदा

अरबी को वृद्धिकाल के दौरान 700–1000 मि.ली. वर्षा, 21^0–27^0 से. औसत तापमान तथा गर्म व नम वातावरण की आवश्यकता होती है। इस फसल का निष्पादन जल निकासयुक्त उपजाऊ दोमट मिट्टी में बेहतर होता है।

किस्में

श्री रश्मि, श्री किरन, श्री पल्लवी व स्थानीय किस्में

रोपण का समय : अप्रैल – मई के दौरान

प्रवर्धन

अरबी का प्रवर्धन वानस्पतिक कतरनों द्वारा होता है। रोपण के लिए स्वस्थ, रोगमुक्त व क्षति रहित समान आकार के बीजों का प्रयोग करें।

खेत की तैयारी

खेत की अच्छी तरह से जुताई करने के पश्चात 45 से 60 सें.मी. माप की मेढ़ व नालियाँ बनाई जाती हैं। घनकंद मेढ़ के एक तरफ 30 से 45 सें.मी. की दूरी पर व 5 से 7.5 सें.मी. की गहराई पर रोपी जाती हैं। एक हैक्टेयर की बुवाई करने के लिए 37,000 बीज कंदों की आवश्यकता होती है जिसकी दर 300 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर है।

मल्चिंग

रोपण के 30–45 दिनों के बाद कंदों में अंकुरण प्रारम्भ होता है। मल्चिंग से त्वरित अंकुरण, खरपतवार नियंत्रण, मृदा तापक्रम का विनियमन व मृदा में नमी बनाए रखने में सहायता मिलती है।

रिक्त स्थानों को भरना

सामान्यत: 5–10% बीज कंद खेत मे अंकुरित नहीं होते हैं। इसलिए नर्सरी में 2000–2500 घनकंद/है. की दर से कम दूरी पर लगाए जाते हैं ताकि नर्सरी में अंकुरित कंद रिक्त स्थान भरने के लिए उपयोगी हो सकें।

पोषक तत्वों का प्रबंधन

अरबी के लिए 174 कि.ग्रा. यूरिया, 300 कि.ग्रा. रॉक फॉसफेट व 100 कि.ग्रा. पोटाशियम म्यूरेट प्रति हैक्टेयर उपयुक्त होता है। रोपण के दौरान 87 कि.ग्रा. यूरिया, 300 कि.ग्रा. रॉक फॉसफेट व 50 कि.ग्रा. पोटाशियम म्यूरेट डाला जाता है, जब कि शेष यूरिया व पोटाशियम म्यूरेट को दो भागों में बांटकर, पहला अंकुरण के 7–10 दिनों के बाद व दूसरा एक महीने बाद दिया जाना चाहिए। फसल में खाद देने के बाद मिट्टी चढ़ाई जाती है।

अन्तःशस्य क्रिया

घनकंद एवं कोरमेल की वृद्धि एवं विकास के लिए उचित अंतराल पर खरपतवारों को निकाला जाना चाहिए। खरपतवार निकालने के बाद मिट्टी चढ़ाई जाती है और इसके साथ साथ बगल की टहनियों की कटाई की जाती है।

पादप संरक्षण

नाशीकीट

एफिड्स, फ्ली बीटल, पत्ती खाने वाली सूंडियां, स्केल कीट और टारो लीफ होपर्स, फसल को क्षति पहुंचाने वाले मुख्य नाशीकीट हैं। इन नाशीकीटों के नियंत्रण के लिए फसल पर क्विनॉलफोस / डाइमिथोएट 0.05% का छिड़काव किया जाना चाहिए। मीली बग व स्केल कीट घनकन्द व कोरमेल को हानि पहुंचाते हैं। इसलिए रोपण के लिए कीटमुक्ति कंदों का प्रयोग करना चाहिए।

रोग

कोलोकेसिया ब्लाइट

इसके मुख्य लक्षण पत्तियों पर गोलाकार या अनियमित बैंगनी या भूरे रंग के घाव होना है। गम्भीर स्थिति में, पूरी पत्ती, फलक व डंठल प्रभावित होते हैं जिससे वे मुरझा जाते हैं तथा पौधे गिर जाते हैं।

टारो ब्लाइट का समेकित रोग प्रबंधन

- खेत में रोग प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग जैसे मुक्ताकेशी
- मानसून से बचने के लिए जल्द रोपण करना
- स्वस्थ रोपण सामग्री का प्रयोग करना
- फफूंदनाशक का छिड़काव जैसे मैंकोजेब (0.2%) या मेटालैक्सिल (0.05)
- बीज कदों को जैव प्रबंधक एजेंट जैसे ट्राइकोडर्मा विरिडे @ 20 ग्रा./ कि.ग्रा. से उपचार

कटाई व उपज

रोपण के 150–180 दिनों में फसल पक जाती है। कटाई के एक महीने पहले सभी अंकुरों को मुख्य तने के चारों ओर लिपटाकर मिट्टी से ढक देना चाहिए और आगे वनस्पतिक वृद्धि रोकने के लिए सिंचाई बंद कर देनी चाहिए। कुदाल या फावड़े से पूरे पौधे को खोद कर घनकन्दों को अलग किया जाता है। खोदाई के दौरान घनकन्दों को नुकसान से बचाना चाहिए। औसत उपज 12–15 टन/हेक्टेयर तक होती है।

42.अंडमान निकोबार द्वीपों में फूलों की फसलों को उगाने के अवसर

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

महत्व एवं फूल की फसलों की सम्भावनाएं

भारत में पुष्पोत्पादन प्राचीन काल से होता रहा है लेकिन हाल के वर्षों में पुष्पात्पादन एक व्यवहार्य रोजगार के रूप में विकसित हुआ है। बदलती जीवनशैली एवं बढ़ते शहरी प्रभाव से वर्तमान शताब्दी में पुष्पोत्पादिन वाणिज्यिक रूप ले चुका है। पिछले 10 वर्षों में वाणिज्यिक फूलों की खेती की सम्भावनाओं में वृद्धि हुई है। प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग एवं उपलब्धता जैसे अनुकूल और विविध जलवायुवीय परिस्थितियों ने इस क्षेत्र को व्यवहार्य कृषि उद्योग बना दिया है। देश में अधिक से अधिक लोग फूलों की वैज्ञानिक खेती से जुड़ रहे हैं। पुष्पोत्पादन में अब फूलों के उपयोग व उत्पादन, सजावटी पौधे, बीज व कंद आदि भी जुड़े हुए हैं। पुष्पोत्पादन के उत्पादों की विविध प्रकृति की समझ के कारण उनके उत्पादन व व्यापार में पूंजी निवेश में वृद्धि हुई है। फूलों का प्रयोग गुलदस्ते बनाने, उपहारों के साथ-साथ घर व कार्य स्थल दोनों की सजावट के लिए किया जाता है। फूलों की वाणिज्यिक खेती की अधिक संभावनाएं हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण कारक जैसे मृदा, जलवायु, मजदूरी, यातायात व बाजार फूलों की वाणिज्यिक खेती की संभावना को तय करते हैं। सभी बड़े शहर बढ़ती जनसंख्या के कारण सीमेंट, कांक्रीट से बने भवनों के जंगल बन गये है। अब लोग विश्राम के लिए पार्क व गार्डन, मन की शान्ति, मनोरंजन के महत्व को समझने लगे हैं। इन सब समस्याओं के लिए जैव सौंदर्यता योजनाएं बहुत जरूरी है जो शहर की योजनाओं के साथ साथ चलती हैं। आधुनिक जीवन में सजावटी पौधे घर के बगीचे में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके हैं। जहाँ तक फूलों के व्यापार का सम्बन्ध है जैसे सजावटी एवं खुले फूल, ये हमारे राज्यों में अच्छी तरह उग रहे है क्योंकि ये सजावटी फूल गुलदस्तों की सजावट के लिए उपयोग किए जाते हैं और आजकल घरों की सजावट का भी जुनून है। जहां तक खुले फूलों का सम्बन्ध है इनकों मुख्य रूप से गजरा, वेणी, पुष्माला व पुष्पगुच्छ बनाने में उपयोग किया जाता है, अत: इन फूलों की मांग खत्म नहीं होती है।

विभिन्न बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए जैसे जैव–सौंदर्य योजना, फूलों का उद्यान, घरों के अंदर की सजावट, सामाजिक कार्य और धार्मिक कार्यों को ध्यान में रखते हुए फूलों के पौधों की मांग दिन–प्रतिदिन बढ़ रही है और इसे पूरा करने के लिए सजावटी या फूल वाले पौधों को उगाने व बढ़ाने की सम्भावनाएं हैं। जहां तक फूलों के व्यापार का संबंध है; विभिन्न प्रकार के फूल जैसे गुलाब, गुलदाउदी, ग्लैडियोलस और रजनीगंधा आदि बाजार में सजावटी के रूप में, जबकि एस्टर, गैलार्डिया, गेंदा, गुलदाउदी, चमेली और नेरियम आदि की खुले फूलों के रूप में बाजार में मांग होती है। भारत में सजावटी पौधों की जैव विविधता घनी एवं समृद्ध है। इसके लिए विभिन्न प्रकार की कृषि जलवायुवीय परिस्थितियां, फूल बनने के दौरान प्रचुर मात्रा में धूप का होना और मध्य पूर्व और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के बाजारों से निकटता इन सजावटी व खुले फूलों की खेती के लिए अवसर प्रदान करते हैं। चीन के बाद, पुष्पोत्पादन के क्षेत्र में भारत दूसरे स्थान पर है। वर्ष 2010–11 के दौरान लगभग 1,91,600 हेक्टेयर क्षेत्र में फूलों की खेती हुई जिसमें खुले फूलों का उत्पादन 10,31,000 मेट्रिक टन और 69,027 लाख सजावटी फूल उगाए गए हैं। 2009–10 के अंत तक भारत से फूलों का कुल निर्यात 294.4 करोड़ रुपये तक पहुंच गया है। मुख्य रूप से सजावटी फूलों के अंतर्गत गुलाब, कार्नेषन, ग्लैडीओलस, ऑर्किड, जरबेरा, लिलिअम और एंथुरियम आते हैं। गुलाब की खेती का प्रतिशत किसी भी अन्य फूलों की खेती से अधिक है। अधिकांश भारतीय गुलाब निर्यात इकाइयों ने उत्पादन के लिए बड़े फूलों वाले किस्मों की पहचान की है। गुलनार और जरबेरा अन्य फूल हैं, भारत में इनके उत्पादन की अच्छी उत्पादन क्षमता है।

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह की भौगोलिक स्थिति, ऊंचाई और जलवायुवीय परिस्थितियों में विविधता के कारण विभिन्न प्रकार के फूलों की खेती के लिए अच्छे अवसर उपलब्ध हैं। उपजाऊ मिट्टी के साथ अनुकूल कृषि–जलवायुवीय परिस्थितियां एवं अच्छी तरह से वितरित वर्षा से उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में फूलों के वर्ष भर उत्पादन को सुनिश्चित होता है। यह द्वीप कई देशी ऑर्किड और अन्य अलंकारिक फूलों के लिए भी स्थानिक है, इसमें पुष्पोत्पादन उत्पादों के मुख्य आपूर्तिकर्ता के रूप में उभरने की अत्यधिक संभावनाएं हैं, विशेष रूप से ऑर्किड्स, एंथूरियम और सजावटी फूल हालांकि, यह क्षमता निजी पहल के अभाव के कारण उपयोग में नहीं लाई गई है। तथापि अंडमान एवं निकोबार समूह के द्वीप कई उष्णकटिबंधीय फूलों जैसे चमेली, रजनीगंधा, गुलदाउदी, क्रॉसआंड्रा, गेंदा, हैलिकोनिया, रेड जिंजर, टार्च जिंजर, बर्ड ऑफ पैराडाइज और ग्लैडीओलस खुली स्थिति में तथा कुछ आधुनिक सजावटी फूल जैसे कि गुलाब, लिलिअम, गुलदाउदी, कार्नेषन और काली लिली को संरक्षित हालत के तहत उगाने के लिए पहचान की गई हैं। इनके सजावटी मूल्य के अलावा, फूलों के ठोस पदार्थ रूप में और इतर तेलों (एसेनशियल ऑयल) के लिए कुछ फूल जैसे चमेली और रजनीगंधा का बहुत अच्छा उपयोग किया जा सकता है। गेंदे की कुछ किस्में प्राकृतिक रंग निकालने के लिए संभावित स्रोत हैं।

इन द्वीपों में आठ महीनों तक मौजूद उच्च आर्द्रता एवं भारी वर्षा की अवधि ऐसे दो कारक हैं जो इस पुष्पत्पादन में बाधक हो सकते हैं। इन बाधाओं के अलावा अधिक लागत मूल्य और मजदूरों का उपलब्ध न होना अन्य मुख्य बाधाएं हो सकती हैं। कुछ परंपरागत फूल जैसे नेरियम, धावनम सीमांत किसानों के लिए उपयुक्त फूलवाली फसलें हैं। सिलोसिया, गोम्फ्रेना दो ऐसी दो मुख्य फूल वाली फसलें हैं जो दूसरे फूलों के साथ परंपरागत रूप से माला बनाने में उपयोग की जाती हैं। इन फूल वाली फसलों की प्राकृतिक रंजकों के लिए रस निकाले जाने की क्षमता के कारण काफी संभावनाएं हैं। वार्षिक फसलें होने के कारण इन दोनों सिलोसिया, गोम्फ्रेना को वर्षा रहित मौसमों में उगाया जा सकता है।

पुष्पोत्पादन की सफलता किसी स्थान विशेष के किए उपयुक्त फसल एवं किस्मों के चुनाव पर निर्भर करती है। अधिक उपज प्राप्ति के लिए गुणवत्ता से समझौता के बिना रोपण के समय को व्यवस्थित कर अधिक आय अर्जित की जा सकती है।

अंडमान एवं निकोबार द्वीपों में पुष्पोत्पादन ऑर्किड्स एवं एंथुरियम की खेती तक ही सीमित नहीं है। इन किस्मों की उत्पादन प्रौद्योगिकियों और उपज की गुणवता की कमी की वजह से अभी तक निर्यात नहीं किया गया है। फिर भी कुछ लोग अपनी इन–हाउस प्रौद्योगिकियों के लिए अभ्यास कर रहे हैं जो निर्यात को रोकता है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के पास कई उष्णकटिबंधीय उत्पादों के निर्यात की संभावनाएं हैं, इस क्षेत्र में श्रीलंका, थाईलैंड, मलेशिया, सिंगापुर और फिलीपींस का आधिपय है। आर्किड्स और एंथुरियम प्रजातियों के अलावा अन्य कई पौध प्रजातियां हैं जिनकी द्वीपों के सभी हिस्सों में वाणिज्यिक रूप से खेती की जा सकती है ताकि फूलों व कटी पत्तियों को निर्यात किया जा सके। लेकिन अभी तक वाणिज्यिक दोहन न के बराबर है। इन क्षेत्रों में पुष्पोत्पादन के विकास के अनेक अवसर मौजूद हैं। अच्छी योजनाबद्ध कार्यनीति से इन क्षेत्रों में पुष्पोत्पादन क्षमता का दोहन किया जाना है। हेलिकोनिया, अल्पाइन स्ट्रैलिट्जिया रीजेंना और एटलिंगेरा एलाटियर जिन्हें टॉर्च जिंजर के रूप में जानते हैं, के विभिन्न प्रकार, आकार और रंग हैं और ये सभी निर्यात बाजार के लिए उष्णकटिबंधीय प्रमुख सजावटी फूल हैं। इन उष्णकटिबंधीय विदेशी पौधों को उगाना आसान है और ऑर्किड और एंथुरीयम की तुलना में इनके उत्पादन तकनीकों, सस्योत्तर प्रबंधन प्रौद्योगिकी और परिवहन के संबंध में कम मांग की जाती हैं।

हेलीकोनिया खुले में जहाँ पानी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो, वहां उगाया जा सकता है। हेलीकोनिया तीन गुना अधिक व्यवहार्य है। इसी प्रकार अल्पाइनिया, टार्च जिंजर और बर्ड आफ पैराडाइज भी अधिक किफायती है। सजावटी और वनस्पतिक पौधे को उगाना भी पुष्पोत्पादन के अंतर्गत आता है और इस द्वीप से अलंकारिक पौधों के निर्यात की अत्यधिक संभावनाएं हैं। अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह की अपनी विशाल आनुवांशिक विविधता और सस्ते मानव संसाधनों को देखते हुए पुष्पोत्पादन के विकास के लिए एक संभावित क्षेत्र के रूप में पहचान की गई है।

आनुवांशिक विविधता व आसान मानव संसाधन फूलों की फसलों की वाणिज्यिक खेती के लिए नए आयामों के विविधीकरण की एक अनूठी संभावना प्रस्तुत करते हैं और स्वदेशी ऑर्किड को इन क्षेत्रों के लिए उच्च निर्यात मूल्य के साथ अद्वितीय फसल के रूप में विकसित किया जा सकता है। शुष्क फूल संबंधित गतिविधियों की अच्छी संभावना है जो कि कई आदिवासी ग्रामीणों को रोजगार प्रदान कर सकती है। अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह फूलों के उत्पादन का परिचालक है। दूसरे फूलों की खेती के उत्पादों के समान सजावटी पौधों पर ध्यान केंद्रित करके, उन फूल के पौधों की उच्च गुणवत्ता मानकों के साथ कटी पत्तियों के निर्यात की भी बहुत अधिक संभावनाएं हैं। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में फूलों के उत्पादन करने के कार्य को जारी रखते हुए इन उष्णकटिबंधीय विदेशी पौधों को उगाने की आवश्यकता है और कटी पत्तियों को उगाने की आवश्यकता भी हमारे राज्य के लिए आने वाले वर्षों में प्रमुख आपूर्तिकर्ता के रूप में उभरने के लिए बेहद जरूरी है।

43.चमेली

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

चमेली, भारत में उगाए जाने वाली फूलों की वाणिज्यिक फसलों में से एक है जिसे पूरे देश में उगाया जाता है। यह ओलियासी फैमिली से संबंधित है। इसकी सराहना इसके सुगन्धित फूल के लिए की जाती है। चमेली के फूलों का प्रयोग ठोस व पूर्ण रूप से प्रसाधन व सुगन्धित उद्योगों में किया जाता है। ताजे फूल अनेक प्रयोजनों के लिए जैसे फूलों की माला एवं स्टिंग्स बनाने, महिलाओं के बाल में गूंथने के लिए एवं धार्मिक चढ़ावा आदि में उपयोग किया जाता है।

जलवायु व मृदा

चमेली की खेती मुख्यत: हल्की उष्णकटिबन्धीय जलवायु में की जाती है। चूंकि चमेली की खेती भारत में वाणिज्यिक फसल के रूप में खुले खेतों में की जाती है, अत: सफल खेती के लिए हल्की सर्दी, गरम ग्रीष्मकाल और औसत वर्षा एवं सूर्य की रोशनी आवश्यक होती है। इसकी खेती के लिए 18–23^0 से. तापमान उपयुक्तं होता है। बगीचे की दोमट मृदाएं उपयुक्त होती हैं।

किस्में

जास्मीनाम मोतिया, सिंगिल/डबल मोगरा, हजारा, डेनथ्रेमली, गुंडुमल्ली, बेला, खोया, रामवानम, मदनाबानम, इर्वाची, कस्तुरीमल्ली, सूजिमल्ली।

रोपण सामग्री

जड़ों वाली कतरनों का रख रखाव नर्सरी में किया जाता है और जब वे पर्याप्त रूप से बड़ी हो जाती है तो उन्हें खेत में रोपित कर दिया जाता है।

रोपण प्रणाली

45 घन सें.मी. आकार के गड्ढे तैयार किए जाते हैं तथा इसमें टॉप सोयल एवं 5 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद भरकर मृदा को अच्छी तरह बैठाने के किये एक सिंचाई की जाती है। पौधों के बीच 1.8 मी.x1.8 मी. की दूरी रखी जाती है। पौधों की किस्म के आधार पर पौधों को सहारा या खूंटे से बांधा जाता है।

सस्यविज्ञानी प्रक्रियाएं

मृत एवं रोगग्रस्त टहनियों सहित पिछले मौसम के सभी टहनियों/ शाखाओं की छंटाई की जाती है। छंटाई के बाद कटे भागों के सिरों पर रोग संक्रमण की रोकथाम के लिए बोर्डयॉक्स घोल (0.1%) का छिड़काव किया जाता है। छंटाई नई वृद्धि को प्रोत्साहित करती है और पुष्पकरण को प्रेरित करती है। जनवरी के तीसरे सप्ताह में छंटाई करें।

खाद व उर्वरक

प्रत्येक पौधे को उर्वरकों 120 ग्रा. नाइट्रोजन, 240 ग्रा. फास्फोरस पेंटाक्साइड एवं 240 ग्रा. पोटाशियम ऑक्साइड की आवश्यकता होती है। उर्वरकों को एक साथ मिलाकर दो भागों जनवरी व जुलाई में देते हैं। इसे पूरक खाद के रूप में जैविक खाद/खली 100 ग्रा./पौध/माह की दर से दिया जाता है।

तुड़ाई

पूर्ण रूप से विकसित एवं बिन खिली कलियों को तोड़ा जाता है। रोपण के तीन वर्ष बाद आर्थिक उपज ली जा सकती है। लगभग 10,000 फूल प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर लिए जा सकते हैं।

श्रेणीकरण

फूलों के दलपुंज ट्यूब की लम्बाई, कली का आमाप, आकार, बनावट एवं ताजेपन के आधार पर श्रेणीकरण किया जाता है।

पैकिंग

सूराखों वाले कोरूगेटेड कार्डबोर्ड बक्सों का प्रयोग किया जाता है।

पादप सरंक्षण

बड वर्म : रेशमी धागों एवं बोरहोल वेबिंग्स वाली कली के वेबिंग्स में मलमूत्र बडवर्म संक्रमण के विशिष्ट लक्षण हैं। बडवर्म फूलों के रंगों को संक्रमित करता है और कली गुलाबी रंग में बदल जाती है।

नियंत्रण : कार्बोफ्युरान (40 ग्रा./पौधा) को बेसल मात्रा के रूप में एवं इमिडाक्लोरपिड 2 मि.ग्रा. के पर्णीय छिड़काव से नियंत्रित किया जा सकता है।

लीफ वेब वर्म : डमिडक्लोरोपिड 2 ग्रा./ली. या 1.5 ली./500 ली. पानी/हे. से छिड़काव करें।

अल्टरनेरिया लीफ ब्लाइट : 0.1% कार्बेंडांज़िम का छिड़काव करें।

सर्कोस्पोरा लीफ स्पॉट : मई से छंटाई तक 0.1% बेनोमिल का छिड़काव हर माह करें।

फ्यूज़ेरियम विल्ट : पौधे वृद्धि की सभी अवस्थाओं में संक्रमित होते हैं। प्राथमिक लक्षणों में निचली पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और पीलापन ऊपर की ओर बढ़ता है और अंत में पौधे मर जाते हैं। जड़ें काली हो जाती हैं। रोगग्रस्त पौधों को हटाकर जला देना चाहिए और कार्बेंडांज़िम 0.1% से मृदा में ड्रेंचिंग कर इसे नियंत्रित किया जा सकता है।

44.जरबेरा

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

जरबेरा विश्व के 10 प्रमुख फूलों में से एक फूल है जिसकी अंतराष्ट्रीय फूल बाजार में बहुत मांग है। यह एक महत्वपूर्ण वाणिज्यिक फूल है जिसे पूरे विश्व में विभिन्न जलवायुवीय स्थितियों में उगाया जाता है। यह फूल क्यारियों, सीमान्त क्षेत्रों, गमलों और रॉक गार्डनों में उगाने के लिए उपयुक्त है। इसके फूल विभिन्न रंगों, आकारों के होते हैं और अनेक प्रकार के फूलों की सजावट में अपनी सुन्दरता बिखेरते हैं। कर्तित फूलों को पानी में रखने पर लम्बे समय तक ताजे बने रहते हैं। पौधे तने रहित, कोमल बारहमासी शाकीय और पत्तियां मूल पर थालीनुमा रूप से व्यवस्थित रहती हैं। फूलों के सिरे विशेष एवं अनेक फूलों में एक या दो पंक्तियों में विशिष्ट चमकदार फ्लोरेट्स होते हैं।

किस्में

गोलिएथ, सल्वाडोर, दाना इलेन, विंटर क्वीन, पाल्म बीच, थल्लासा, तारा, सन सेट, ओरनेलो, डायब्लो, संगरिया, सवन्ना, रूबी रेड, आस्कर, डलमा, सन गोल्ड, पिंक एलिगेंस, रोजलाइन एवं ट्विग्गी।

जलवायु व मृदा

जेरबेरा खुली स्थितियों में उगाया जा सकता है लेकिन इसे आंशिक छाया की आवश्यकता होती है, अत: 50% छाया वाले क्षेत्र में इसकी खेती उपयुक्त होती है। निर्यात के गुणवत्ता मापदंडों की पूर्ति के लिए कम कीमत लागत वाले पॉलीहाउस में इसकी खेती लोकप्रिय हो रही है। इसकी खेती के लिए अनुकूलतम दिन का तापमान 22–25^0 से. और रात का तापमान 20–22^0 से. तथा आर्द्रता 70–75% है। जेरबेरा की खेती के लिए अच्छी जल निकास वाली बलुई दोमट मृदा उपयुक्त होती है। प्रयोग से पहले मृदा का निरोगीकरण करना चाहिए और पी.एच. 5.5 से 6. 5 तक उपयुक्त होती है। मृदा की 45 से.मी. गहराई तक जोताई करनी चाहिए।

प्रवर्धन

अंकुर (सकर) या ऊतक संवर्धित पौधों का उपयोग किया जाता है।

क्यारियों की तैयारी

ऊंची क्यारियों (45 सें.मी.ऊंची एवं 1 मी. चौड़ी) की तैयारी करनी चाहिए और उसमें गोबर की खाद, बालू व नारियल पीट (2:1:1) अनुपात में मिश्रण बनाकर क्यारियों में डालना चाहिए। बेहतर जलनिकासी के लिए क्यारियों के तल पर बजरी बिछानी चाहिए।

मृदा का रोगाणुनाशन

रोपण से पूर्व, क्यारियों का 2% फॉर्मलडीहाईड (100 मि.ली. फॉर्मालीन/5 ली. पानी/वर्ग मी.) घोल से ड्रेंचिंग करना चाहिए और इन्हें प्लास्टिक मल्च फिल्म से 2–3 दिनों तक ढक देना चाहिए जिसके बाद रोपण से पूर्व क्यारियों में भरपूर जल देना चाहिए ताकि रसायन बाहर निकल जाएं।

रोपण

पौधों के बीच 30x35 सें.मी. (3 पंक्ति/क्यारी) की दूरी बना कर लगभग 7 पौधे/वर्गमीटर रोपित किये जा सकते हैं। पौधों को अधिक गहराई में रोपित करें तथा सावधानी बरतें कि क्राउन भूमि के ठीक ऊपर हो। रोपण के पश्चात, पौधों को सूखने से बचाने के लिए 4–6 सप्ताह तक 80% आर्द्रता बनाए रखनी चाहिए।

सिंचाई प्रबन्धन

रोपण के तुरन्त बाद पर्याप्त मात्रा में सिंचाई करना तत्पश्चात् नियमित रूप से ड्रिप सिंचाई वांछनीय है। फसल की अवस्था और मौसम की दशा के आधार पर औसतन जल की आवश्यकता 500–700 मि.ली./दिन/पौधा होती है।

खाद व उर्वरक

खेत की तैयारी के दौरान गोबर की खाद 7.5कि.ग्रा./वर्गमीटर देने के साथ-साथ बेसल खुराक के रूप में नाइट्रोजन की आधी मात्रा, फास्फोरस एवं पोटाशियम की पूरी मात्रा डाली जानी चाहिए। रोपण के तीन महीने बाद नाइट्रोजन का शेष भाग टॉप ड्रेसिंग के रूप में डालना चाहिए। जेरबेरा के लिए आवश्यक पोषक तत्वों एन पी के की उचित मात्रा 20:40:20 ग्रा./वर्गमीटर है।

वृद्धि विनियामक

जेरबेरा के गुणात्मक उत्पादन में वृद्धि विनियामक महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। वृद्धि विनियामक जैसे जीए-3 का पर्णीय छिड़काव (10–100 पी.पी.एम.) जेरबेरा में शीघ्र पुष्पण करने में बेहतर पाया गया। पहली ऋतु के दौरान जी.ए-3 का पर्णीय छिड़काव 10–100 पी.पी.एम. की दर से तथा दूसरी ऋतु में 100–200 पी.पी.एम. की दर से छिड़काव करने से फूलों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई। क्लोर्मेकेट का 500 पी.पी.एम. की दर से छिड़काव करने पर दोनों ऋतुओं में फूलों की संख्या में वृद्धि करने में प्रभावी पाया गया।

रोग एवं नाशीजीव

एफिड, सफेद मक्खी, थ्रिप्स एवं लीफ माइनर सामान्य नाशीजीव हैं। एफिड को नियंत्रित करने के लिए पोंगामिया या नीम का तेल 10 मि.ली./ली. की दर से संक्रमण की प्रारंभिक अवस्था में छिड़काव करना चाहिए। यह नाशीजीव के गुणन को रोकता है। सफेद मक्खी को नियंत्रित करने की लिए एसीफेट (75 एस.पी.) का 1.5 ग्रा./ली. से छिड़काव करना चाहिए, तत्पश्चात 15 दिनों के अंतराल पर पोंगामिया या नीम का तेल 10 मि.ली./ली. की दर से छिड़काव करने से निम्फ को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है। लीफ माइनर को नियंत्रित करने के किए माइन से प्रभावित पत्तियों को हटाकर जला देना चाहिए। स्टिकी ट्रैप लगाकर और डेल्टामेथरिन (2.8 ई.सी.) 1 मि.ली./ली. की दर से छिड़काव से वयस्क नाशीजीवों की संख्या को कम किया जा सकता है। डाईमिथोएट (30 ई.सी.) 3 मि.ली./ली. की दर से 15 दिनों के अंतराल के बाद छिड़काव करने से थ्रिप्स का नियन्त्रण किया जा सकता है।

मुरझान रोग *एयूज़ेरियम* कवक, से होता है। रोपण सामग्री को रोपण से पूर्व रसायन से उपचार या सौरीकरण करना चाहिए। रोग प्रबंधन के लिए उबटन या मृदा के उपचार जैसे बेनजीमेडाजोल (कार्बेंडाज़िम, बेनलेट 0.2%) को कैपटैप (0.2%) के साथ मिलाकर मृदा पर छिड़काव किया जा सकता है। रोगमुक्त जड़युक्त अंकुरों का रोपण रोग प्रबंधन में महत्वपूर्ण कदम है। आयरन, मैग्निशियम, मैगनीज आदि की कमी आम होती है। नियमित अंतराल पर सूक्ष्म पोषक तत्वों का छिड़काव करना आवश्यक है।

कटाई, उपज एवं सस्योत्तर प्रबन्धन

रोपण के 7–9 सप्ताहों के बाद फूल लगने की आशा की जाती है। संरक्षित व्यवस्था के अंतर्गत, औसतन उपज 200 फूल/पौधे/वर्ष प्राप्त होती है। पौधे लगभग 2–3 वर्षों तक आर्थिक उपज देते हैं। जब 2–3 पंक्तियों के फूल पूर्णरूप से विकसित हो जातें हैं तब उन्हें तोड़ लेना चाहिए। कटाई के तुरंत बाद तने को मूल से 2–3 सें.मी. ऊपर से काट कर साफ पानी में डुबो देना चाहिए। जेरबेरा फूलों को 40^0 से. पर अल्प अवधि के लिए संग्रहित किया जा सकता है। फूलों को कार्ड बोर्ड के बक्सों में पैक किया जाता है, अधिक फूलों को समायोजित करने के लिए फूल के गुच्छों को बक्सों में विपरीत दिशा में रखा जाता है।

45.गुलाब

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

विश्व भर के सभी उद्यानी पुष्पों में गुलाब को सबसे अच्छी तरह जाना जाता है और यह सबसे अधिक लोकप्रिय फूल हैं। पिछले तीन दशकों के दौरान इस फसल की खेती में रूचि काफी अधिक बढ़ गई है और वाणिज्यिक तौर पर अंतर्राष्ट्रीय बाजार में इसे पहला स्थान प्राप्त है। सुंदर रूप, अलग–अलग आकारों, मनमोहक रंगों और अत्यंत लुभावनी खुशबू ने भिन्न–भिन्न प्रकार के इन सुंदर फूलों को विभिन्न उपयोगों के लिए महत्वपूर्ण बना दिया है। व्यापक स्तर पर पौधरोपण के लिए जिन अलग–अलग तरीकों से गुलाब का उपयोग किया जा सकता है वे हैं – झाड़ियाँ, बेल, बाड़ा, सीमा पर तथा गमलों के पौधे, झूलते बास्केट, कर्तित (कट) फूल, इत्र एवं संबद्धित उत्पाद।

किस्में

गुलाब रोजेसी परिवार से हैं जिसकी अनेक कोमल और खेती योग्य प्रजातियाँ हैं। चाइनीज और यूरोपियन देशों से प्राप्त आधुनिक गुलाव वाणिज्यिक रूप से महत्व पूर्ण किस्में निम्नलिखित हैं।

1. हाइब्रिड टी (एचटी) गुलाब : चाइनीज और यूरोपियन गुलाबों के बीच संकरण करके ये गुलाब तैयार किए गए हैं जिन पर काफी बड़े फूल (4 से०मी० व्यास से अधिक) और लम्बे डंठल (12 से०मी० से अधिक) होते हैं। एचटी गुलाब की किस्मों में प्रति वर्ग मीटर 150 से 200 फूल होते हैं। एचटी गुलाबों की लोकप्रिय वाणिज्यिक प्रजातियां :–

सोनिया	विवाल्डी	तिनेका	आल्समीर गोल्डी
मेलोडी	बक्कारट	पलडेन	रेड सक्सेस
वेरोयका	नॉबलेस	फेलाइन	केप्री

2. फ्लोरीबंडा गुलाब : इस गुलाब में छोटे आकार (2.5 से० मी से भी कम) और छोटे डंठलों (50 से० मी० से कम) वाले फूल होते हैं। फ्लोरीबंडास गुलाब के उदाहरण हैं :

फ्रिस्को	मर्सिडीज	जगुआर	फ्लोरेंस
मौंट्रिया	कैरोल	गोल्डर्न टाइम्सक	जैक फ्रॉस्ट
इवरगोल्डस	कैरोनेट	रेड गारनेटी	कैरोना

3. स्प्रे गुलाब : इसके फूल छोटे एवं गुच्छों में होते हैं और एक गुच्छे में 5 से 6 फूलों होते हैं :

उदाहरण : एवेली, जॉय, निकिता

जलवायु एवं मृदा

गुलाब के पौधे को प्रचुर धूप, आर्द्रता और 15^0 से. से लेकर 28^0 से. तक के मध्यम तापमान की जरूरत होती है। प्रचुर हवा के साथ–साथ ठंडी शुष्क जलवायु आवश्यक है। रात का तापमान 15 से 18^0 से. के बीच होना चाहिए और दिन का तापमान 30^0 से. से अधिक नहीं होना चाहिए। सूखी हुई बलुई दोमट मिट्टी गुलाब के लिए उपयुक्त है। 6 से 6.5 पीएच की जरूरत होती है।

प्रवर्धन

कटिंग, लेयरिंग, बडिंग और ग्राफ्टिंग जैसी वनस्पतिक विधियों से गुलाबों का प्रवर्धन किया जा सकता है।

रोपण प्रणाली

1.2 मीटर चौड़ी ऊँची क्यारियों में गुलाब की झाडियों को रोपा जाता है। 30 से.मी. की दूरी रखते हुए पौधों की दो कतारें बनाई जाती हैं जिनमें प्रति हेक्टेयर 65000 पौधे लगते हैं। 18 माह पुरानी झाड़ियों को सितंबर माह में रोपा जाता है। इन झाड़ियों की जीवन अवधि 7 वर्ष की होती है। दो डंठलों वाली स्वस्थ झाड़ियों को लें और उन्हें पौधरोपण से पूर्व कैपटेन (प्रति ली./2 ग्रा.) से धो लें। झाड़ियों को स्टेक से सहारा दिया जाता है और साथ ही अतिरिक्त सहारे के लिए जीआई वायर की समानांतर लाइन इसमें बांध दी जाती है।

सिंचाई प्रबंधन

पौधा घर में गुलाब के पौधों में ड्रिप सिंचाई प्रणाली के माध्यम से सिंचाई की जाती है। पौधों के बढ़ने और पुष्पण के सभी स्तरों पर पर्याप्त मृदा नमी गुलाब के पौधे के लिए अनिवार्य है। जल जमाव पौधों के लिए नुकसानदायी होता है इसलिए

अत्यधिक सिंचाई न की जाए। आमतौर पर शीतकाल में सप्ताह में एक बार और गर्मी के मौसम में दो बार जल देने की सलाह दी जाती है।

खाद और उर्वरक

गुलाब के पौधों के विकास और पुष्पण के लिए प्रति पौधा 8–10 कि.ग्रा. गोबर की खाद या किसी भी जैविक खाद का प्रयोग उपयोगी होता है। उपयोग किए जाने वाले उर्वरक की मात्रा यूरिया – प्रति वर्ष प्रति हैक्टेयर 400 कि.ग्रा., डाइअमोनियम फास्फेट – प्रति वर्ष प्रति हैक्टेयर 300 कि.ग्रा., म्यूरेट आफ पोटाश प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर 300 कि.ग्रा., और सूक्ष्म पोषक तत्व – प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर 100 कि.ग्रा.। उर्वरकों को तीन किस्तों में प्रयोग करें। पौधरोपण के 15 दिन बाद पहली खुराक डाली जाती है और दूसरी खुराक फूलों की पहली कटाई के बाद तथा तीसरी खुराक दूसरी बार कटाई के बाद दी जाती है।

छंटाई

सामान्यत: मजबूत और पुष्ट पौधों में, मध्यम रूप से विकसित पौधों की हल्की छंटाई तथा कमजोर पौधों की छंटाई अपेक्षाकृत कठोरता से करने की सलाह दी जाती है। लंबी डंठलों वाले फूलों को प्राप्त करने के लिए कठोर छंटाई की सलाह दी जाती है। यदि मृदा बलुई है और पोषण स्तर कम है तो हल्की छंटाई की जानी चाहिए। साल में दो बार छंटाई की जानी चाहिए, पहली बार नवंबर में और दूसरी बार जून में। नवंबर में छंटाई करने से जनवरी/फरवरी के दौरान फूल लगते हैं। जबकि जून में छंटाई करने से अगस्त से अक्टूबर में फूल उगते हैं। छंटाई के दौरान प्रत्येक में 4 से 6 पोरों वाले केवल 3 से 4 स्वस्थ शाखाओं को छोड़ते हुए सभी मृत और संक्रमित शाखाओं को हटा दिया जाना चाहिए। उस कली के ऊपर जो कि बाहर की ओर उग रहे हैं, एक तिरछा सा कट लगा दिया जाना चाहिए। इससे ओपन सेंटर वाली झाड़ी तैयार हो जाती है। छंटाई के बाद फूल की कटी हुई सतह पर इमिडाक्लोरोपिड (0.15:) के साथ मिक्स किया हुआ बलाईटाक्स पेस्ट की परत चढ़ा दी जानी चाहिए। आमतौर पर छंटाई के 45 दिन बाद फूल लगने शुरू हो जाते हैं।

जोताई

मृदा को सुराखदार बनाए रखने के लिए हल्की जोताई अत्यंत कारगर होती है। इससे रोशनी, हवा और जल जड़ों तक बेहतर ढंग से पहुंच सकते हैं और नमी को बरकरार रखने की क्षमता बढ़ जाती है तथा गुलाब की क्यारियों को खर–पतवार से मुक्त रखा जाता है। हल्की जोताई को तरजीह दी जाती है क्योंकि गहरी जुताई से रूटलेटों को नुकसान पहुंचता है।

पौध संरक्षण

नाशीजीव

एफिड : टहनियों, फूल की कलियों, पत्तियों के नाजुक हिस्सों पर शिशु कीट और वयस्कों का समूह पाया जाता है जो कि कोशिका रस को चूसकर अपना पोषण करते हैं। इसके परिणामस्वरूप टहनियां मुरझा जाती हैं। कलियां समय से पूर्व गिर जाती हैं और फूल मुरझाने लगते हैं। 2 मि.ली/ ली० की दर से डाइमिथोएट का छिड़काव करके एफिड पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

थ्रिप्स : वयस्क और शिशुकीट दोनों उत्तकों को छीलकर और रस को चूसकर अपना भोजन प्राप्त करते हैं जो कि संक्रमण स्थल से बाहर निकलता रहता है। प्रभावित पत्तियों में भूरे धब्बे दिखते हैं और ये तुड़े–मुड़े हो जाते हैं और अंतत: मुरझाकर नीचे गिर जाते हैं। गंभीर संक्रमण की स्थिति में फूलों की कलियां समय से पूर्व झड़ जाती हैं और पंखुडियों पर भूरे धब्बे दिखने लगते हैं। प्रति लीटर जल में 5 मि.ली. की दर से डाइमेथोएट का छिड़काव करके थ्रिप्स पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

माइट्स : ये पत्तियों की भीतरी सतह को खाते हैं और रेशमी जालों से ढके होते हैं। पत्तियों को खाए जाने से उपरी सतह पर पीले धब्बे उभर आते हैं जो कि धीरे–धीरे लाल हो जाते हैं। प्रभावित पत्तियां अंतत: मुरझा जाती हैं। पौधों के विकास और फूल लगने की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। माइटों को नियंत्रित करने के लिए प्रति हेक्टेयर 20–25 कि.ग्रा. की दर से सल्फर की डस्टिंग करें।

दीमक : ये नए एवं पुराने पौधों की जड़ों को खाते हैं। संक्रमित पौधे मुरझाकर सूख जाते हैं और अंतत: मर जाते हैं। दीमक को नियंत्रित करने के लिए मिट्टी में प्रति हेक्टेयर 20–25 कि.ग्रा. की दर से 5 प्रतिशत एल्ड्रिन को पूरी तरह मिलाएं।

रोग

पाउडरी मिल्ड्यू : इस रोग में नई पत्तियों पर हल्के से उभरे ब्लिस्टर जैसे स्थान नजर आने लगते हैं। वे आपस में मिलकर बढ़ती हुई टहनियों के पूरे टर्मिनल हिस्से को ढक लेते हैं जिससे इनका ऊपरी हिस्सा मुड़ जाता है या ढक जाता है या कभी–कभी कलियाँ भी इनसे प्रभावित हो सकती हैं और उनके खुलने से पूर्व ही सफेद मिल्ड्यू इन्हें ढ़क लेते हैं। रोगग्रस्त कली सही ढंग से खुल नहीं पाती हैं। यह संक्रमण फूल के पूरे हिस्से में फैल जाता है और वे रंगविहीन, छोटे रहकर सूख

जाते हैं। रोगयुक्त और गिरी हुई पत्तियों को एकत्र करके जला दिया जाना चाहिए। 10 दिनों के अंतराल पर वेटेबल सल्फर 3 प्रतिशत या केराथेन 0.7 प्रतिशत का चार बार छिड़काव इस रोग को प्रभावी रूप से नियंत्रित कर सकता है।

डाई बैक : टहनी का कटा हुआ हिस्सा शीर्ष से लेकर नीचे की ओर सूखता जाता है। टहनियां भूरी से गहरी भूरी या काली हो जाती हैं। यह रोग शाखा की टहनियों से फैलता हुआ मुख्यत: तने तक और फिर वहां से जड़ों तक पहुंच जाता है, जिससे पूरा पौधा मर जाता है। तने और जड़ों के आंतरिक ऊतक भूरे पड़ने लगते हैं।

ब्लैक स्पॉट : पत्तियों पर काले धब्बे दिखना इस रोग के लक्षण हैं। ये धब्बे कम या ज्यादा वृत्ताकार होते हैं। पत्तियों और लीफ बडों, जो कि मौसम में देर से खुलती हैं, के नीचे मौजूद माइसिलियम की विकिरणकारी स्ट्रैंडों की वजह से उनमें अनियमिताकार फाइब्रोलोस बॉडर होते हैं। फूल अच्छी तरह नहीं खिलते हैं। रोगयुक्त डंठलों को सावधानीपूर्वक छांटकर जला दिया जाना चाहिए। पौधे के अंकुरण से लेकर नए पर्णसमूह निकलने तक साप्ताहिक अंतराल पर छिड़काव करें और इसे आर्द्र मौसम में जारी रखें। यह छिड़काव इस रोग को नियंत्रित रखता है। छांव और अत्यधिक सिंचाई से बचना चाहिए।

लीफ स्पॉट : पत्तियों के मार्जिन पर वृत्ताकार, स्पष्ट भूरे धब्बे छितरे हुए दिखते हैं। ये धब्बे छोटी–छोटी चित्तियों से बढ़कर 1.0 से.मी. तक के बड़े धब्बों में बदल जाते हैं। इस रोग के प्रबंधन के लिए रोगग्रस्त और गिरी हुई पत्तियों को एकत्र करके जला दिया जाना चाहिए। लाइम सल्फर या बोर्डऑक्स मिक्सचर 0.8 प्रतिशत का छिड़काव करके इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

बॉट्राइटिस ब्लाइट : काली–भूरी चित्तियों के रूप में सेपलों से यह संक्रमण शुरू होता है जो कि थोड़े ही समय में फूल को ढक लेता है। कलियां भूरी होकर सड़ जाती हैं। कभी–कभी आंशिक संक्रमण होने पर अलग–अलग पेटल भूरे होकर मुरझा जाते हैं। पुराने फूलों और अत्यधिक मुरझाई डंठलों को तोड़कर नष्ट कर देने से इस रोग को दूर करने में मदद मिलती है। अत्यधिक सिंचाई करके इस रोग को दूर रखा जा सकता है। कैपटेन 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करके इस रोग को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया जा सकता है।

कटाई, उपज एवं सस्योत्तर प्रबंधन

छंटाई के बाद 45वें से 69वें दिन में कटाई शुरू कर दें। सुबह–सवेरे कटाई की जाती है। प्रारंभिक पेटलयुक्त कली पूरी तरह निकल आने और अलग–अलग रंग का दिखना ही कटाई का उचित समय है। कटाई के लिए लंबी हैंडल वाली कैंची का प्रयोग करें। प्रजाति के लिए निर्धारित मानक लंबाई के अनुसार डंठल को काटें। कटिंग के तुरंत बाद कटे हुए हिस्से को 500 पीपीएम साइट्रिक एसिड के स्वच्छ विलयन वाले बर्तन में डूबो दें। किस्म और अन्य विभिन्न घटकों अर्थात पौधे की सघनता, पुष्पण की अवधि, छंटाई, उर्वरण तथा समय–समय पर अपनाई गई अन्य सस्य प्रक्रियाओं के आधार पर फूलों की उपज में भिन्नता पायी जाती है। सामान्यत: खुले खेतों में प्रति वर्ग मी. से लगभग 13.5 लंबे डंठलयुक्त फूल की उपज प्राप्त होती है।

ग्रेडिंग, पैकिंग और स्टोरेज

16^0 से. 18^0 से. तापमान वाले एक विशेष कक्ष में फलों की ग्रेडिंग की जाती है। ग्रेडिंग टेबल पर फूलों की छंटनी की जाती है और सामान्य गुणवत्ता मानकों के अनुसार उन्हें श्रेणीकृत किया जाता है।

विशेष श्रेणी : जो उत्पााद बगैर किसी बाधा के श्रेणी के लिए क्वालीफाई कर जाते हैं।

श्रेणी–I : फूल में प्रजाति के लक्षण दिखने चाहिए और ये पूरी तरह ताजे, कीटनाशकों और जीवनाशी अपशिष्टों से मुक्त हों। यहां 7 प्रतिशत विकारों की अनुमति दी गई है।

लंबाई के अनुसार ग्रेडिंग

कोड	: डंठल की लंबाई
0	: <5
5	: 5-10
10	: 10-15
15	: 15-20
20	: 20-30
30	: 30-40
40	: 40-50
50	: 50-60
60	: 60-80

80 : 80-100

100 : 100-120

120 : 120>

100 से.मी. x 40 से.मी. x 8 से.मी. आकार के एक कोरगेटेड बॉक्स की जरूरत होती है। फूल के शीर्ष को कोरगेटेड शीट के रोल से कवर कर दिया जाता है। प्रत्येक बॉक्स में 65 से 70 से.मी. लंबी डंठल वाले 80 गुलाब रखे जा सकते हैं। बॉक्स के भीतरी हिस्से में पतले पॉलिथिन शीट का अस्तर हो और महीन मॉइस्ट टिसू पेपर की कतरन हो। 20–20 फूलों के सेट में फूल का बंडल बनाकर उसे धागे या रबरबैंड से बांध देना चाहिए। रेफ्रिजेरेटेड वैन में 5^0 से. तापमान पर फूलों की ढुलाई की जानी चाहिए। जरूरत पड़ने पर फूलों को 2^0 से. तापमान पर 4–5 दिनों तक स्टोर किया जा सकता है।

46.कनेर

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

एपोसाइनेसी परिवार का सदस्य *नीरियम ओलिएंडर* 2–5 मीटर ऊंचा एक सदाबहार वृक्ष है जो विभिन्न भौगोलिक एवं परिस्थितियों में पाया जाता है। पत्तियां 5 से 20 से.मी. लंबी, नुकीली, छोटे वृंत्तोंवाली पतली तथा गहरे हरे ब्लेड वाली होती हैं। टर्मिनल क्लस्टर में लगभग 5 से.मी. के दायरे में पांच पंखुडियों वाले फूल लगते हैं और ये विभिन्न रंगों के होते हैं अर्थात् लिलेक, सालमॉन, कैरमाइन, गहरी से लेकर हल्की गुलाबी, पर्पल, कॉपर, एप्रिकॉट, ऑरेंज, सफेद और पीला। *नीरियम ओलिएंडर* को उसके प्रचुर पुष्पण के कारण उष्णकटिबंधीय, उपोष्ण और शीतोष्ण क्षेत्रों में साज–सज्जावाले पौधे के रूप में बड़े पैमाने पर उगाया जाता है। इसके फूल अपनी संतुलित कठोरता के साथ लंबे समय तक टिके रहते हैं। स्क्रीनों, राजमार्ग के किनारों पर हेजिंग और समुद्र तटों पर पौधरोपण के लिए इसका उपयोग किया जाता है। केवल कुछ एक टहनियों को छोड़ देने मात्र से यह अपने आपको आकर्षक छोटे वृक्ष का रूप दे पाने में सक्षम है। उत्तरी क्षेत्रों में इसे इंडोर या आंगन में लगाने वाले पौधे के रूप में उगाया जाता है। इन सबके अलावा, एंटीबैक्टिरियल, एंटीमाइक्रोबियल, एंटीइनफ्लेमेटरी और एंटीट्यूमर गतिविधियों में भी इस पौधे का उपयोग किया जाता है।

मांग वाले किस्में

सिंगल रोज, सिंगल व्हाइट, सिंगल रेड, डबल टाइप।

जलवायु एवं मृदा

इसके पेड़ आंशिक छांव या खुली धूप में उगते हैं। सूखे तथा खारेपन को यह भली–भांति झेल सकता है। पर्याप्त जल निकासी वाली रेड लैटेराइट या दोमट मिट्टी कनेर की खेती के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है।

प्रवर्धन

60 से.मी. लंबी कठोर और कम कठोर कतरनों का उपयोग किया जाता है। एक आर्क बनाते हुए कटिंग के दोनों छोरों को मिट्टी के अंदर दबा दिया जाता है। जड़ पकड़ते समय बीचों–बीच एक साधारण कट लगाया जाता है और कटे हुए जड़ युक्ति हिस्से को जड़ प्रणाली से सावधानीपूर्वक मुख्य खेत में रोपा जाता है। एयर लेयरिंग भी कनेर में एक सफल प्रवर्धन विधि है।

रोपण प्रणाली

पौधे 2 मी. x 2 मी. की दूरी पर पौधे लगाए जाते हैं। 30 से.मी. x 30 से.मी. x 30 से.मी. आकार के गड्ढे तैयार किए जाते हैं और इन गड्ढों में 10 कि.ग्रा. गोबर की खाद, लाल मिट्टी और टॉप सॉयल भर दिया जाता है।

सिंचाई प्रबंधन

मिट्टी में नमी के आधार पर आवश्यकतानुसार पौधों की सिंचाई की जाती है।

खाद और उर्वरक

आमतौर पर किसी भी रसायनिक उर्वरक का प्रयोग नहीं किया जाता है। तथापि जनवरी के दौरान और फिर अगस्त के दौरान प्रति हैक्टेयर 10 टन गोबर की खाद डालने की सलाह दी जाती है।

कटाई एवं उपज

वर्षभर फूल लगते हैं किंतु अप्रैल–अगस्त के दौरान सबसे अधिक फूल लगते हैं। पौधरोपण के 4 महीने बाद से ही पौधे में फूल लगना शुरू हो जाते हैं और हर तीसरे दिन में नियमित रूप से कटाई की जा सकती है। फूलों की औसत उपज प्रति हेक्टेयर प्रति दिन 100–120 कि.ग्रा. होती है।

47.सॉलिडैगो

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

सॉलिडैगो को आमतौर पर गोल्डन रॉड के रूप में जाना जाता है। गोल्डन रॉड मूल रूप से उत्तरी अमेरिका का फूल है। इन्हें क्यारियों, रॉक गार्डन में उगाया जाता है और इसमें एक वर्ष में कई महीनों तक पीले फूलों के बड़े–बड़े पुष्प गुच्छे लगते रहते हैं, जो कि अत्यंत आकर्षक कर्तित फूल (कट फ्लावर) होते हैं। पौधे 1–2 मीटर ऊँचे होते हैं। इसकी पत्तियां अंडाकार, नुकीली होती हैं तथा इनमें सुनहरे रंग के पंख जैसे पुष्प गुच्छे लगते हैं।

किस्में

गोल्डन गेट, गोल्डन रिंग, बेलार्डी, सुपर और तारा गोल्ड

मृदा एवं जलवायु

उचित जलनिकासी वाली बलुई दोमट और लाल दोमट मिट्टी अत्यंत उपयुक्त है। यह प्राय: सभी प्रकार की जलवायु में उगता है किंतु धूप वाले स्थान ज्यादा उपयुक्त हैं। ठंडी जलवायु में अच्छे् फूल लगते हैं।

प्रवर्धन

गुच्छों या अंकुरों (सकर) को अलग–अलग हिस्सों में बांटकर पौधे का प्रवर्धन किया जाता है।

पौधरोपण

मिट्टी की भली–भांति जोताई करके इसे मुलायम बनाया जाता है और समतल क्यारियाँ बनाई जाती हैं। तत्पश्चात् कलमों को 45 से.मी.x45 से.मी. की दूरी पर रोपा जाता है।

सिंचाई प्रबंधन

आमतौर पर तीन दिनों में एक बार सिंचाई की जाती है ताकि मिट्टी हमेशा गीली रह सके और प्रचुर मात्रा में डंठल उग सकें।

खरपतवार प्रबंधन

आवश्यकतानुसार हाथों से निराई की जाती है।

खाद और उर्वरक

प्रारंभिक डोज़ के रूप में प्रति हेक्टेयर 140:175:150 कि.ग्रा. की दर से एन पी के और 5 टन गोबर की खाद डाली जाती है तत्पश्चात् प्रत्येक कटाई के बाद उपर्युक्त डोज़ की आधी मात्रा डाली जाती है।

पौध संरक्षण

नाशीजीव : गोल्डन रॉड में सबसे अधिक पाये जाने वाले प्रमुख कीट लेस बग है। इस कीट की रोकथाम के लिए 1 मि.ली/ ली. की दर से इमिडाक्लोरोपिड का छिड़काव किया जाता है।

रोग : पाउडरी मिल्ड्यू, पत्तियों पर दाग और जड़ों का सड़ना सॉलिडेगो में देखे गए प्रमुख रोग हैं। पाउडरी मिल्ड्यू के लिए 2 ग्रा./ प्रति लीटर की दर से वेटेबल सल्फर का छिड़काव करें। पत्तियों पर दाग–धब्बों को रोकने के लिए 3 ग्रा./ लीटर की दर से कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या 2 ग्रा./ लीटर की दर से मैंकोज़ेब का छिड़काव करें। 1 ग्रा./ लीटर की दर से कार्बेंडाज़िम को मिट्टी में मिलाने से जड़ों को सड़ने से रोका जा सकता है।

कटाई, उपज और सस्योत्तर प्रबंधन

पौधरोपण के 75 दिन बाद पहली कटाई की जाती है और अगले 30 दिनों तक प्रतिदिन कटाई की जाती है। इस प्रक्रिया को लगातार 2 दिनों तक दोहराया जाता है। जब 25 प्रतिशत फूल खिल जाते हैं तब गुच्छों को काट लिया जाता है। फसल की अवधि दो वर्ष की होती है। औसतन प्रति हेक्टेयर प्रति फसल 3 लाख डंठलों की पैदावार प्राप्त हो सकती है। कटाई के बाद स्पाइकों को प्रिजर्वेटिव में डुबोकर रख दिया जाता है ताकि यह फूलदान में ज्यादा समय तक सही सलामत रह सकें।

48.चाईना एस्टर

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

चाईना एस्टर एक वार्षिक फूल है। वाणिज्यिक रूप से फूलों का उपयोग आंतरिक सजावट में सजावटी फूल (कट फुलावर) के साथ साथ पूजा में भी किया जाता है। इसका उपयोग उद्यान सजावट में शाकीय बार्डर के रूप में तथा औपचारिक क्यारियों में भी किया जाता है। किसान इस फूल को पुष्पगुच्छों के लिए उगाते हैं और वे सम्पूर्ण पौधे को जमीन से काट लेते हैं। यह फसल, नारियल के बागानों में अंतर–फसल के रूप में उगाने के लिए उपयुक्त है।

जलवायु एवं मृदा

अच्छी जल निकासी वाली बलुई दोमट मृदा अत्यंत उपयुक्त है। मृदा का पीएच स्तर लगभग 6.0 होना चाहिए। इस फसल के लिए प्रचुर मात्रा में सूर्य प्रकाश की आवश्यकता होती है। इसके विकास के लिए उपयुक्त तापमान 20^0 से. (रात) तक है। उच्च तापमान होने पर तना अत्यधिक लम्बा हो जाता है और निम्न गुणवत्ता वाले फूल उगते हैं। बोवाई और प्रतिरोपण कार्य अगस्त से नवम्बर के दौरान किया जा सकता है। एस्टर छोटे दिन का पौधा है, इसके लिए 11 घंटों से भी छोटे दिनों की अवधि आवश्यक होती है।

किस्में

कामिनी, पूर्णिमा, शशांक, वायलेट कुशन, फुले गणेश पिंक, फुले गणेश वायलेट, फुले गणेश व्हाइट, ड्वार्फ क्वीन, ड्वार्फ ट्रम्फ, अमेरिकन ब्यूटी, अमेरिकन ब्रांचिंग, सूपर प्रिंसेस, जयंट ऑफ कैलीफोर्निया, स्टारडस्ट एवं बोके पाउडर पफ।

प्रवर्धन

चाईना एस्टर का प्रवर्धन बीजों के माध्यम से किया जाता है। बीजों को अगस्त से सितम्बर के दौरान बोया जा सकता है। सामान्यत: बीज 7–8 दिनों में अंकुरित हो जाते हैं। बीजों की आयु अधिक होने पर इसकी व्यवहार्यता घट जाती है। चार पत्तियों की अवस्था में नवोद्–भिद पौधों का प्रतिरोपण किया जाता है।

रोपण विधि

पौधे से पौधे की बीच की दूरी तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से.मी. रखने का सुझाव दिया जाता है। रोपण कार्य अगस्त से नवम्बर के दौरान किया जाता है।

सिंचाई प्रबंधन

मृदा की नमी अनुसार खेत में 7 से 10 दिनों में एक बार सिंचाई की जाती है। चूंकि एस्टर उथले जड़ वाली फसल है, अत: पूरी फसल अवधि के दौरान मृदा में लगातार नमी बनायी रखनी चाहिए।

निराई एवं सस्य क्रियाएं

फसल वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्था के दौरान हाथों से नियमित निराई आवश्यक है। मृदा की गुड़ाई से उच्च वातायन की सुविधा होती है जिससे फसल वृद्धि अच्छी होती है। एक माह के अंतराल पर दो बार गुड़ाई की आवश्यकता होती है। गुड़ाई से पौधे की अच्छी वृद्धि होती है और पौधे को सहारा मिलता है जिससे पौधों को गिरने से बचाया जा सकता है। पुष्पण को प्रोत्साहित करने हेतु फीके पड़े फूलों को काट दिया जाना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

प्रति हेक्टेयर 180 कि.ग्रा. नाइट्रोजन+ 120 कि.ग्रा. फास्फोरस पेंटाक्सइड़ + 60 कि.ग्रा. पोटाशियम का उपयोग करें।

रोग एवं नाशीजीव

मृदा में उच्च नमी की स्थितियों में कॉलर एवं जड़ सड़न रोग तीव्र होता है। मैंकोजेब 1% के छिड़काव की सिफारिश की जाती है। एस्टर फसल में रोएंदार कैटरपिलर, मीली बग तथा बीटल्स आम कीट हैं। मेटासिड 2 मि.ली., 2 ग्रा. डिथियोकार्बामेट एक लीटर पानी में मिलाकर दो सप्ताह के अंतराल पर छिड़काव करें।

कटाई, उपज एवं सस्योत्तर प्रबंधन

चाईना एस्टर की कटाई दो प्रकार से की जाती है। खुले फूलों की कटाई सजावट एवं पूजा उद्देश्य के लिए की जाती है जब कि लम्बे डंठलों के साथ या भूमि से कुछ ऊपर से सम्पूर्ण पौधे की कटाई सजावटी फूलों (कट फुलावर्स) के लिए की

जाती है। रोपण के 110 से 140 दिनों में फूलों की कटाई प्रारम्भ हो जाती है। उपज 18000 से 20000 कि.ग्रा. फूल/हे. या एक लाख कटे तना/हे. है। कटाई के तुरन्त बाद तनों को स्वच्छ जल से भरी बाल्टी में डुबोया जाता है और नीचे की पत्तियों को हटा दिया जाता है। फूलों के तनों को तने की लम्बाई और फूलों के आमाप एवं आकार के अनुसार श्रेणीकृत किया जाता है। खुले फूलों को पटसन के बैगों में पैक किया जाता है। सजावटी फूलों को पतले प्लास्टिक फिल्म में लपेटकर कार्डबोर्ड बक्सों में पैक किया जाता है।

49.क्रॉसेन्ड्रा

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

क्रॉसेन्ड्रा एक महत्त्वपूर्ण वाणिज्यिक फूल है, जिसका उपयोग माला, वेणी और गजरे के रूप में केश साज–सज्जा के लिए किया जाता है। यद्यपि इसमें खुशबू नहीं होती फिर भी क्रॉसेन्ड्रा फूल अपने मनमोहक रंग, हल्के वजन और अच्छे रखरखाव गुणों की वजह से लोकप्रिय हैं। वर्षा के मौसम को छोड़कर पूरे वर्ष इस फूल को उगाया जाता है। क्रॉसेन्ड्रा एक शाकीय बारहमासी सदाबहार छोटे किस्म की झाड़ी है जो 4 फीट की उंचाई तक बढ़ता है। फूल टर्मिनल/एक्जियलरी घने सेसिल के रूप में उगते हैं जिन्हें उगने से लेकर पूरी तरह खिलने में 18–25 दिनों का समय लगता है। पूरी तरह खुले हुए फूल गमले में लगभग 4 से 5 दिनों तक ताजे रह सकते हैं किंतु तोड़ लिए जाने पर यह 36–48 घंटे में मुरझा जाते हैं।

किस्में

ऑरेंज, लूटिया येलो, सेबाक्वालिस रेड, दिल्ली क्रॉसेन्ड्रा (सौंदर्य)। दिल्ली क्रॉसेन्ड्रा को छोड़कर अन्य सभी प्रजातियां बीज उत्पन्न करती हैं।

जलवायु एवं मिट्टी

क्रॉसेन्ड्रा एक उष्णकटिबंधीय पौधा है और यह कम तापमान और पाले को नहीं सह सकता है। जिस स्थान का तापमान लगभग 30^0 से. होता है वहां यह अच्छी तरह फलता–फूलता है। वर्षा में ठंड के मौसम के दौरान इसमें प्रचुर मात्रा में फूल लगते हैं। थोड़ी बहुत छांव में भी क्रॉसेन्ड्रा को उगाया जा सकता है। अच्छी वृद्धि और विकास के लिए उपयुक्त तापमान 15 से 35^0 से. है। रात का तापमान 10^0 से.से नीचे नहीं होना चाहिए। पौधे छांव को कुछ हद तक सह सकते हैं किंतु सुहावना (माइल्ड) मौसम इसके अनुकूल नहीं होता है। 6–7 पीएच वाली लाल मिट्टी और बलुवा दोमट मिट्टी, जहां जल निकासी की अच्छी सुविधा हो, इसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त है।

प्रवर्धन

बीज (बीज दर 5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर) और तना कतरन।

पौधरोपण

क्रॉसेन्ड्रा रोपण का सबसे अच्छा समय जुलाई–अगस्त तथा अक्टूबर–नवम्बर है। जड़युक्त कतरनों या नवोद्–भिद पौध को गड्ढे के बीचों–बीच रोपा जाता है और बारंबार सिंचाई से बचा जाता है क्योंकि इससे इसकी जड़ें सड़ने लगती हैं। पौधरोपण के बाद उगने वाले नए स्पाइक दो माह में कटाई के लिए तैयार हो जाते हैं। इससे अगल–बगल में और अधिक शाखाएं भी उगने लगेंगी। खेत को 4–5 बार जोता जाता है और अंतिम बार जुताई के समय इसमें 25–30 टन गोबर की खाद डाला जाता है। 60 से.मी. की दूरी रखते हुए मेड़ और नालियां बनाई जाती हैं। 4–5 पत्तियों वाले 45 दिन आयु के पौधों को मेड़ के एक ओर रोपा जाता है। पौधों के बीच 30 से.मी. की दूरी रखी जाती है। जड़ों को सड़ने से बचाने के लिए नए पौधों को 0.1 प्रतिशत बैविस्टिन में डूबोया जाता है।

खाद और उर्वरक

खेत तैयारी के दौरान 25 से 30 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की खाद का उपयोग किया जाता है। पौधरोपण के पश्चात् तीसरे, नौवें और 15वें महीने में तीन बार में 50 कि.ग्रा. यूरिया + 100 कि.ग्रा. सूपर फॉस्फेट + 60 कि.ग्रा. पोटाश डाला जाता है। प्रारंभिक डोज़ के रूप में गोबर की खाद का उपयोग और प्रत्येक 30 दिनों पर 1% फेर्रस सल्फेट और 2% यूरिया का पर्णीय छिड़काव फूलों की पैदावार को बढ़ाता है और क्लोरोसिस की समस्या को दूर करता है।

खर–पतवार प्रबंधन

टॉप ड्रेसिंग के समय पौधों पर मिट्टी चढ़ाई जाती है और एक माह में कम से कम एक बार निराई की जाती है।

सिंचाई प्रबंधन

मिट्टी और मौसम की स्थितियों के अनुसार, इस फसल में 4–5 दिनों में एक बार सिंचाई की जरूरत होती है।

रोग तथा नाशीजीव

स्केल्स, स्पाइक बोरर, मिज ऐसे प्रमुख नाशीजीव हैं जो कि क्रॉसेन्ड्रा को संक्रमित करते हैं। प्रति हैक्टेयर 33 कि.ग्रा. कार्बोफ्यूरॉन का उपयोग करके स्केल कीटों को रोका जा सकता है (क्रॉलर अवस्था में और कीट समूह बढ़ने से पूर्व छिड़काव शुरू कर दें)। प्रति लीटर 1 मि.ली. मिथाइल पैरेथिओन का प्रयोग करके स्पाइक बोरर को दूर रखा जा सकता है।

क्रॉसेन्ड्रा का सबसे घातक रोग है – मुरझान रोग। पत्तियों का गिरना, हल्का सा पीला पड़ जाना तथा जड़ों एवं जड़ की शिराओं का सड़ना इस रोग के मुख्य लक्षण हैं। सूत्रकृमियों के संक्रमण से इन पौधों पर कवक लग जाते हैं जो कि इनमें छिद्र कर देते हैं और इससे ये पौधे बुरी तरह मुरझा जाते हैं। प्रभावित पौधों को हटा दिया जाना चाहिए। यदि शुरूआती अवस्था में ही लक्षण नजर आने लगते हैं तो मिट्टी में 1 प्रतिशत बोर्डोऑक्स मिक्सचर की खुराक डालने से रोग दूर हो जाएगा। वैकल्पिक तौर पर इसकी प्रतिरोधक प्रजातियां उगाई जा सकती हैं।

कटाई और पैदावार

पौधरोपण के बाद 70–75 दिनों में पौधे पर फूल लगने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। पुष्पवृन्त के प्रारंभिक हिस्से से एक निश्चित क्रम में एक–एक करके फूल खिलने लगते हैं और दो दिनों में एक बार कटाई की जा सकती है। डंठलों में पुष्पण पूर्ण होने में लगभग 15 से 20 दिनों का समय लगता है और कटाई के बाद पुष्प वृन्त के सूखे हुए हिस्से को हटा दिया जाता है। पौधे में दो वर्षों तक फूल लगते हैं। स्थानीय किस्म (बीज से उत्पन्न) में प्रति हेक्टेयर 7.5–8 टन और दिल्ली क्रॉसेन्ड्रा में प्रति हेक्टेयर 10 से 12 टन की पैदावार प्राप्त हो सकती है। क्रॉसेन्ड्रा फूल तो वर्षभर लगते हैं किंतु वर्षा के मौसम में उत्पादन कम हो जाता है। यद्यपि क्रॉसेन्ड्रा के 12 मासी होने तथा 2 से 3 वर्ष तक टिके रहने की बात कही गई, फिर भी उच्च पैदावार वाले स्वस्थ और ताजे दिखने वाले पौधों को बनाए रखने के लिए प्रति वर्ष इन्हें प्रतिस्थापित करना बेहतर होगा।

50.ग्लैडियोलस

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

ग्लैडियोलस एक लोकप्रिय फूलों का पौधा है इसे प्रकंदों से उगाया जाता है और इसकी खेती 16 वीं शताब्दी के अंत में प्रारम्भ की गयी है। इसे वानस्पतिक सीमाओं, क्यारियों, रॉकरी, गमलों में तथा सजावटी फूलों (कट फुलावर) के लिए उगाया जाता है। इसके फूल विभिन्न आकर्षक रंगों के होते हैं। सजावटी फूलों के रूप में ये अत्यंत उपयुक्त हैं चूंकि ये फूल लम्बे समय तक टिकते हैं। भारत में बड़े फूलों के प्रकारों की भारी मांग है।

किस्में

फ्रंडशिप्सू, पूनम, आरती, अप्सरा, सपना, मीरा, जैक्स गोल्ड, हर मेजेस्टी, रोज डिलाइट, पीटर पियर्स, जेस्टर।

जलवायु एवं मृदा

ग्लैडियोलस, तेज रोशनी एवं कम तापमान पर अच्छी तरह उगता है। कम रोशनी की अपेक्षा उच्च तापमान के प्रति ये अधिक संवेदनशील है। दिन का तापमान 15–20^0 से. उपयुक्त होता है। ग्लैडियोलस को अनेक प्रकार की मृदाओं (बलुई से चिकनी दोमट) में उगाया जा सकता है। गहरी एवं अच्छी जल निकासी वाली अम्लीय मृदा जिसका पीएच स्तर 5.5 से 6.5 हो, अत्यंत उपयुक्त होती है।

रोपण सामग्री

ऊंची क्यारियों में बड़े आकार के बल्बों को रोपित किया जाता है। रोपण से पूर्व बल्बों को 1% कैप्टान या बेविस्टिन में 30 मिनट तक डुबोए रखा जाए। ग्लैडियोलस रोपण की उपयुक्त अवधि अगस्त माह के दूसरे पखवाड़े से सितम्बर का प्रथम पखवाड़ा है।

रोपण प्रणाली

बल्बों का रोपण 30 से.मी. दूरी पर पंक्तियों में 20 से.मी. की दूरी रखकर किया जाता है। एक हेक्टेयर क्षेत्र में 1.5 लाख पौधे स्थापित किए जा सकते हैं। बल्बों को 2 इंच की गहराई में रोपा जाता है।

सिंचाई प्रबंधन

मृदा एवं मौसमीय स्थितियों के आधार पर फसल को 2–3 दिनों में एक बार सींचा जाता है। तीसरी पत्ती उभरने के दौरान जब संकुचनशील जड़ निकलते हैं और स्पाइक उभरने से ले कर इसके विकास तक जल आवश्यकता की संवेदनशील अवस्था होती है।

खाद एवं उर्वरक

प्रति हेक्टेयर 180:80:60 के अनुपात में एन पी के डाला जाता है।

खरपतवार प्रबंधन

मृदा से शूट निकलने पर हल्के से कुदाल/फावड़ा चलाना प्रारम्भ किया जाता है और यह कार्य स्पाइक के फूलने तक जारी रखा जाता है। कुदाल/फावड़ा चलाने पर खरपतवार कम हो जाते हैं और प्रत्येक सिंचाई के पश्चात् निरंतर वातन की सुविधा बनी रहती है।

सस्य क्रियाएं

हल्की मृदाओं में पौधे पर मिट्टी चढ़ाई जाती है। हवा की हल्की झोंके से बचाने के लिए खूंटियां लगायी जाती हैं। स्पाइक्स उभरने के दौरान तार का उपयोग किया जाता है।

नाशीजीव एवं रोग

इस फसल में आम नाशीजीव थ्रिप्स, माइट्स, कैटर पिल्लर्स हैं और प्रमुख रोग फ्यूज़ैरियम मुरझान रोग है। थ्रिप्स एवं कैटरपिल्लर का नियंत्रण इमिडाक्लोरोपिड 0.2% से किया जा सकता है। फसल पर कॉपर आक्सीक्लोराइड 30 ग्रा./10 लीटर जल में मिलाकर छिड़काव से रोग नियंत्रण किया जा सकता है।

कटाई, उपज, ग्रेडिंग, पैकिंग एवं भंडारण

ग्लैडियोलस कटाई की उपयुक्त अवस्था तब होती है जब पुष्पवृन्त पर सबसे नीचे का फूल खुलने लगता है। पुष्पवृन्त को पत्तियों के साथ काट लें। एक हेक्टेयर क्षेत्र से 2 से 3 लाख पुष्पवृन्त प्राप्त हो सकते हैं। सजावटी फूलों को तुरन्त जल में रखा जाता है और 4.4^0 से. तापमान पर भंडारित (आवश्यकता होने पर) किया जा सकता है। पुष्पवृन्त का ग्रेडिंग स्पाइक की लम्बाई और प्रत्येक स्पाइक पर फूलों की संख्या के आधार पर किया जाता है। वर्गीकरण निम्नवत किया जाता है।

प्रकार	विशिष्टाताएं
फैंसी	> 107 से.मी., न्यूनतम 16 फ्लोरेट्स
स्पेशल	> 96 से < 107 से.मी., न्यूनतम 15 फ्लोरेट्स
स्टैंडर्ड	> 81 से.मी. से < 96 से.मी., न्यूनतम 12 फ्लोरेट्स
युटिलिटी	< 81 से.मी., न्यूनतम 12 फ्लोरेट्स

1.2 मी. x 60 से.मी. x 30 से.मी. कोरूगेटेड कार्ड बाक्स का उपयोग करें। 1.2 मी. x 60 से.मी. x 30 से.मी. (ऊंचाई वाले) परफोरेशन वाले कोरूगेटेड कार्ड बाक्सो का उपयोग करें। 50 से 100 स्पाइकों के बंडल बनाएं और उन्हें दो भिन्न दिशाओं में बक्सों में रखें। अवशेषक सूत का पैडिंग दें। फूलों को 1.6 से 4.4^0 से. तापमान पर 6 से 9 दिनों तक भंडारित किया जा सकता है। फूलों की कटाई के बाद जब पत्तियां पीली होने लगती हैं तो प्रकंदों को एकत्रित कर उन्हें कवकनाशकों से धो कर 5^0 से. ठण्डे तापमान में भंडारण करना चाहिए। अगली फसल के लिए इन्हें रोपित करने सें पूर्व प्रकंदों को 50 पीपीएम जीए3 में डुबोना चाहिए।

51.गॉमफ्रेना

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

गॉमफ्रेना एक झाड़ीदार पौधा है जो एमारंथासी परिवार से संबंधित है। इस पौधे से क्लोवर या बटन जैसा गोल फूल लम्बे तने के साथ साथ पर्णसमूह पर भी उगते हैं। फूलों का रंग मैजेंटा, जामुनी, बैंगनी, गुलाबी, हल्की नारंगी या सफेद होता है। फूलों का शीर्ष कागज के समान एवं 'टिकाऊ' होता है। ग्लोब अमारंथ को क्यारियों एवं सीमान्त क्षेत्रों में सजावटी फूलों (कट फ्लावर) के लिए उगाया जाता है। इस फूल के बौने किस्म किनारों एवं रॉक गार्डेन के लिए उपयुक्त होते हैं। सजावटी फूलों को सूखाकर भी फूलों की सजावट में उपयोग किया जा सकता है चूंकि सूखने पर भी रंग बरकरार रहता है।

किस्में

ग्लोबोसा मिक्सड (ऊंचे), सिस्सी (व्हाइट) तथा ड्वार्फ या लिलिपुट बड़ी (जामुनी)।

जलवायु एवं मृदा

इस फसल को ग्रीष्म और वर्षाकाल में भी उगाया जा सकता है। अच्छी जल निकासी वाली लाल बलुई मृदा उपयुक्त होती है। जल भराव के प्रति पौधे संवेदनशील होते हैं।

प्रवर्धन एवं नर्सरी

इस फसल का प्रवर्धन बीजों से होता है और एक हेक्टेयर क्षेत्र में रोपण के लिए 2.5 कि.ग्रा. बीजों की आवश्यकता होती है। बीजों को पंक्तियों में बनी ऊंची क्यारियों में 10 से.मी. के अंतराल पर बोया जाता है और बारीक रेत से ढककर नियमित रूप से जल दिया जाता है। 20 से 25 दिनों में बीज प्रतिरोपण के लिए तैयार हो जाते हैं। बीजों को मई–जून में बोया जाता है ताकि पौधों की वृद्धि वर्षाकाल के दौरान हो सके। ग्रीष्मकाल में फूल प्राप्त करने हेतु बोवाई जनवरी से फरवरी के दौरान की जाती है।

रोपण

मुख्य खेत की 2–3 बार जोताई की जाती है और अंतिम जोताई के दौरान 20–25 टन गोबर की खाद डाली जाती है। 60 से.मी. x 30 से.मी. सपाट क्यारियों में नवोद्–भिद पौधों का रोपण किया जाता है।

सिंचाई प्रबंधन

गॉमफ्रेना एक उथली जड़ों वाली पौधा है, अत: गहरी जोताई/खेती से बचना चाहिए। जल का उपयोग किया जाना चाहिए ताकि निरंतर नमी बनी रहे।

खरपतवार प्रबंधन

क्यारियों को खरपतवार मुक्त रखने हेतु मासिक अंतराल पर हाथों से निराई की जाती है।

सस्य क्रियाएं

साइकोसेल या पैक्लोबुट्राजॉल 1 मि.ली./ली. का उपयोग पुष्पण एवं उपज में वृद्धि करता है। रोपण के 15 दिनों के बाद पिंचिंग किया जाता है। रोपण के 60–70 दिनों के बाद पौधे पर फूल लगते है।

खाद एवं उर्वरक

गॉमफ्रेना भारी फीडर नहीं है, और उर्वरकों के छोटे परिमाणों के उपयोग से अच्छी प्रतिक्रियाएं मिलती हैं। क्यारियों की तैयारी के दौरान गोबर की खाद 10 कि.ग्रा./वर्गमीटर की दर से डाली जाती है। अच्छी वृद्धि के लिए 20 ग्रा./वर्गमीटर की दर से एन पी के का उपयोग किया जाना चाहिए। रोपण के 20–25 दिनों के बाद बेसल ड्रेसिंग तथा 12–15 कि.ग्रा. पोटाशियम दिया जाता है।

पादप संरक्षण

गॉमफ्रेना में पत्ती धब्बा प्रमुख रोग है। इस रोग के नियंत्रण के लिए मैंकोजेब 2% की दर से उपयोग किया जाता है। फसल वृद्धि की किसी भी अवस्था में कट वर्म, एफिड्स तथा बीटल्स पौधों को संक्रमित करते हैं। उपयुक्त कीटनाशकों के जैसे रोगोर 0.2% या इमिडाक्लोरोपिड 0.25% छिड़काव से इन नाशीजीवों का नियंत्रण किया जा सकता है।

कटाई एवं उपज

रोपण के 60–70 दिनों के पश्चात पौधों पर फूल लगते हैं। औसतन 9–10 टन/हे. उपज प्राप्त होती है।

52.हेलीकोनिया

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

हेलीकोनिया विदेशी उष्णकटिबंधीय फूल के पौधों में अत्यंत आकर्षक है। इसे लोब्स्टर का पंजा, तोते के फूल आदि भी कहा जाता है। हेलीकोनिया, रंग और रूप में अपनी विविधता के कारण लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है इसके चटकीले रंग, विदेशी रूप, लम्बे सीधे डंठल इन्हें फूलों के व्यापार में उत्कृष्ट बनाते हैं। फूलों की सजावट में हेलीकोनिया उत्कृष्ट फूल है। आंतरिक साज सज्जा में हेलीकोनिया के सजावटी फूलों और गमलों में पौधों का उपयोग किया जाता है। भूदृश्य निर्माण में भी इनका उपयोग किया जाता है। हेलीकोनिया की 250 से अधिक प्रजातियां हैं।

जलवायु एवं मृदा

हेलीकोनिया की वृद्धि 21^0 से 35^0 से. तापमान में अच्छी होती है। हेलीकोनिया खुले क्षेत्र में अच्छी तरह फलता–फूलता है। प्रकाश की तीव्रता से वृद्धि एवं उपज बड़े पैमाने पर प्रभावित होती हैं। जो पौधे पूर्ण सूर्य प्रकाश में उगते है उनमें, 50 प्रतिशत छांव में उगाए गए पौधों की तुलना 4 गुना अधिक पुष्पवृन्त उत्पन्न होते हैं। छांव में उगाए गए पौधें लम्बे होते है, परन्तु वास्तव में कमजोर होते हैं। पूर्ण सूर्य प्रकाश की अपेक्षा हल्के छांव में उगाए गए पौधों के ब्रैक्ट का रंग कुछ ज्यादा गहन होता है। जैविक पदार्थों से समृद्ध मृदाओं में हेलीकोनिया अच्छी तरह फलता फूलता है। तथापि हल्की अम्लीय, अच्छी तरह सूखी, मध्यम एवं उच्च उत्पादकता वाली मृदा को वरीयता दी जाती है। उच्च पीएच स्तर वाली मृदाओं में उगाए गए पौधों में पीलापन आ जाता है।

प्रवर्धन

रोपण सामग्री के रूप में प्रकंदों का उपयोग किया जाता है।

रोपण

प्रकंदों को उपयुक्त कीटनाशकों में डुबोना या इन पर छिड़काव, तत्पश्चात सर्वांग कवकनाशकों में डुबोना चाहिए ताकि जीवाणुवीय या कवकीय वृद्धि घट सके एवं अंकुरण में वृद्धि हो सके। गड्ढे उस आमाप के खोदे जो पौधे को विकसित किए गए गमले के दुगुना आमाप के हों। गमला मिश्रण में रेत, मृदा और गोबर की खाद समान अनुपात में सम्मिलित किया जाना चाहिए। जड़ प्रणाली की चारों ओर की मृदा में हस्तक्षेप किए बिना पौधे को गड्ढे में स्थापित करें। रोपण के पश्चात् पौधे के चारों ओर की मृदा को दबा दें। पर्याप्त जल दें एवं मृदा की ऊपरी सतह को घास फूस से ढककर रखें। हेलीकोनिया की खेती में 1.5 x 1.5 मी. की दूरी बनाए रखना अत्यंत उपयुक्त है। यदि पौधों की संख्या अधिक हो जाए तो पुन:रोपित किया जाना चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

हेलीकोनिया के लिए अधिक जल की आवश्यकता होती है और इसे अच्छी जल निकासी वाले स्थान पर उगाया जाना चाहिए चूंकि उपयुक्त जल निकासी न होने पर जड़ों की बड़ी समस्या हो सकती है। हेलीकोनिया की सिंचाई के लिए छिड़काव सिंचाई उपयुक्त पद्धति है। हेलीकोनिया में जल दबाव इसकी पत्तियों में लम्बवत रोलिंग से स्पष्ट होता है।

खरपतवार प्रबंधन

खरपतवारों की तीव्रता के अनुसार एक माह में एक बार प्रकंदों को क्षति पहुंचाए बिना होईंग की जाती है।

खाद एवं उर्वरक

हेलीकोनिया के लिए सक्रिय वृद्धिकाल के दौरान समृद्ध कम्पोस्ट एवं प्रचुर मात्रा में जल की आवश्यकता होती है। मृदा की तैयारी के दौरान अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद 4 कि.ग्रा./वर्गमीटर की दर से तथा प्रकंदों के रोपण के दौरान 20 ग्रा. नाइट्रोजन, फास्फोरस पेंटाक्साइड, पोटाशियम आक्साइड प्रति वर्गमीटर की दर से डालना चाहिए। रोपण के दो माह बाद 20 ग्रा. नाइट्रोजन/वर्गमीटर की दर से टॉप ड्रेसिंग किया जाना चाहिए। पत्तियों के बेहतर रंग के लिए पत्तियों पर प्रत्येक वर्ष 3–4 बार सूक्ष्म्पोषक तत्वों के पर्णीय छिड़काव की सिफारिश की जाती है।

पादप संरक्षण

कीट नाशीजीव

घोंघे

घोंघे हेलीकोनिया की तरूण पत्तियों को कुतर कर चबा जाते हैं और रात के दौरान पत्तियों मे बड़े, अनियमित छेद कर देते हैं। घोंघों को हाथ से निकाल कर 5% लवणीय द्रव्य में डाल कर मार देना चाहिए जिससे इनकी संख्या घट जाएगी।

इनके रास्तों एवं गमलों के चारों ओर नमक के क्रिस्टल छिड़क दिये जाने चाहिए। इनके सम्पर्क में आने पर घोंघे मर जाते हैं। खेत में घोंघों के चारे (3% मेटलडिहाइड पैलेट्स) बिछाकर इनकी संख्या को प्रभावकारी रूप से कम किया जा सकता है। नीम के तेल (10 मि.ली./ली.) से छिड़काव करने पर पत्तियों को क्षति से बचाया जा सकता है।

रोग

इस फसल का आम रोग जड़ सड़न है जो दो प्रकार के कवकीय रोगाणुओं द्वारा होता है। दोनों ही कवकों की रोकथाम थोड़े प्रयास से की जा सकती है। ये कवक तब पनपते हैं जब पौधों में अत्यधिक जल दिया जाता है या जब जल निकासी अच्छी न हो।

कटाई, उपज एवं सस्योत्तर प्रबंधन

फूलों को 70 से.मी. या उससे लम्बे डंठलों के साथ काटा जाता है। फूलों के डंठलों को प्रात: काल में जमीन के निकट से ही काट लेना चाहिए। फूलों को वांछित अवस्था तक खिलने के बाद काट लेना चाहिए ताकि काटने के बाद कली न खुले। काटने के पश्चात् डंठलों को पानी में डुबोना चाहिए ताकि पैकिंग के पहले पुष्पवृन्त सूखने न पाए। हेलीकोनिया के फूलों को कटाई के बाद 14–15 दिनों तक जल में रखा जा सकता है और फूलों को 10^{0}से. से कम तापमान पर भंडारण करने पर ये क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। बड़े हेलीकोनिया को सामान्यत: इस प्रकार काटा जाता है कि उन्हें 150 से.मी. लम्बे बक्सों में रखा जा सके जब कि छोटे प्रकार के फूलों को 60–90 से.मी. लंबा काटा जाता हैं। फूलों को अक्सर 10 के गुच्छों में प्लास्टिक फिल्म में लपेटकर या जालीदार नायलॉन में पैक किया जाता है। इस प्रकार के 25 गुच्छों को 150 x 50 x 25 से.मी. के बक्सों में पैक किया जा सकता है। मध्यम आकार के 20–50 हेलीकोनियांओं को एक बक्से में रखा जा सकता है जब कि बड़े फूल 5 से 10 रखे जाते हैं।

53.गेंदा

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्त्व

भारत में उगाए जाने वाली फूलों की फसलों में कम्पोसिटे परिवार से संबंधित गेंदा (टेजेटेस इरेक्टा – अफ्रीकन मैरीगोल्ड) इसके अलंकारिक एवं औद्योगिक उपयोगों के कारण अति महत्वपूर्ण परम्परागत फसल है। इसे धार्मिक कार्यों तथा सामाजिक कार्यक्रमों के लिए फूलों के हार बनाने तथा लैंडस्कैप गार्डेनिंग में बेडिंग प्लांट हेतु व्यापक रूप से उगाया जाता है। गेंदे फूल की पंखुड़ियों से निकाले गए कैरोटेनोयड्स को अनेक औद्योगिक प्रयोजनों जैसे कुक्कट आहार उद्योग में उपयोग किया जाता है। आहारीय कैरोटेनोयड्स में मानव शरीर में कर्क रोग उपचार तथा अन्ये फोटो संवेदनशील रोग निवारण के गुण होते हैं। सब्जियों की फसलों में हेलीकोवर्पा प्रकोप के नियंत्रण में गेंदे की फसल की एक ट्रैप फसल के रूप में सिफारिश की जाती है और इसमें सूत्रकृमिनाशक गुण होते है।

जलवायु एवं मृदा

गेंदे को उष्णकटिबंधीय के साथ साथ समशीतोष्ण स्थितियों के लिए भी व्यापक रूप से अनुकूलित किया गया है। गेंदे की समृद्ध वृद्धि एवं पुष्पण के लिए सौम्य जलवायु की आवश्यकता होती है। अत्यधिक तापमान में पौधे की वृद्धि प्रभावित होती है और फूलों का आकार और संख्या घट जाती है। गेंदा उगाने के लिए अनुकूलतम तापमान 18^0–20^0 से. है। गेंदे की खेती के लिए अच्छी जल निकासी वाली अनेक प्रकार की मृदाएं उपयुक्त हैं। इसकी खेती के लिए 5.6 से 6.5 पीएच स्तर वाली बलुई दोमट मृदा अत्यंत उपयुक्त होती है।

किस्में

अफ्रीकन मैरीगोल्ड : पूसा नारंगी गेंदा, पूसा बसंदी गेंदा, पूसा अर्पिता, क्रैकरजैक, गिनी गोल्डै, मैन–इन–द–मून, मेलिंग, स्मैलेक, सनजयंट्स, फ्रेस्टा, टैटानिया तथा येल्लो सुप्रीम क्रो ऑफ गोल्ड, ग्लिट्टर्स, गोल्डस्मिथ, येल्लोस्टोन, क्यूंपिड, हैपीनेस, स्पनगोल्ड, क्लाइमैक्स, टोरीडर।

फ्रेंच मैरीगोल्ड : रस्टी रेड, नाटी, मेरिट्टा, फ्लेम, स्टार ऑफ इंडिया, गोल्ड, येल्लो, ऑरेंज, हार्मोनी तथा फैयरग्लो।

रोपण

फसल उगाने के लिए बीजों का उपयोग किया जाता है। बीज दर 3 कि.ग्रा./हे. है।

रोपण प्रणाली

गेंदे का प्रवर्धन बीजों के माध्यम से होता है। बीजों को ऊंची क्यारियों में बोया जाता है और 15–20 दिनों के बाद नवोद्–भिद पौधों को प्रतिरोपित किया जाता है। गेंदे का प्रवर्धन सिरा कतरनों से भी किया जाता है।

खाद एवं उर्वरक

गोबर की खाद 15 टन/हे. की दर से आवश्यक है। उर्वरक नाइट्रोजन, फास्फोरस पेंटाक्साइड तथा पोटाशियम अक्साइड क्रमश: 150:80:60 कि.ग्रा./हे. की दर से सिफारिश की जाती है।

सिंचाई प्रबंधन

मृदा एवं मौसमीय स्थितियों के अनुसार 4–5 दिनों में एक बार सिंचाई करें। भारी मृदाओं की तुलना में हल्की मृदाओं में अधिक सिंचाई की आवश्यकता होती है।

खरपतवार प्रबंधन

फसल अवधि के दौरान नियमित रूप से कुदाल/खुर्पी चलाने की 3 से 4 बार की आवश्यकता होती है।

पिंचिंग

पहली फूल की कली उभरने के पश्चात शीर्ष तना को पिंच या कर किया जाता है ताकि पौधा झाड़ी का रूप धारण कर सके। इससे बगल में अधिक शूट विकसित होते हैं और पौधे को अधिक फूलदार बनाते हैं।

पादप संरक्षण

इस फसल के आम रोग फ्यूज़ेरियम मुरझान, पत्ती धब्बा और रस्ट हैं और नाशीजीव प्लांट हॉपर, स्लग्स और ब्लिस्टर बीटल है। स्लग्स को नियंत्रित करने हेतु 15% मेटलडिहाइड से डस्टिंग किया जाता है। प्लांट हॉपर और ब्लिस्टर बीटल के नियंत्रण के लिए 2% मैलाथियॉन का छिड़काव किया जाता है। मैंकोजेब से मृदा के उपचार से मुरझान एवं पत्ती धब्बा रोग का नियंत्रण किया जा सकता है।

कटाई

पौधों में 65वें दिन से फूल लगना प्रारम्भ हो जाता है और 120वें दिन तक फूल लगते रहते हैं। एक हेक्टेयर क्षेत्र से 20,000 से 25,000 कि.ग्रा. फूलों की आशा की जाती है।

54.ऑर्किड्स

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

ऑर्किड्स, जो कि भगवान के सृजन में सबसे अधिक खूबसूरत फूल हैं, यह पुष्पण पौधों का विशालतम परिवार (35,000 प्रजातियां) है। इनके फूलों के आकार, आकृति और रंग में अविश्वसनीय प्रकार की विविधताएं दिखती हैं। लगभग 25000 प्रजातियों में से, लगभग 600 वंशों की प्रजातियां विश्व के गर्म आर्द्र उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पाई जाती हैं, लगभग 1300 प्रजातियां भारत में पाए जाने का अनुमान है। अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह की अनुकूल उष्णकटिबंधीय गर्म और आर्द्र जलवायु के कारण 59 वंशों की कुल 132 वन्य, देशी किस्म के ऑर्किड्स पाए जाने की जानकारी मिली है। द्वीपीय पारिस्थितिक तंत्र में ऑर्किडों के प्रवास (हैबीटैट) और वितरण में काफी विविधताएं हैं। विकास की प्रवृत्ति और गुणवत्ता एवं फूलों/ शूलों की संख्या के अलावा पत्ती और फूलों की आकृति, आकार, रंग और मोहकता एवं इनकी संरचना में भी काफी अंतर होता है। दुर्लभ, स्थानिक और संकटग्रस्त प्रजातियों को सुरक्षित रखने के अलावा नई हाईब्रिडों को तैयार करने के लिए प्रजनन कार्यक्रम में खाड़ी द्वीपों के ऑर्किड्स में मौजूद वृहत आनुवंशिक विविधता का उपयोग किया जा सकता है। अभी तक इस द्वीप से किसी भी स्थानिक वंश की सूचना नहीं मिली है परन्तु 30 प्रजातियां क्षेत्र विशेष की हैं। ऑर्किड्स फूलों के बेजोड़ श्रृंगारिक महत्व के कारण अंतर्राष्ट्रीय बाजार में कई मिलियन डॉलर के सजावटी फूलों (कट फुलावर) का कारोबार होता है।

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में ऑर्किड्स की प्रजातियां

इस द्वीप में ऑर्किड्स के 59 वंशों की लगभग 132 प्रजातियां पायी जाती हैं। यह सूचना मिली है कि लगभग 16 प्रजातियां और एक किस्म स्थानिक हैं जिनमें से ग्रोसोर्डिय, मेक्रोपोडेंथस, मालेओला और प्लोपकोग्लोटिस भारत के मुख्य भू–भाग में नहीं पाए जाते हैं। बर्मा–थाइलैंड के बल्बोफाइलम क्रैसिपाइस, बी. रूफीनम, क्लिसोस्टौमा एलिगंस और सियोलोजाइन क्वाड्राटिलोबा अंडमान में दर्ज किए गए हैं। मलेशियाई एलिमेंटों के द्योतक एपेंडिकुला रिफ्लेक्सा, डेंड्रोबियम पेंसाइल, फैलेनोप्सिस टेट्राप्सिस और सियोनॉर्किस मिन्यूटिफ्लोरा निकोबार में दर्ज किए गए हैं। इस द्वीप में मौजूद स्थानीय स्थितियां ऑर्किड्स के विकास और जीवित रहने के लिए अत्यंत उपयुक्त हैं जिन्हें वाणिज्यिक लाभ के लिए उपयोग किया जा सकता है और इस द्वीप के जैवमंडल में ऑर्किड्स का जीन पूल बनाए रखा जा सकता है।

अत्यधिक मांग वाली प्रजातियां

कैट्लियास : एन्न् फॉरचून, पोर्ट ऑफ पैराडाइज

डैंड्रोबियम : इमा व्हाइट, डायमंड स्टार, सोनिया 17, सोनिया 17 म्यूटेंट, सोनिया 28 म्यूटेंट, रेनापा, कासेम व्हाहइट, कासेम गोल्ड इत्यादि

आन्सिडियम : टाका

फैलेनॉप्सिस : पिंक एक्सि व्हाइट

जलवायु और मिट्टी

ऑर्किड्स को अधिक (हवा रहित) और 2400 से 3600 फीट कैण्डालों सूर्य की रौशनी/प्रकाश की आवश्यकता होती है। कुल के अनुसार, ऑर्किड्स को बढ़ने के लिए 15.5^0 से. से 26.5^0 से. तापमान उपयुक्त होता है। सामान्य तौर पर वैंडा, राइन्कोस्टाइलिस, फैलिनोप्सिस और डेड्रोबियम्स् गर्म किस्म के ऑर्किड्स हैं और इन्हें 25^0 से. से 26.5^0 से. तापमान की आवश्यकता होती है। जबकि कैट्लिया, ब्रैसारोला, ऑन्सिडियम, एपिडेंड्रम, माइल्टनिया, ऑडोंटोग्लोसम के लिए मध्य वर्ती स्तर का तापमान ($13–18^0$ से.) अनुकूल होता है। तीसरी श्रेणी के शीतल ऑर्किड्स में साइम्बिडियम और पैफियोपेडिलियम आते हैं। कैट्लिया को छोड़कर सभी ऑर्किड्स 70 से 80 प्रतिशत की उच्च आर्द्रता वाले क्षेत्रों में भली–भांति पनपते हैं जबकि कैट्लिया को कम आर्द्रता (14–55 प्रतिशत) की आवश्यकता होती है। जड़ प्रणाली को वायु उपलब्ध करने हेतु ऑर्किड्स को विशेष प्रकार के गमला मिश्रण (पॉटिंग मिक्सचर) की आवश्यकता होती है। गमला मिश्रण के रूप में निम्नलिखित सामग्रियों को विभिन्न अनुपातों में उपयोग किया जाता है। ऑसमंडा फाइबर के छोटे छोटे टुकड़े, अधिक पके हुए ईंट के टुकड़े, कठोर काष्ठवाला नारियल, परलाइट, चारकोल, पेड़ की छाल, नारियल मज्जी, रेड वुड फाइबर, दानेदार पीत मौस, सड़ी पत्ती, नदी का बालू इत्यादि। इस्तेमाल की जाने वाली सामग्री शामिल किए जाने लायक और अपघटन प्रक्रिया को सहने वाली होनी चाहिए।

प्रवर्धन

ऊतक संवर्धन और अन्य वनस्पतिक पद्धतियां। वैंडा और एराकनिस जैसे मोनोपोडियल ऑर्किड्स (एकल डंठल का विकास) का प्रवर्धन कतरनों से किया जाता है। जबकि सिम्पोडियल ऑर्किड्स (विविध डंठलों का विकास) का प्रवर्धन डिविजन विधि से किया जाता है। पौधों में पनपने वाली टहनियों, जिन्हें कैकिस कहा जाता है, को भी प्रवर्धन के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।

पौधरोपण

आमतौर पर मिट्टी के गमले, टोकरियां, लकड़ी की ट्रे, नारियल की भूसी का इस्तेमाल कंटेनर के रूप में किया जाता है। पर्याप्त जल निकासी अत्यंत आवश्यक है। इसलिए कंटेनर की पेंदी और बगलों में छेद कर दिए जाते हैं। जमीन में उगने वाले स्थलीय ऑर्किड्स के लिए ग्रोईंग मीडियम से भरे छिछले खांचों की जरूरत होती है। जबकि ऐराइड्स, फैलिनोप्सिस, वांडा जैसे एपिफाइटों के लिए छिद्रयुक्त गमलों की जरूरत होती है। उपयोग की गई सामग्रियां अच्छे वातायन और जलनिकासी की सुविधा वाली होनी चाहिए। यह न तो अधिक जल को सोखे और न ही आसानी से सूख जाए। इसलिए ऑर्किड्स उगाने के लिए मीडियम के कुछ घटकों अर्थात् टूटी ईंट, नारियल का छिलका, रोड़ी, पेड़ की लकड़ी का इस्तेमाल किया जाता है। उन्हें अच्छी तरह धोया जाता है और ऑर्किड्स की जड़ों को घटक के भीतर सभी तरफ से फैलाकर रोपित किया जाता है और ईंट की टुकडियों या कंकड़ की एक दूसरी परत बिछाकर इसे कसकर पैक कर दिया जाता है।

सिंचाई प्रबंधन

ऑर्किड्स को अनिवार्य रूप से कोहरे के मौसम में उगाया जाता है जिससे वायवीय जड़ों को अवशोषण के लिए आवश्यक नमी मिलती रहती है।

खाद और उर्वरक

3 सप्ताह तक प्रत्येक सप्ताह 20:20:20 के अनुपात में एन पी के का प्रयोग करें और उसके बाद 10:30:20 के अनुपात में एन पी के का उपयोग किया जाता है। ट्रेस तत्वों वाले रेडीमेड उर्वरक उपलब्ध हैं जो कि अत्यंत प्रभावी होते हैं।

रोग और नाशीजीव

रोग : ब्लैक रॉट, विल्ट और विषाणु रोग सामान्य तौर पर देखे जाते हैं।

ब्लैक रॉट : यह सबसे पहले पत्तियों पर जल से लतपथ धब्बे के रूप में दिखता है जो कि पत्ती के सिरे से तुरंत काला पड़ने लगता है और यह सड़न पूरी तरह काली होने तक काफी तेजी से फैलते हुए पत्ती के निचले हिस्से तक पहुंच जाती है। रोगयुक्त पत्तियों और पौधों को हटाकर नष्ट कर दिया जाना चाहिए। अत्यधिक सिंचाई और पौधों की एक ही जगह भरमार से बचना चाहिए। बोर्डिऑक्स मिक्सचर (1%), कैप्टेन (0.2%) छिड़काव की सलाह दी जाती है।

विल्ट : इसके लक्षणों में पत्तियों का मुरझाना, जड़ों का गलना, जड़ों का सड़ना और उसके बाद कम समय तक जीवित रहने वाले कुछ एक फूलों का उगना शामिल है। रोगमुक्त मिट्टी में रोगाणु रहित पौधरोपण सामग्री का उचित उपयोग करने की सलाह दी जाती है।

विषाणु रोग :

1. *ब्लोज़म ब्राउन नेक्रोटिक स्ट्रीक* : यह कैट्लिया प्रजातियों पर हमला करता है और फूलों पर भूरे धब्बे, धारियां बन जाती हैं और पूरा फूल बिखर जाता है; पत्तियों में भी पीली धारियां दिख सकती हैं। कटिंग नाइफ के जरिए यह एक पौधे से दूसरे पौधे में फैलता जाता है।
2. कैट्लिया एवं अन्य ऑर्किडों में मोज़ाइक फुलावर ब्रेक : यह या तो फूल में चितकबरेपन के साथ रंग में हल्के से बिखराव के रूप में, किंतु कोई विकृति नहीं या फूल में विकृति और चितकबरेपन के साथ–साथ रंग में काफी अधिक बिखराव के रूप में नजर आता है। पत्तियां चित्तीदार हो जाती हैं और कभी–कभी मुड़ भी जाती हैं। यह रोग हरी–पीच एफिड माइज़स पर्सिके से फैलता है।
3. *सिम्बिडियम मोज़ाइक, ब्लैक–स्ट्रीक या कैट्लिया लीफ–निक्रोसिस* : यह कई ऑर्किडों में पाया जाने वाला सर्वसामान्य विषाणु रोग है। सिम्बिडियम होने पर यह पहले पत्तियों पर मोज़ेक चित्ती बनाता है और इन पर धब्बे, धारियां और छल्ले दिखते है; कभी–कभी पुराने पत्तियों पर छल्ले और अक्सर लंबी–लंबी धारियां बन जाती हैं। यदि पत्तियां समय से पहले की मृत हो जाती हैं तो सामान्य रूप–रंग के कुछ एक छोटे फूल उगते हैं।
4. *ऑडोंटोग्लूअसम रिंग–स्पॉट* : पुरानी पत्तियों पर छोटे–छोटे नेक्रोटिक धब्बे या छल्ले बनने लगते हैं तथा नई पत्तियों पर हल्का हरा या पीला धब्बा बनना शुरू हो जाता है। पत्तियां पीली पड़ सकती हैं और 2–3 महीनों में झड़ सकती हैं। फूल लगने के कोई लक्षण नहीं दिखते हैं। किसी भी रोगवाहक का पता नहीं चला है।

पौधों को अलग करते समय गर्म या विसंक्रमित चाकू का उपयोग करके इस रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है। बर्तन में डाले जाने वाले मीडियम को जीवाणु मुक्त बनाना या धुंआ देना। रोगमुक्त पौधरोपण सामग्रियों का उपयोग करना तथा कीटनाशकों का नियमित रूप से छिड़काव करना इस रोग के प्रसार को रोकने में मदद करता है। ऑर्किड्स के खेतों से संक्रमित पौधों को हटा लिया जाना चाहिए।

नाशीजीव : नाशीजीवों में, एफिड, मीली बग, स्केल इन्सेक्ट, स्लग्स, घोंघा और मकड़ी कीट ऑर्किड्स को नष्ट करने वाले प्रमुख कीट हैं।

एफिड : एफिड के हमले में, पत्तियों एवं डंठलों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। फूलों में विकार हो सकता है या ये बंद ही रह जाते हैं। खास कर नए पौधों में एफिड देखे जाते हैं। पानी या हल्के किचन डिटरजेंट से काले फंगस को धो लें। निकोटीन या पाइरीथ्रीम वाले कीटनाशी का प्रयोग करें।

पीली बग : रूईदार फफूंदी खासतौर पर संधिस्थलों जैसे कि दो पत्तियों के बीच क्रूक को नुकसान पहुंचाती है। पौधे का विकास अवरूद्ध हो जाता है या ये मुरझाने लगते हैं। मिथाइलयुक्त स्प्रिट में रूई के स्वाब को डुबोकर छोटे संक्रमणों को साफ कर दें। गंभीर संक्रमणों के लिए मेलाथिऑन या निकोटीनयुक्त कीटनाशी का प्रयोग करें।

स्केल्स : गहरे भूरे या सफेद रंग का गोल या अंडाकार शेल जिस पर प्राय: कजली रंग की फफूंदी लगी होती है। पौधे का विकास रूक सकता है। पत्तियां पीली पड़कर गिर सकती हैं। छोटे संक्रमणों को ट्वीजरों या चाकू की मदद से मिथाइलयुक्त स्प्रिट वाली रूई के स्वाब से हटा दें। वयस्क स्केलों पर मेलाथियॉन या निकोटीनयुक्त कीटनाशी का छिड़काव करें।

स्लग और घोंघे : पौधे में छिद्र बन जाते हैं और एक संकीर्ण दरार नज़र आती है जहां से कीट निकलते हैं। तने के चारों ओर कॉटन वूल का गुच्छा बांध देने से फूल सुरक्षित रहेंगे। मेटलडिहाइड युक्त कीटनाशी चारा डालकर स्लग और धोंघे को फंसाएं या बियर तश्करी में स्लगों को प्रलोभन देकर डुबा दें।

स्पाइडर माइट : पत्तियां सफेद धब्बों के साथ गड्ढेदार या चित्तीदार नजर आने लगती हैं। पत्तियों की भीतरी सतह पर सफेद जाले दिख सकते हैं। जालों को हटाने के लिए उस स्थान को गर्म पानी में साफ करके हटा दें। मेलाथिऑन युक्त कीटनाशक का भारी छिड़काव करें।

उपज कटाई एवं सस्योत्तर प्रबंधन

फूलों को पूरी तरह विकसित होने पर ही काटें क्योंकि कली की अवस्था में काटे गए फूल जीवित नहीं बचते हैं। फूल एक महीने तक पौधों पर ताजे रह सकते हैं। जब इसे काट लिया जाता है तो यह 1 से 4 सप्ताह तक जीवित रहता है। डंठल के कटे हुए हिस्से को पानी से भरे प्लास्टिक ट्यूब में डाल दें। डंठलों पर रखी जाने वाली कलियों की संख्या अलग–अलग स्थानों में अलग–अलग होती है। प्राय: एक डंठल पर कुल फूल का 25–50% रखा जाता है। गंतव्य स्थान पर पहुंचने के बाद डंठलों को कॉटन से निकाल दिया जाता है और इन्हें फिर से पानी में डाल दिया जाता है। अच्छा यह होगा कि प्रत्येक दूसरे–तीसरे दिन डंठल के निचले भाग के छोटे से हिस्से को काट दिया जाए। डंठलों की जीवन क्षमता को बढ़ाने के लिए इन्हें बोरिक एसिड (250 पीपीएम) या स्टैंडर्ड 8 एचक्यूसी सॉल्यूशन या 5 एमएम पोटाशियम क्लोराइड या 0.5 एमएम कोबाल्ट क्लोराइड़ के घोल में डाल दें।

ग्रेडिंग और पैकिंग

ऑर्किड्स के फूलों और डंठलों को केवल तभी काटा जाता है जब वे ताजे, कड़े, सीधे और किसी भी प्रकार के विकार से मुक्त हों। प्रति डंठल फूलों की संख्या, फूलों के आकार और रूप तथा डंठलों पर उनके क्रम विन्यास के आधार पर ग्रेडिंग और श्रेणीकरण किया जाता है। ऑर्किड्स के फूलों को 10 से 15 दिनों के लिए 5^0 से 8^0 से. तापमान पर स्टोर रखा जा सकता है। फूल के प्रत्येक डंठल को गीले कॉटन वाले पॉलिथिन बैग ट्यूब में पैक कर दिया जाता है। फूलों को नलीदार बक्से में पैक कर दें और खाली जगह को थर्मोकॉल या वैक्स पेपर की कतरन से भर दें।

55.रजनीगंधा

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

रजनीगंधा एक महत्वपूर्ण वाणिज्यिक फूलों की फसल है जिसे भारत सहित विश्व के अनेक उपोष्ण एवं उष्णकटिबंधीय भागों में व्यापक रूप से उगाया जाता है। यह एक बहुप्रयोजनीय फूलों का पौधा है जिसे विभिन्न प्रकारों एवं अवसरों पर उपयोग किया जाता है। इसके फूलों को खुले फूल, सजावटी फूल (कटफुलावर) के लिए उपयोग किया जा सकता है। एकल पंखुड़ी वाले खुले फूलों को फूलमालाओं एवं फूलों की सजावट के लिए उपयोग किया जाता है जब कि दो पंखुड़ी वाले सजावटी फूलों का उपयोग बाउल, फूलदान या पुष्प गुच्छ में उपयोग किया जाता है।

जलवायु एवं मृदा

रजनीगंधा की बेहतर वृद्धि एवं खुशबू के लिए तेज प्रकाश और उच्च तापमान की आवश्यकता होती है। रजनीगंधा सूर्य प्रकाश पसन्द पौधा है, अनुकूलतम वृद्धि एवं फूलों की उच्च उपज के लिए ऐसे स्थान का चयन किया जाता है जहां सूर्य प्रकाश प्रचुर मात्रा में हो। ग्रीष्मकाल के दौरान दोपहर के बाद के समय में थोड़ी छांव वांछनीय है। यदि अधिक छांव हो तो पौधे लम्बे पतले उगते हैं और पुष्पण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। मृदा में अच्छी जल धारण क्षमता होनी चाहिए एवं जल निकासी महत्वपूर्ण है चूंकि अल्प अवधि के लिए भी जलभराव हो तो जड़ प्रणाली को क्षति पहुंचती है और वृद्धि एवं पुष्पण प्रभावित होता है। गमलों में उपयोग के लिए मिट्टी के दो भाग तथा लीफ माउल्ड एवं मोटी रेत का एक भाग मिलाया जाता है।

किस्में

पर्ल (डबल), डबल फूलों की अपेक्षा एकल फूलों के किस्म में अधिक खुशबू होती है। सिंगल मेक्सिकन, रजत रेखा, स्वर्ण रेखा, श्रृंगार, सुवासिनी, प्रज्वल, वैभव, फुले रजनी आदि।

प्रवर्धन

बल्बों का उपयोग किया जाता है। लगभग 1200 कि.ग्रा. बल्बों (1 से 1.5 लाख बल्ब /हे.) की आवश्यकता होती है।

रोपण

बल्बों का रोपण मेढ़ या ऊंची क्यारियों में 25 से.मी. x 30 से.मी. की दूरी पर रोपण किया जाता है। अधिकतम फूल उत्पादन के लिए द्वीपों में जनवरी माह में रोपण उपयुक्त होता है।

सिंचाई प्रबंधन

नए पुष्पवृन्तों को प्रोत्साहित करने के लिए पूर्ण होने पर पुष्पण डंठल (फुलावरिंग स्टाल्क) को काट दिया जाता है। फूलों के दाग के पूरा होने पर कटौती की जाती है। बल्बों को खेत में छोड़ दिया जाता है ताकि नई फसल उग सके। मौसमी स्थितियों के अनुसार 5–10 दिनों में एक भारी सिंचाई की आवश्यकता होती है।

खाद एवं उर्वरक

एन पी के उर्वरक नाइट्रोजन : फास्फोरस पेंटाक्साइड : पोटाशियम किग्रा/हे 100:50:50 के अनुपात में सिफारिश की जाती है। इनमें से नाइट्रोजन का आधा भाग, फास्फोरस, तथा पोटाशियम का सम्पूर्ण भाग रोपण के दौरान दिया जाता है। शेष नाइट्रोजन का भाग जब फूलों के स्पाइक उगते हैं तब दिया जाता है।

पादप संरक्षण

पत्तियों को खाने वाले स्लग एवं टिड्डी (ग्रास हॉपर) तथा स्पाइक को क्षति पहुंचाने एवं विकृतियां उत्पन्न करने वाले थ्रिप्स प्रमुख नाशीजीव हैं। इन नाशीजीवों के विरूद्ध मेलाथियॉन तथा कार्बारील प्रभावी हैं। स्केलिरोशियम रॉल्फसी से होने वाला मुरझान रोग प्रमुख है। इसके नियंत्रण के लिए पौधे के आसपास कवकनाशकों जैसे कॉपर आक्सीक्लोराइड 2% से मृदा का ड्रेंचिंग किया जाना चाहिए।

कटाई

मेज सजावट के लिए रंजनीगंधा फूलों के मूल से स्पाइक को काट लिया जाता है या फूल मालाओं तथा अन्य सजावट के लिए इन्हें स्पाइक से तोड़ लिया जाता है। औसतन 15,000 से 20,000 कि.ग्रा. फूलों की उपज की आशा की जाती है।

पैकिंग

निर्यात के लिए फूलों को कोरूगेटेड बक्सों में पैक किया जाता है।

56.गुलदाउदी

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय व महत्व

गुलदाउदी कम्पोज़िटे फैमिली से संबंधित अत्यंत लोकप्रिय फूलों की फसल है। इसे खुले फूल, कट फूल व गमले के फूल के रूप में महत्व दिया जाता है। यह हमारे देश में खुले फूलों की श्रेणी में तीसरे स्थान पर रखा गया है। गुलदाउदी के फूल की फूलदान अवधि लम्बी होती है और विभिन्न रंगों और आकारों में वर्षभर उपलब्ध होती है।

किस्में

चंद्रकांत, चन्द्रिका, इंदिरा, कीर्ति, नीलिमा, पंकज, राखी, रविकिरण, रेड गोल्ड, येलो गोल्ड, येलो स्टार, स्नो बाल, रेगन व्हाइट, ऑटम क्वीन, प्रीमियर तथा माउन्टेयनीर।

जलवायु व मृदा

प्रकाश और तापमान, फूलों की वृद्धि एवं पुष्पण को प्रभावित करने वाले दो महत्वपूर्ण कारक हैं। लम्बे दिन (कम से कम 13 घंटे) पौधों की वानस्पतिक वृद्धि के लिए तथा छोटे दिन (8 घंटे से कम) पुष्पण के लिए आवश्यक होते हैं। इसे 70–90% की आर्द्रता की आवश्यकता होती है। रोपण स्थान के अनुसार रोपण तिथियां निर्धारित करनी चाहिए ताकि इन किस्मों की वानस्पतिक अवस्था् के दौरान इन्हें लम्बे दिन और पुष्पण के लिए छोटे दिन मिल सकें।

अंडमान व निकोबार द्वीपों में रोपण अप्रैल– मई में किया जाना चाहिए। गुलदाउदी में उथली एवं रेशेदार जड़ें होती हैं जो जल भराव के प्रति संवेदनशील होती हैं और यदि वायु संचारण नहीं है तो पौधों में जड़ सड़न एवं मुरझान रोग की संभावना बन जाती है। बलुई दोमट मृदा वांछनीय होती है चूंकि इस मृदा में नमी बनी रहती है एवं इसमें वायु संचारण भी अच्छी होती है। जैविक पदार्थो की अच्छी मात्रा एवं 6.5 पी.एच. अति आवश्यक है।

प्रवर्धन

गुलदाउदी की वाणिज्यिक खेती के लिए प्रवर्धन टर्मिनल जड़युक्त कतरनों एवं अंकुरों (सकर) के उपयोग से किया जाता है। फूल लगने के बाद तने को भूतल के ऊपर से काट दिया जाता है इससे बगल में अंकुर (सक्कर) बढ़ते हैं जिन्हें मूल पौधे से अलग कर लिया जाता है और क्यारियों में रोपित किया जाता है। यह सुनिश्चित कर लें कि कतरने रोग रहित विशेषकर विषाणु रहित हों। पौध रोपण का उचित समय मई–जून माह है।

रोपण प्रणाली

अच्छी उपज लेने के लिए गुलदाउदी को खुले खेतों एवं संरक्षित खेती के अंतर्गत उगाया जा सकता है। अच्छी जड़ों वाले अंकुरों/कतरनों को 30x 20 सें.मी. की दूरी बनाकर क्यारियों में रोपण किया जाता है।

रोपण की सघनता न केवल पौधों की वृद्धि को प्रभावित करती है बल्कि फूलों की उपज एवं गुणवता को भी प्रभावित करती है। यह रोपण के समय एवं किस्म पर निर्भर करता है। ग्रीनहाउस के अंतर्गत अनुकूल पौध सघनता 32 पौधे/ वर्गमीटर है। खुले खेत की व्यवस्था में अंकुरों को 30 सें.मी. की दूरी पर रोपित किया जाता है।

सिंचाई प्रबन्धन

प्रारंभिक अवस्था के लिए ड्रिप सिंचाई उपयुक्त होती है, जबकि बड़े पौधों के लिए माइक्रो जेट सिंचाई की जा सकती है।

खरपतवार एवं अंत: शस्य क्रिया

समान्यत: आवश्यकतानुसार निराई गुड़ाई हाथ से करते हैं, जो आमतौर पर वर्ष में 8–10 बार की जाती है। खरपतवारों को नियंत्रित करने के अलावा मृदा में वायु संचारण के लिए इसे ढीला एवं छिद्रदार बनाया जाता है। पुष्पण को प्रेरित करने के लिए दिन की लम्बाई को 13 घंटों से कम किया जाता है। इसके लिए पौधों को गहरे शेड नेट से ढक दिया जाता है। रोपण के बाद चौथे एवं सातवें सप्ताह में पौधों के सिराओं को तोड़ दिया जाता है। कलियों को तोड़ लेने पर अपरिपक्व कलियों के स्थान पर कुछ बड़े एवं गुणवत्तापूर्ण फूल खिलते हैं।

गुलदाउदी कई प्रकार की होती है। गुलदाउदी के विभिन्न प्रकार के फूल के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए पौधों के सिरों एवं कलियों की तुड़ाई भिन्न–भिन्न समय तथा विभिन्न अंतरालों पर की जाती है।

स्प्रे टाइप : यह 4–5 फूलों का एक गुच्छा होता है। मुख्य कली को कुछ सप्ताह पहले इस प्रकार से हटाया जाता है कि उस तरफ की कली तेजी से बढ़ सके। तने की लम्बाई 80–100 सें.मी.एवं फूल का व्यास 40–100 मि.मी. होता है।

संतिनी टाइप : यह स्प्रे टाइप के समान ही होती है परन्तु फूल छोटे (लगभग 40 मि.मी.व्यास) और तने की लम्बाई 55–60 से.मी. के बीच होती है।

स्टैण्डर्ड टाइप : इसमे मुख्य कलियों को एक एकल कली के रूप में विकसित करने के लिए पार्शव कलियों को हटाया जाता है। तने की लम्बाई 80–100 सें.मी. एवं फूल का व्यास 100– 200 मि.मी. होता है।

खाद व उर्वरक

चूंकि खाद देने से फसल बढ़ती है, अत: 8–10 टन अच्छी् तरह गली हुई गोबर की खाद/एकड़ डाल दें। मौलिक उर्वरीकरण के लिए 5–10 कि.ग्रा. ट्रिपल सुपरफास्फेट तथा 5–7 कि.ग्रा. मैग्नीशियम सल्फेट/100 वर्गमीटर की दर से दिया जाता है। बाद के उर्वरकों को एन पी के (1.0:0.5:1.0) सिंचाई जल के साथ दिया जाता है। तत्पश्चात जब पौधे फूलों की अवस्था में पहुंच जाते है तब पौधों को एन पी के (1.0:0.5:1.0) दिया जाता है।

रोग एवं नाशीजीव

गुलदाउदी का मुख्य नाशीजीव एफिड्स हैं जो अंतिम प्ररोहों एवं पत्तियों की निचली सतहों पर झुण्ड बनाकर उनका रस चूसकर भोजन ग्रहण करते हैं। इन्हें नियंत्रित करने के लिए मेलाथियान 50 ई.सी. का 1 मि.ली./ली. की दर से छिड़काव किया जा सकता है।

जड़ गलन, भूरी फफूंदी, पाउडरी मिल्ड्यू व सफेद रतुआ आदि सामान्य रोग हैं।

जड़ गलन : नमीयुक्त,गर्म स्थितियों में तने के कतरन जड़ बनाने वाली क्यारियों में गलने लगते हैं। फफूंदी घावों के माध्यम से स्थापित पौधों में घुसकर जड़ों को गला देती हैं। रोगग्रस्त पौधा अचानक मुरझा जाता है। खेत में पौधों को लगाने से पहले मृदा का रोगाणुनाशन, उचित जल निकासी की व्यवस्था एवं रोगग्रस्त पौधों को तुरंत हटाना मुख्य प्रबन्धन पद्धतियां हैं।

भूरी फफूंदी : संक्रमण किनारों से शुरू होकर मध्य भाग की ओर बढ़ता है और कभी कभी संक्रमित ऊतक अर्धगोलाकार बैंडों के रूप में मूल के पास दिखाई पड़ता है। संक्रमित कलियां नहीं खिलती हैं। पौधों के बीच दूरीके व्यवस्थापन से इस रोग को कम करने में मदद मिलती है। इस रोग का नियंत्रण थीरम 0.3% या कैप्टान 0.2% के छिड़काव से किया जा सकता है।

पाउडरी मिल्ड्यू : पाउडरी मिल्ड्यू से संक्रमित पत्तियां सफेद, धूसर रंग के पाउडर से ढक जाती हैं। संक्रमित पत्तियां पीली पड़कर सूख जाती हैं। रोग को कम करने के लिए छांव हटा दिया जाना चाहिए। भिगाने योग्य सल्फर 0.2% का 10–15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव से इसे नियंत्रित किया जा सकता है।

सफेद रतुआ : बहुत से फुंसीनुमा दाने निकल आते हैं जिससे पत्तियां सूख जाती हैं। यह रोग ठन्डे प्रदेशों में गंभीर होता है। इस रोगको नियंत्रित करने के लिए, रोपण हेतु अंकुरों को स्वस्थ पौधों से चुनना चाहिए। रोपण तथा पौधों को गमलों में बदलते समय नीचे की पत्तियां तोड़ लेनी चाहिए। लाइम सल्फर या भिगाने योग्य सल्फर 0.2% से एक या अधिक बार छिड़काव करना चाहिए और इसे 10– 15 दिनों के अंतरालों पर दोहराया जाता है।

कटाई, उपज एवं सस्योतर प्रबन्धन

जब 75% फूल खिल जाऐं तथा परागण से पूर्व का समय फूलों की तुड़ाई के लिए उपयुक्त समय है। फूल के डंठलों को जड़ से 10 सें.मी. ऊपर से काटा जाता है। पौधों को कटाई से पहले सिंचाई की जाती है। एक हेक्टेयर से अच्छी गुणवत्ता के एक लाख फूल प्राप्त किए जा सकते हैं। पांच पांच फूलों के डंठलों को रबड़ बैंड से एक साथ बाँध कर गुच्छे बनाए जाते हैं और प्लास्टिक के पारदर्शी आवरण से ढक देते हैं। परिवहन से पूर्व फूलों को चार घंटों के लिए ठण्डे स्थान पर रख देते हैं। फूलों की डंठलों की लम्बाई, फूलों के रंग व फूलों के व्यास के आधार पर श्रेणीकरण किया जाता है जैसे गोल्डन (डंठल/स्लीव 10 तथा 6 या अधिक खिले फूल), सिल्वर (डंठल/स्लीव 15 तथा 4–5 या अधिक खिले फूल), और ब्रोंज (डंठल/स्लीव 20 तथा 3 खिले फूल)। फूलों को स्लीव्स में पैक कर 91x43x15 सें.मी. की माप के बक्सों में रखा जाता है।

57.तुलसी

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

तुलसी या पवित्र तुलसी द्विवार्षिक झाड़ी है जो लेमियासी परिवार से संबंधित है। वैदिक काल से ही भारत के लोगों के लिए यह पौधा इसके बहुप्रयोजनों के कारण परमपूज्य है। अब भी अनेक लोग इसकी पूजा करते हैं। तुलसी के पवित्र गंधीय/इतर के तेल में 71 प्रतिशत यूजेनॉल होता है और इसकी तुलना लवंग तेल से की जा सकती है। यूजेनॉल का व्यापक उपयोग इत्र, सौंदर्य प्रसाधन, औषधीय एवं मिष्ठान्न उद्योग में किया जाता है। तुलसी की पत्तियों के रस में एंटीसेप्टिक, एक्सपेक्टोरेंट, एंटीपैरेटिक तथा स्मरण शक्ति वृद्धि करने वाले गुण होते हैं। तुलसी उन कुछ पौधों में से एक है जो पर्यावरण की शुद्धि करते हैं।

मृदा एवं जलवायु

यह पर्याप्त रूप से मजबूत होता है और किसी भी प्रकार की मृदा में उग सकता है, केवल अत्यधिक लवणीय, क्षारीय या जल भराव स्थितियों वाली मृदाओं को छोड़कर। तथापि जैविक पदार्थों से समृद्ध बलुई दोमट मृदा उपयुक्त होती है। इस फसल में व्यापक अनुकूलनीयता है और इसे उष्ण कटिबंधीय एवं उपोष्ण जलवायुवीय क्षेत्र में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। पौध वृद्धि एवं तेल उत्पादन के लिए लम्बी अवधि के दिन एवं उच्च तापमान अनुकूल होते हैं।

किस्में

वर्तमान समय में इस फसल के अंतर्गत कोई नामित किस्में नहीं हैं और केवल 1) हरे प्रकार की (श्री तुलसी) 2) जामुनी प्रकार की (कृष्ण तुलसी) की खेती की जाती है।

प्रवर्धन एवं नर्सरी

फसल का प्रवर्धन बीजों या कतरनों के माध्यम से होता है। बीजों के माध्यम से तुलसी के प्रवर्धन के लिए, बीजों को नर्सरी क्यारियों में बोया जाता है। नर्सरी का स्थान वांछनीय रूप से आंशिक छांव वाला होना चाहिए जहां पर्याप्त सिंचाई सुविधा हो। खेत की 30 से.मी. गहराई तक जोताई की जाती है और अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद (2 कि.ग्रा./वर्गमीटर) मिट्टी में मिलाकर मिट्टी को भुरभुरा बनाया जाता है। खेत में 4.5 मी x 1.0 मी x 0.2 मी. आमाप की बीज क्यारियां तैयार की जाती हैं। चूंकि इसके बीज काफी छोटे होते हैं, अत: बीजों को रेत के साथ 1:4 अनुपात में मिलाकर वर्षाकाल प्रारम्भ होने से 2 माह पूर्व नर्सरी क्यारियों में बोया जाता है। बीजों से 8–12 दिनों में अंकुर फूटते हैं और 6 सप्ताह में 4–5 पत्तियों के साथ नवोद्–भिद पौधे प्रतिरोपण के लिए तैयार हो जाते हैं। वनस्पतिक रूप से इसका प्रवर्धन सिरा कतरनों से 90–100 प्रतिशत सफलता के साथ अक्टूबर से दिसम्बर के दौरान किया जा सकता है। इस प्रयोजन के लिए 8–10 गांठ वाले 10–15 से.मी. लम्बी कतरनों का उपयोग किया जाता है। इसे इस प्रकार तैयार किया जाता है कि प्रथम 2–3 जोड़ी पत्तियों को छोड़कर शेष पत्तियां निकाल दी जाती हैं। तत्पश्चात इन्हें अच्छी तरह तैयार की गई नर्सरी क्यारियों या पॉलीथीन बैगों में रोपा जाता है। 4–6 सप्ताह में जड़ें निकल आती हैं और ये मुख्य खेत में प्रतिरोपण के लिए तैयार हो जाते हैं।

रोपण की अवधि एवं विधि

पौधों का रोपण पंक्तियों के बीच 40 से.मी. तथा पौधों के बीच 40 से.मी. की दूरी बनाकर किया जाता है। रोपण से पूर्व खेत की अच्छी तरह जोताई कर भुरभुरा बनाया जाता है। रोपण कार्य वर्षाकाल के दौरान किया जाता है जिससे पौधों को स्थापित होने में सहायता मिलती है।

खाद देना

खेत की तैयारी के दौरान 15 टन/हे. की दर से गोबर की खाद डाली जाती है। एनपीके की सिफारिश की गई मात्रा 260 कि.ग्रा. यूरिया, 1875 कि.ग्रा. सूपर फास्फेट तथा 100 कि.ग्रा. म्यूरिएट ऑफ पोटाश प्रति हेक्टेयर है। गोबर की खाद के साथ नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाशियम की पूरी मात्रा बेसल डोज के रूप में डाली जाती है और शेष नाइट्रोजन की मात्रा दो किस्तों में पहली एवं दूसरी कटाई के बाद डाली जाती है।

सिंचाई प्रबंधन

रोपण के पश्चात एक माह तक सप्ताह में दो बार सिंचाई की जाती है ताकि पौधे अच्छी तरह स्थापित हो सकें। इसके बाद वर्षा और मृदा की नमी के अनुसार साप्ताहिक अंतराल पर सिंचाई की जाती है।

खरपतवार प्रबंधन

रोपण के एक माह बाद पहली निराई की जाती है और दूसरी इसके 30 दिन बाद। तत्पश्चात निराई की आवश्यकता नहीं होती है, पौधे झाड़ी के रूप ले कर भूमि को कवर कर देते हैं जिससे खरपतवार समाप्त हो जाते हैं। तथापि प्रत्येक कटाई के पश्चात निराई की जानी चाहिए ताकि पौधों के बीच के स्थान पर खरपतवार की वृद्धि न हो सके।

पौध संरक्षण

नाशीजीव

लीफ रोलर प्रमुख कीट हैं। ये कीट दिखने पर इनके नियंत्रण के लिए फसल पर 0.2% इमिडाक्लोरोपिड 1 मि.ली./ली की दर से छिड़काव करें।

रोग

नवोद्–भिद पौधों का मुरझान तथा जड़ सड़न प्रमुखत: देखा गया है। नवोद्–भिद पौधों का मुरझान तथा जड़ सड़न के नियंत्रण के लिए पादप स्वच्छता उपायों को अपनायें। बीजों का उपचार कैप्टन से 5 ग्रा./कि.ग्रा. की दर से किया जा सकता है।

कटाई

फसल की कटाई के लिए भूमि से 15 से.मी. छोड़कर पौधे को पूरी तरह काट लिया जाता है, ताकि आगे की कटाई हेतु पुन: उत्पादन सुनिश्चित हो सके। रोपण के 90 दिनों बाद पहली कटाई की जाती है, तत्पश्चात् प्रत्येक 75 दिनों के अंतराल पर कटाई की जा सकती है। फसल की कटाई प्रकाशमान धूप के दिनों में की जानी चाहिए ताकि अच्छी उपज एवं गुणवत्ता युक्त तेल प्राप्त हो सके।

उपज

औसतन, तुलसी से 10,000–15,000 कि.ग्रा. ताजा शाक प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष प्राप्त होता है। चूंकि शाक में 0.1–0.23% तेल होता है, प्रति हेक्टेयर 20–25 लीटर गंधीय/इत्रर का तेल प्राप्त होता है।

58.पिप्पली

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

वाणिज्यिक पिप्पली पाइपर लोंगम (एल.) का एक सूखा, परिपक्व व बिना पका हुआ फल है। जड़ व मोटे तनों के आधारीय भाग जिसे पिप्लमूल कहते हैं, में भी बहुत से औषधीय गुण होते हैं। पिप्लमूल को अनेक आयुर्वेदिक दवाइयां बनाने में, जैसे पिप्लियासव, लोहासव, रसनादीकाशायम व च्यवनप्राश आदि में प्रयोग किया जाता है। इसे वाताहर, पेट दर्द, विरेचक औषधि, हेमाटैनिक, आमातीरोधी, कफ रोधी व दर्द निवारक आदि दवाइयों के रूप में प्रयोग किया जाता है। देश के विभिन्न राज्यों में इस फसल की खेती वाणिज्यिक रूप में की जाती है। फिर भी भारत इसे दूसरे देशों, जैसे मलेशिया, इंडोनेशिया, सिंगापुर व श्रीलंका से आयात करता है। इसे अंडमान व निकोबार में वृक्षारोपण आधारित फसल प्रणाली में उगाया जा सकता है क्योंकि यह छाया के प्रति सहनशील होता है।

जलवायु और मृदा

पिप्पली की खेती अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में वर्षा आधारित फसल के रूप में तथा अन्य भागों में सिंचाई आधारित फसल के रूप में की जाती है। इसे उच्च आर्द्रता व बार–बार वर्षा की आवश्यकता होती है क्योंकि यह उथली जड़ वाली फसल है। पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए आंशिक छाया की आवश्यकता होती है। इसे अनेक प्रकार की मृदाओं में अच्छी तरह उगाया जा सकता है। इसकी खेती उच्च जैविक पदार्थों व अधिक जल धारण क्षमता वाली मृदा, चूना पत्थर वालीमृदा एवं कपास की उचित जल निकास वाली उपजाऊ काली मृदाओं में सफलतापूर्वक की जाती है। फिर भी इसकी खेती के लिए हल्की, छिद्रों एवं कार्बन युक्त उचित जल निकास वाली मृदाएं सबसे उपयुक्त होती हैं।

किस्में

देश में अब तक जारी की गयी केवल एक ही किस्म विश्वम है। यह किस्म केरल कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित की गयी है। इसे नारियल व सुपारी के बागानों में अंतर–फसलीय खेती के रूप में उगाने की संस्तुति की गई है। इसमें पुष्पण अवधि लम्बी होती है और फल स्थूलकाय, छोटे एवं मोटे होते हैं। बिना पके कच्चे फल काले हरे रंग के होते हैं। यह किस्म वर्ष में 240–270 दिनों तक आर्थिक उपज देती है। फलों में 20% शुष्क पदार्थ व 2.83 एल्क्लोइड होता है।

प्रवर्धन

पिप्पली का प्रवर्धन बेल के कतरनों से होता है और तने के किसी भाग से तीन से पाँच गांठो वाली कतरन रोपण के लिए प्रयोग की जाती है। तथापि टर्मीनल शूट्स को रोपण के लिए उपयोग किया जाता है। रोपण के 15–20 दिन के पश्चात् जड़ें निकलना शुरू होती हैं। कतरन को सीधे खेत में रोपित किया जा सकता है या खेत में प्रतिरोपित करने से पहले जड़ों को नर्सरी में अंकुरित कराया जाता है।

स्थान का चयन

खेत को दो से तीन बार जोतने के बाद एक या दो बार पाटा लगाया जाता है तथा जल निकास की सुविधा के लिए खेत में ढलान बनाया जाता है। जल–भराव की स्थिति में फसल जीवित नहीं रह पाती है।

रोपण की अवधि एवं विधि

पिप्पली का रोपण बरसात शुरू होते ही किया जाता है। पंक्ति से पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी लगभग 60 x 60 से. मी. दूरी रखी जाती है। यदि पौधे को पहले नर्सरी में उगाया जाना है तो नर्सरी की तैयारी का समय खेत में रोपण के समय से एक माह पहले किया जाना चाहिए। रोपण इस ढंग से किया जाता है कि तीन से चार गांठें मिट्टी के अन्दर एवं दो गांठें सतह से ऊपर रहें। रोपाई के 15–20 दिन पश्चात् अंकुर पैदा होने लगते हैं। सेसबनिया ग्रांडीफ्लोरा या एराइथ्रीना या दोनों की कठोर लकड़ियों को पिप्पली की अंकुरित कतरनों के समीप छाया व सहारा देने के किए लगाया जाता है। दक्षिण भारत में यह अंतर–फसल के रूप में सिंचाई वाले नारियल व सुपारी के बागानों में सफलतापूर्वक उगायी जाती है।

खाद देना

खेत की तैयारी के दौरान लगभग 20 टन/हेक्टेयर गोबर की खाद या अन्य कार्बनिक खाद दी जाती है। बाद के वर्षों में भी गोबर व अन्य कार्बनिक खाद वर्षाकाल प्रारम्भ होने से पहले देना पड़ता है। अभी तक इस फसल में किसी रसायन खाद देने की संस्तुति नहीं की गई है।

खरपतवार प्रबन्धन

प्रथम वर्ष के दौरान आवश्यकतानुसार खरपतवार निकाले जाते हैं। आमतौर पर दो से तीन बार निराई काफी होती है। जैसे ही फसल बढ़ती है और जमीन को ढक लेती है खरपतवारों से कोई गंभीर समस्या देखने को नही मिलती है।

सिंचाई प्रबंधन

गर्मी के महीनों में सिंचाई अत्यंत आवश्यक है। एक सप्ताह में एक से दो सिंचाई भूमि की जल धारण करने की क्षमता के अनुसार आवश्यक होती हैं। बरसात के मौसम के दौरान भी यदि कुछ समय तक वर्षा न हो तो सिंचाई करनी पड़ती है। सिंचित फसल में गर्मी के मौसम में भी फलों का उत्पादन लगातार होता रहता है।

पादप संरक्षण

फाइटोपथोरा पत्ती एवं तना गलन और एंथ्राक्नोज़ पिप्पली के प्रमुख रोग हैं। 0.5% बोडऑक्स मिश्रण 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें तथा 1.0% बोर्डोऑक्स मिश्रण से एक महीने के अंतराल पर मिट्टी की ड्रेंचिंग कर इन बीमारियों से होने वाले नुकसान को प्रभावी ढंग से कम किया जा सकता है। 0.25% नीम के बीज का रस या नीम से आधारित कोई भी कीटनाशक के प्रयोग से कोमल पर्ण समूह तथा स्पाइक्स को नुकसान पहुचाने वाले मीली बग को प्रभावी ढंग से नियत्रिंत किया जा सकता है।

कटाई एवं सस्योत्तर प्रबन्धन

रोपण के छ: माह बाद बेल में फूल लगते हैं। फलों को परिपक्वता प्राप्त करने में दो माह का समय लगता है। फलों का रंग काले हरे रंग में बदल कर पूर्ण रूप से परिपक्व होने के बाद पकने से तोड़ लिया जाता है। अधिक परिपक्व एवं पके फल की कटाई करने से उत्पाद की गुणवत्ता कम हो जाती है और वे सूखने के बाद आसानी से नहीं टूटते हैं। आमतौर पर फलों की परिपक्वता के आधार पर उन्हें तीन से चार बार में तोड़ा जाता है। परिपक्व व कच्चे फलों को धूप में सुखाया जाता है। यह सुखने के लिए 4–5 दिन का समय लगाता है और सूखने के बाद आसानी से टूट जाता है। ताजे व सूखे फलों का अनुपात 5:1 होता है। सूखे फलों को नमी प्रतिरोधी बर्तनों में संग्रहित किया जाता है। उत्पाद को एक वर्ष से अधिक समय के लिए संग्रहित नहीं करना चाहिए।

उपज

प्रथम वर्ष में सूखे फलों की उपज 100–150 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर होती है और यह 3–4 वर्ष में 750–1000 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर हो जाती है। इसके बाद उपज धीरे–धीरे घट जाती है और पांचवें वर्ष के बाद आर्थिक रूप से लाभदायक नहीं होती है। फलों के अलावा, जड़ व मोटे तने के आधारीय भाग को भी फसल हटाने से पहले एकत्रित किया जाता है। इनको 3.0 से.मी. से 5.0 से.मी. लम्बे टुकडों में काट कर सुखाया जाता है। औसतन लगभग 500 कि.ग्रा. जड़ें प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती हैं।

59.कालमेघ

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

कालमेघ एक कड़वा शाक है और इस सम्पूर्ण पौधे को औषधीय रूप से उपयोग किया जाता है। इस पौधे को कड़वापन का राजा भी कहा जाता है। सम्पूर्ण पौधा अनेक डाइटरपिनोयड्स का स्रोत है जिनमें से जल में घुलनशील कड़वा लेक्टोयन एण्ड्रोग्राफोलाइड महत्वपूर्ण है जो पौधे के सभी भागों में विभिन्न अनुपातों में मौजूद रहता है। पत्तियों में अधिकतम सक्रिय प्रमुख मात्रा (2.5%) होती है जब कि तने में कम मात्रा (2.0%) होती है।

मृदा एवं जलवायु

यह एक मजबूत पौधा है और अनेक प्रकार की मृदाओं में उग सकता है। इस फसल की उपयुक्त वृद्धि एवं उपज के लिए जैविक पदार्थों से समृद्ध लाल बलुई दोमट मिट्टी अत्यंत उपयुक्त होती है। इसकी खेती उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में अच्छी होती है। तथापि अच्छी तरह वितरित वर्षापात के साथ शीतल जलवायु उपयुक्त होती है। इस फसल को सफलतापूर्वक उगाने हेतु अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह अत्यंत उपयुक्त हैं।

किस्में

इस फसल हेतु कोई नामित किस्म उपलब्ध नहीं है।

प्रवर्धन एवं नर्सरी

कालमेघ का प्रवर्धन बीजों या कतरनों से किया जाता है। तथापि वाणिज्यिक उद्देश्य के लिए फसल का प्रवर्धन बीजों से किया जाना चाहिए। मुख्य खेत में सीधे बीज बोये जाते हैं या नर्सरी उत्पन्न नवोद्–भिद पौधों का प्रतिरोपण किया जाता है। नवोद्–भिद पौधों को उगाने के लिए बीजों को 1:1:1 अनुपात में रेत, मिट्टी तथा जैविक खाद भरे पॉलीथीन बैगों में रोपित किया जाता है। नर्सरी में 3 मी x 1.5 मी x 1.5 मी. आमाप की 5 से.मी ऊंची क्यारियों की पंक्तियों में भी बीज फैलाये जा सकते हैं। गोबर की खाद 20 कि.ग्रा. प्रति वर्गमीटर की दर से मिलाकर नर्सरी क्यारियां तैयार की जाती हैं। बीजों से 8–10 दिनों में अंकुर फूटते हैं। नवोद्–भिद पौधे जब 6 सप्ताह आयु के हो जाते हैं तो मुख्य खेत में प्रतिरोपित कर दिए जाते हैं।

रोपण की अवधि एवं विधि

प्रतिरोपित नवोद्–भिद पौधों के मामलों में, पौधों को 30 से.मी. x 15 से.मी. की दूरी बनाकर मुख्य खेत में रोपा जाता है। तथापि उच्च उपज के लिए 15 से.मी. x 15 से.मी. की दूरी उपयुक्त है। सीधे बीज बोने के संदर्भ में खेत की अच्छी जोताई कर भुरभुरा बनाया जाता है और 30 से.मी. की दूरी बनाकर फरो बनाए जाते हैं और 15 से.मी. दूरी पर 3–4 बीज बोये जाते हैं। बीज दर 600 से 650 ग्रा./हे. की सिफारिश की जाती है।

खाद देना

खेत की तैयारी के दौरान गोबर की खाद 25 टन/हे. की दर से डाली जाती है। सिफारिश की गई एन पी के की खुराक 165 कि.ग्रा. यूरिया, 465 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट तथा 165 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति हेक्टेयर है। गोबर की खाद तथा नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाशियम की आधी खुराक बेसल डोज़ के रूप में दी जाती है। शेष नाइट्रोजन की मात्रा पहली डोज़ के 30 दिन बाद दी जाती है।

सिंचाई प्रबंधन

प्रारम्भिक अवस्था में फसल को 3–4 दिनों के अंतराल पर सिंचाई दी जाती है, तत्पश्चात् मौसमीय स्थितियों के आधार पर अंतराल को बढ़ाकर एक सप्ताह किया जाता है।

खरपतवार प्रबंधन

निरंतर निराई से खेत को खरपतवार मुक्त रखा जाता है। प्रथम निराई रोपण के 20–30 दिनों के पश्चात की जाती है, तत्पश्चात एक या दो बार निराई की जाती है, उसके बाद बोवाई के 60 दिनों के पश्चात निराई की जाती है। कुल मिलाकर फसल की सम्पूर्ण अवधि में 4–5 बार निराई पर्याप्त है।

पादप संरक्षण

इस फसल में कोई गंभीर नाशीजीव या रोग नहीं देखा गया है।

कटाई एवं सस्योत्तर प्रबंधन

बोवाई के 90–120 दिनों में जब पौधों में फूल उग जाते हैं तो फसल कटाई के लिए तैयार हो जाती है। इस अवस्था में पौधे के तने को नीचे से 10–15 से.मी. छोड़कर पौधे को काट लिया जाता है, ताकि छोड़े गए तने से पौधा पुन: उग सके। दूसरी और अंतिम उपज पहली से 60 दिनों के बाद ली जाती है। कुछ लोग 6 माह की आयु के बाद सम्पूर्ण पौधे को काट लेते हैं। कटाई के बाद पौधों को भंडारण पूर्व 3–4 दिनों तक छांव में सूखाते हैं।

उपज

औसत उपज प्रति हेक्टेयर 2000 से 2500 कि.ग्रा. सूखी शाक होती है।

60.मंडूकपर्णी

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

मंडूकपर्णी उष्णकटिबंधीय जलीय और आर्द्र क्षेत्र में पनपने वाला एक बारहमासी सगंधीय जड़ी बूटी है। यह भारत, चीन, मेडागास्कर और अफ्रीकी मूल की है। इसे सामान्यत: कुष्ठ रोग, चर्म रोग, दस्त निवारण तथा ट्यूमर एवं व्रण विरोधी गतिविधि के लिए उपयोग किया जाता है। ताजी जड़ी–बूटी को पीसने पर एक सुगंध निकलती है और यह स्वाद में वमनकारी कड़वी होती है। भारत के कुछ भागों में संपूर्ण पौधे को रसोई की जड़ी बूटी माना जाता है और इसका उपयोग चटनी, अचार, ताजे पेय के रूप में किया जाता है। यह भी सूचना प्राप्त हुई है कि इसमें कीटनाशक गुण भी हैं। इन सब के अतिरिक्त इसे स्मरण शक्ति में सुधार तथा पागलपन में तंत्रिका टॉनिक के रूप में उपयोग किया जाता है। अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में इस औषधीय पौधे को मेंढ़क भाजी कहा जाता है और स्थानीय लोगों द्वारा इसका उपयोग खाना बनाने में किया जाता है।

मृदा एवं जलवायु

इसकी पैदावार जल निकायों के आसपास की नम एवं दलदली भूमि पर अच्छी होती है। क्षारीय मृदाओं की अपेक्षा अम्ली य मृदा में यह अच्छी तरह उगती है। इस फसल के लिए अच्छी नमी वाली चिकनी मिट्टी एवं जैविक पदार्थों से समृद्ध मृदा उपयुक्त होती है। इसकी अच्छी वृद्धि के लिए सुहावना मौसम उपयुक्त होता है। छायादार स्थानों पर यह पौधा अच्छी तरह उगता है। 50 प्रतिशत छाया में इसमें उच्च शाक तथा औषधीय द्रव्य की उपज देखी गयी है। अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में इसे रोपण आधारित फसल प्रणाली में अंतर्फसल के रूप में अच्छी तरह उगाया जा सकता है।

किस्में

सीआईएमएपी, लखनऊ ने उच्च शाक एवं एसियाटिकोसाइड उत्पन्न करने वाली किस्मों की पहचान की है नामत: मज्जा पोशाक और काया कीर्ति।

प्रवर्धन

इसका प्रवर्धन जड़युक्त गांठ एवं कुछ पत्तियों वाली तना कतरनों से किया जाता है। मौसम अनुकूल होने पर कतरनों को सीधे खेत में रोपित किया जाता है या वैकल्पिक रूप से इन्हें नर्सरी क्यारियों में लगाकर 4–6 सप्ताह बाद मुख्य खेत में प्रतिरोपित किया जाता है।

खेत की तैयारी एवं रोपण अवधि

खेत की अच्छी जोताई कर मिट्टी को भुरभुरा बनाया जाता है। तत्पश्चात खेत को सुविधाजनक क्यारियों में विभाजित किया जाता है। रोपण से एक या दो दिन पहले हल्की सिंचाई की जाती है ताकि जड़ अच्छी तरह स्थापित हो सके। पौधों को अक्टूबर माह के दौरान 30 से.मी. x 30 से.मी. की दूरी पर रोपित किया जाना चाहिए। अच्छी तरह स्थापित होने पर पौधे से भूस्तरियां उत्पन्न होती हैं।

खाद देना

खेत की तैयारी के दौरान गोबर की खाद 2 टन/हे. की दर से दी जाती है। रासायनिक उर्वरक देने के लिए 215 कि.ग्रा. यूरिया, 375 कि.ग्रा. सूपर फास्फेट तथा 60 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश की मात्रा उपयुक्त होती है। नाइट्रोजन का एक तिहाई भाग तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी खुराक प्रतिरोपण के दौरान तथा शेष नाइट्रोजन दो किस्तों में एक माह के अंतराल पर दी जाती है। अनुकूलतम वृद्धि के लिए चूने का उपयोग लाभदायक पाया गया है।

खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार फसल की सामान्य वृद्धि को बाधित करता है, अत: इनका उचित उन्मूलन आवश्यक है। प्रारम्भिक महीनों में 15–20 दिनों के अंतराल पर निराई की जानी चाहिए।

सिंचाई प्रबंधन

रोपण के पश्चात एक हल्की सिंचाई की जाती है। जब तक पौधा अच्छी तरह स्थापित नहीं हो जाता है तब तक 4–6 दिनों के अंतराल पर हल्की सिंचाई की जानी चाहिए। तत्पश्चात् सिंचाई खेत में फसल की आवश्यकतानुसार की जाती है।

कटाई एवं सस्योत्तर प्रबंधन

प्रारम्भिक अवस्था में जनवरी माह से पत्तियों की तुड़ाई 15 दिनों के अंतराल पर की जाती है। भारी कटाई मानसून से पूर्व जून माह में की जानी चाहिए। खेत में कुछ भूस्तरियों को छोड़ दिया जाता है ताकि पुनउत्पत्ति हो सके जिसकी कटाई अक्टूबर माह से हो सके।

उपज

औसतन एक हेक्टेयर क्षेत्र से 5500 कि.ग्रा. ताजे शाक, 2000 कि.ग्रा. सूखे शाक तथा 20 कि.ग्रा. एसियाटिकोसाइड की प्राप्ति होती है।

61.घृतकुमारी (एलो वेरा)

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय और महत्व

घृतकुमारी को प्रसाधन उद्योग एवं भारत में अनेक औषधियों के लिए भारी मांग के कारण वाणिज्यिक रूप से उगाया जाता है। इसकी रसीली पत्तियां पौधे का आर्थिक भाग होता है, इसकी रसीली पत्तियों से बनाया गया जैल, प्रसाधन उद्योग में शैम्पू, चेहरे की क्रीम व नमी प्रदायक पदार्थ बनाने में प्रयोग होता है। इसकी पत्ती में पाचन शक्ति बढ़ाने वाला, कामोत्तेजक, दस्तावर, एमंगोगिक, कशाय, प्रतिविशीय, कृमिनाशक व यकृत शक्ति वर्धक आदि के विकल्प मौजूद हैं। पत्ती की त्वचा हटाने के बाद इन्हें बुखार में, यकृत, प्लीहाव दूसरी ग्रंथियों, त्वचा रोगों, प्रमेह, कब्ज, मासिक रोग, बवासीर, पीलिया, गठिया रोग और कटे एवं जले के उपचार हेतु दी जाती हैं।

मृदा और जलवायु

इसे सीमान्तव एवं उप–सीमांत कम उपजाऊ मृदाओं में सफलतापूर्वक उगाया जाता है। पौधों में उच्च पीएच के साथ–साथ सोडियम व पोटाशियम वाली मृदाओं को सहन करने की प्रवृति होती है। इसकी वाणिज्यिक खेती के लिए मध्य उपजाऊ वाली रेतीली दोमट मृदा जिसका पीएच स्तर 8.5 तक हो, उपयुक्त होता है। यह भारत के लगभग सभी भागों यहां तक कि निरंतर सूखे की स्थितियों में भी उगाई जाती है हालांकि यह फसल उष्णकटिबन्धीय एवं उप–उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में अच्छी तरह उगती है।

किस्में

भारत में घृतकुमारी की कोई रिलीज की गई किस्में नहीं हैं। राष्ट्रीय पादप आनुवंशिकी संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली द्वारा पहचानी की गई एलोइन की उच्च मात्रा (20.7–22.8%) वाली किस्में आई.सी.111280, आई.सी.111269 एवं आई.सी.111273 उगायी जा सकती हैं।

स्थान का चुनाव

मृदा को अधिक गहराई तक नहीं छेड़ना चाहिए क्योंकि इसकी जड़ें 20–30 सें.मी. से अधिक गहराई तक नहीं जाती हैं। मृदाओं के प्रकार व कृषि जलवायुवीय स्थितियों के अनुसार 1– 2 जोताई कर के खेत को समतल किया जा सकता है। उपलब्ध सिंचाई के साधनों एवं ढलान को ध्यान में रखते हुए खेत को उपयुक्त आकार (10मी15x3मी.) के भूखण्डों में विभाजित किया जा सकता है।

प्रवर्धन

वाणिज्यिक खेती के लिए रोपण सामग्री अंकुर (सकर) होते हैं। लगभग 3–4 माह के अंकुरों जिनमें 3–4 पत्तियां हों और 20–25 सें.मी. लम्बे हो रोपण सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता है।

रोपण की अवधि एवं विधि

द्वीप में पौधों की अतिजीविता एवं वृद्धि के लिए अंकुरों को मानसून के दौरान रोपित किया जाता है। अंकुरों का रोपण 60x60 सें.मी. की दूरी पर गड्ढों में 15 से.मी. की गहराई में किया जाता है। अंकुरों के रोपण के पश्चात जड़ों के आसपास की मिट्टी को दबा कर उचित निकासी द्वारा बनाया जाता है ताकि जल भराव न हो। एक हेक्टेयर क्षेत्र में रोपण के लिए लगभग 28000– 34000 अंकुरों की आवश्यकता होती है।

खाद देना

आमतौर पर यह फसल दी गई खादों (गोबर की खाद या कपोस्ट) का बेहतर उपयोग करती है। खेत की तैयारी के दौरान लगभग 10–15 टन गोबर की खाद देनी चाहिए, तत्पश्चात भी खाद दी जानी चाहिए। यदि लकड़ी की राख पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो तो इसे गड्ढो में रोपाई के समय दिया जा सकता है, जिससे पौधों को स्थापित होने एवं पौधों की वृद्धि में सहायता होती है।

सिंचाई करना

फसल सूखे की स्थिति को भी अच्छी तरह से सहन कर लेती है, परन्तु अच्छी फसल के लिए वृद्धि की संवेदनशील अवस्थाओं में सिंचाई करना अति आवश्यक है। अंकुरों के रोपण के तुरन्त बाद पहली सिंचाई की जाती है, इसके बाद 2–3 सिंचाइयां पौधों के स्थापित होने तक की जाती हैं। हालांकि पूरे वर्ष 4–6 सिंचाइयां पौधों की उचित वृद्धि के लिए पर्याप्त होती हैं। प्रत्येक बार पत्तियों की तुड़ाई के बाद एक हल्की सिंचाई जल की उपलब्धता के आधार पर दी जाती है।

खरपतवार प्रबन्धन

खेत को पूरी वृद्धि काल के दौरान खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए।

पादप संरक्षण

इस फसल का मुख्य नाशीजीव मीली बग है। इसे नियंत्रित करने के लिए डाइमेथोएट 2 मि.ली./ लीटर जल में मिलाकर छिड़काव किया जाना चाहिए। इस फसल के मुख्य रोग पत्ती धब्बा, पत्ती सड़न और एन्थ्राकनोज़ रोग हैं। पत्ती सड़न एवं एन्थ्राकनोज़ रोग नियंत्रण के लिए 10 दिनों के अंतराल पर 10 ग्रा./ली. की दर से बेविस्टिन का छिड़काव किया जाना चाहिए। पत्ती धब्बा रोग नियंत्रण के लिए एक सप्ताह के अंतराल पर 0.2% डाईथेंन एम–45 का छिड़काव किया जा सकता है।

कटाई और उपज

लगभग 8 माह के बाद फसल कटाई के लिए तैयार हो जाती है। कटाई करते समय पौधों को हाथों से हटाया जा सकता है। भूमि में छूटे हुए टूटे प्रकंदो से नए अंकुर उग आते हैं जिससे अगली फसल उगायी जाती है। घृतकुमारी के रोपण के दूसरे वर्ष से पांचवें वर्ष तक वाणिज्यिक उपज प्राप्त होती है। इसके बाद आर्थिक उपज लेने की लिए पुन: रोपण की आवश्यकता होती है। ताजे वजन के आधार पर एक हेक्टेयर से औसतन 10000–12000 कि.ग्रा. उपज प्राप्त होती है।

62.गिलोय (टिनोस्पोरा)

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

टिनोस्पोरा को सामान्यत: गुडुची कहा जाता है जो एक महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है। यह पौधा भारत और श्री लंका के उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में पाया जाता है। इसका स्वाद कड़वा और कसैला होता है। इसका उपयोग चर्म रोग समस्याओं, बुखार, कमजोरी, पीलिया तथा मधुमेह रोग उपचार में किया जाता है। इस पौधे को दूध या जल में मिलाकर खाने पर बवासीर नियंत्रित होता है और खून बहने एवं कब्ज का रोकथाम होता है।

मृदा एवं जलवायु

इस फसल को विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है। इस पौधे के लिए मध्यम काली या लाल मृदा अत्यंत उपयुक्त है। इसे अन्य प्रकार की मृदाओं में भी उगाया जा सकता है बशर्ते मृदा में अच्छी जल निकासी एवं जैविक पदार्थों से समृद्ध हो। यह एक मजबूत पौधा है और इसे देश के अनेक भागों में विभिन्न प्रकार की जलवायुवीय स्थितियों में उगते हुए देखा गया है। तथापि इसके विलासमय विकास के लिए गर्म एवं नम जलवायु की आवश्यकता होती है।

किस्में

इस फसल की किस्में उपलब्ध नहीं हैं।

प्रवर्धन

टिनोस्पोरा का प्रवर्धन बीजों एवं वानस्पतिक रूप से कतरनों के माध्यम से किया जा सकता है। तथापि वाणिज्यिक खेती के लिए कतरनों से प्रवर्धन को वरीयता दी जाती है। वनस्पतिक प्रवर्धन के लिए छोटी अंगुली की मोटाई एवं 6 इंच लम्बी और दो गांठों वाली कतरनों का उपयोग किया जाता है। अच्छी सफलता के लिए कतरनों को ऊंची क्यारियों या पॉलीबैग में रोपित किया जाता है। कतरनों से जड़ निकलने में 8–10 सप्ताह लगते हैं और 10 सप्ताह बाद कतरन मुख्य खेत में रोपण के लिए तैयार हो जाती हैं।

रोपण की अवधि एवं विधि

रोपण से पूर्व खेत को 2–3 बार ठीक तरह से जोताई कर समतल बनाया जाता है। मई–जून में मानसून का प्रारम्भ रोपण के लिए उपयुक्त समय है। जड़युक्त कतरनों को मुख्य खेत में 1 मी. x 1 मी. की दूरी पर 30 घन से.मी. गड्ढों में रोपा जाता है।

खाद देना

खेत की तैयारी के दौरान 10 कि.ग्रा./हे. की दर से गोबर की खाद दी जाती है। खाद की सिफारिश की गई खुराक प्रति हेक्टेयर 130 किलोग्राम यूरिया, 250 किलोग्राम सूपर फास्फेट तथा 64 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश है। रोपण के दौरान गोबर की खाद, फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी खुराक दी जाती है, जबकि नाइट्रोजन वाले उर्वरकों को दो समान किस्तों में, पहली बार रोपण के दौरान और शेष भाग रोपण के दो माह बाद दिया जाता है।

सस्य क्रियाएं

टिनोस्पोरा एक बेल होने के कारण इसे उच्च उपज के लिए सहायता की आवश्यकता होती है जिसके लिए सहायक संरचनाएं या अन्य जीवित सहायक देने होंगे।

सिंचाई प्रबंधन

प्रारम्भिक अवस्था में प्रत्येक दिन सिंचाई करनी होती है और बाद में मृदा एवं जलवायुवीय स्थितियों के अनुसार सप्ताहिक अंतराल में करनी चाहिए। इसी प्रकार खरपतवार उन्मूलन भी आवश्यकतानुसार करना चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

आवश्यकतानुसार निराई की जाती है। हाथों से निराई का सुझाव दिया जाता है।

पादप संरक्षण

इस फसल में किसी गंभीर नाशीजीव की सूचना नहीं मिली है। इसमें सूटीमोल्ड प्रमुख रोग है। पौधों पर नुवाक्रॉन का छिड़काव किया जाता है। स्टार्च रोगाणुओं से चिपक जाती है और सूखकर गिर जाती हैं।

कटाई एवं कटाई प्रबंधन

इस औषधीय पौधे का आर्थिक अंश इसकी पत्ती है। फसल की पहली कटाई रोपण के 3–4 माह बाद की जा सकती है और तदुपरान्त दो माह के अंतराल पर। तुड़ाई के दौरान सावधानी बरतनी चाहिए कि बेल को नुकसान पहुंचाए बिना पत्तियों की तुड़ाई करनी चाहिए। इन पत्तियों को साफ फर्श पर सूखने के लिए बिछा दिया जाता है। एक सप्ताह बाद जब पत्तियां सूख जाती हैं तो पत्तियों को पॉलीथीन वाले बैगों में पैक कर दिया जाता है।

उपज

एक वर्ष में एक हेक्टेयर से 5000 कि.ग्रा. सूखी पत्तियों की उपज प्राप्त की जा सकती है।

63.ब्राम्ही

वी. भास्करन एवं के. अबिरामी

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

ब्राम्ही आर्द्र एवं दलदली क्षेत्र में पनपने वाली एक सामान्य वार्षिक लता है। सम्पूर्ण पौधे को औषधियों की देशज प्रणाली में तंत्रिका टॉनिक तथा मिरगी एवं मानसिक विक्षिप्तता के लिए उपयोग किया जाता है। इसे मूत्रवर्धक तथा दमा एवं गठिया रोगों के उपचार में भी उपयोग किया जाता है। इनके अलावा ब्राम्ही का उपयोग खांसी, बुखार और मधुमेह रोग नियंत्रण के लिए भी किया जाता है। स्मरण एवं जीवन शक्ति में वृद्धि गुणों के कारण यह चमत्कारिक पौधा पूरे विश्व में वाणिज्यिक खेती के लिए लोकप्रिय हो रहा है। स्मरण शक्ति बढ़ाने वाली औषधियों में ब्राम्ही को मुख्य घटक के रूप में उपयोग किया जाता है।

मृदा एवं जलवायु

भूमि पर फैलने वाली यह लता नहरों, जल निकायों के आसपास तथा दलदली भूमि पर उगती है। इस पौधे की वृद्धि पूरी तरह न सूखी हुई मृदा में अच्छी होती है। पौधे की अनुकूल वृद्धि के लिए अम्लीय प्रकृति की मृदा अच्छी होती है। यह पौधा उपोष्णक एवं उष्णकटिबंधीय स्थितियों में अपनाने योग्य है। इस पौधे की अनुकूलतम वानस्पतिक वृद्धि के लिए 33^0–40^0 से. तापमान तथा सापेक्ष नमी 60–65 प्रतिशत अच्छी होती है। इस फसल की खेती के लिए अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह जैसी उच्च वर्षापात वाला क्षेत्र अत्यंत उपयुक्त होता है। तथापि सूखे के दिनों में सिंचाई सुनिश्चित की जानी चाहिए।

किस्में

सीआईएमएपी, लखनऊ ने उच्च शाक तथा बैकोसाइड ए वाले दो किस्मों नामत: प्रज्ञाशक्ति तथा सुबोधक को रिलीज किया।

प्रवर्धन

सामान्यत: पौधे का प्रवर्धन मुलायम तने की कतरनों से किया जाता है। प्रवर्धन के लिए 5–6 से.मी. लम्बी एवं पत्तियों व गांठ युक्त कतरन शीघ्रता से स्थापित होने के लिए उपयुक्त होती हैं। अधिकतम वानस्पतिक उपज प्राप्ति के लिए कतरनों को 10 x 10 से.मी. की दूरी बनाकर गीली मृदा में प्रतिरोपित किया जाता है। रोपण के तुरन्त बाद फ्लड इरीगेशन किया जाना चाहिए। अधिकतम वनस्पतिक उपज के लिए कतरनों को जून–अगस्त माह में प्रतिरोपित किया जाना चाहिए।

खेत की तैयारी एवं रोपण

खेत की अच्छी तरह जोताई की जानी चाहिए ताकि खेत खरपतवार मुक्त एवं समतल बनी रहे। खेत में प्रत्यक्ष रोपण या प्रतिरोपण के लिए वर्षाकाल का प्रारम्भ जून के अंतिम सप्ताह से अगस्त के प्रथम सप्ताह का उपयुक्त समय है। प्रतिरोपित खेत में सिंचाई के माध्यम से बाढ़ जैसी स्थिति बनायी जाती है। प्रवर्धित कतरनों को स्थापित होने एवं नई जड़ों के विकास में एक सप्ताह का समय लगता है।

संचाई प्रबंधन

प्रतिरोपण के बाद, पौधों की अतिजिविता एवं स्थापना के लिए सिंचाई करना आवश्यक है। तत्पश्चात् वर्षाकाल के दौरान 7–8 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करना आवश्यक है। अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में वर्षाकाल के दौरान सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है।

खरपतवार प्रबंधन

प्रारम्भिक तौर पर 15–20 दिनों के अंतराल पर हाथों से खरपतवार निकालना आवश्यक होता है। तत्पश्चात् जब पौधों की वृद्धि हो जाती है और घनी वनस्पति उगती है तो निराई कभी-कभी की जा सकती है।

पादप संरक्षण

ब्राम्ही में कोई गंभीर रोग या नाशीजीव की सूचना नहीं मिली है। तथापि टिड्डे से क्षति देखी गई है। इसके नियंत्रण के लिए नीम आधारित कीटनाशकों का उपयोग किया जा सकता है।

कटाई एवं सस्योत्तर प्रबंधन

रोपण के 75–90 दिनों के बाद कटाई की जा सकती है। कटाई के लिए सितम्बर–अक्टूबर माह उपयुक्त समय होता है। जब पौधे 20–30 से.मी. ऊंचे हो जाते हैं, तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। सम्पूर्ण पौधे को उखाड़ कर हाथों से

स्क्रैप कर लेना चाहिए। मूल से 4–5 से.मी. के ऊपर के भाग को काट लिया जाता है और शेष भाग को आगे की उत्पत्ति हेतु छोड़ दिया जाता है। उपज को 4–5 दिनों तक साफ जगह या किसी शीट पर बिछाकर धूप में सुखाना चाहिए, तत्पश्चात् 7–10 दिनों तक छांव में सुखाना चाहिए। सूखी उपज को स्वच्छ एवं साफ कंटेनरों में भंडारित करना चाहिए। भंडारण के छ: माह बाद बैकोसाइड मात्रा घटने लगता है। अत: लम्बी अवधि तक भंडारण से बचना चाहिए।

उपज

औसतन एक कटाई से 300 क्वि./हे. ताजी एवं 60 क्वि./हे. सूखी शाक प्राप्त होती है। प्रथम कटाई के उपरान्त पेड़ी फसल से 40 क्वि./हे. अतिरिक्त सूखी शाक प्राप्त होती है।

64.लेमन ग्रास

के. अबिरामी एवं वी. भास्करन

संक्षिप्त परिचय एवं महत्व

लेमन ग्रास, 'लेमन ग्रास तेल' का स्रोत है जो इसकी पत्तियों एवं टहनियों से निकाला जाता है। लेमन ग्रास तेल मुख्यत: इत्र, साबुन, केश तेल, सुंगधित द्रव तथा औषधियों में उपयोग किया जाता है। इसमें जीवाणुरोधी गुण होते हैं। लेमन ग्रास तेल में मौजूद सिट्रल से तैयार किया गया अयोनॉन इत्र में उपयोग के अलावा विटामिन ए की तैयारी के लिए कच्ची सामग्री है। अयोनॉन कुछ मिष्ठान्नों एवं मदिरा में उपयोग किया जाता है। अयोनॉन की तैयारी सीधे लेमन ग्रास तेल से की जा सकती है या तेल से प्राप्त सिट्रल से इस तेल का उपयोग कुछ मत्स्य प्रजातियों के स्वाद में सुधार तथा वाइन, सासेस आदि में स्वाद हेतु किया जाता है। इसका उपयोग सिरदर्द, दांतदर्द तथा नहाने एवं विशेषकर महिलाओं को दर्द आदि में सेंकने के लिए उपयोग किया जाता है।

मृदा एवं जलवायु

यह विभिन्न प्रकार की मृदाओं समृद्ध दोमट से बलहीन लैटराइट मृदा में उगता है। बलुई दोमट एवं लाल मृदा में अच्छी खाद की आवश्यकता होती है। चूनेदार एवं जल भराव वाली मृदाओं से बचना चाहिए चूंकि ये खेती के लिए अनुपयुक्त हैं। इसके लिए गर्म आर्द्र जलवायु के साथ तेज सूर्य प्रकाश और वर्षभर वितरित अच्छी वर्षा की आवश्यकता होती है। लेमन ग्रास की खेती के लिए अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह अत्यंत उपयुक्त हैं।

किस्में

ओडी–19, ओडी–408, आरआरएल–39, जीआरएल–39, जीआरएल–1, चिरहरित, प्रगति, प्रमाण, सीकेपी–25, कवेरी, कृष्णा तथा एनएलजी–84।

प्रवर्धन एवं नर्सरी

इस फसल का प्रवर्धन बीज या स्लिप के माध्यम से होता है। वाणिज्यिक खेती के लिए स्लिप के माध्यम से प्रवर्धन की सिफारिश की जाती है। सीधे बीज बोने से अच्छी खेती नहीं होती है अत: इसकी सिफारिश नहीं की गई है। नर्सरी के लिए भूमि की अच्छी जोताई कर भुरभुरा बनाया जाता है। खेत का दसवां हिस्सा नर्सरी के लिए पर्याप्त है। नर्सरी में 1–1.5 मी. चौड़ी और सुविधाजनक लम्बाई की ऊंची क्यारियां बनायी जाती हैं। क्यारियों में बीज 3–4 कि.ग्रा./हे. की दर से बिछाकर मिट्टी की एक पतली परत से ढक दिया जाता है। सिंचाई द्वारा मृदा में नमी बनाए रखनी चाहिए। 5–6 दिनों में अंकुर निकल आते हैं और 50–60 दिनों में प्रतिरोपण के लिए तैयार हो जाते हैं। स्लिप के रोपण लिए गुल्म /गुच्छ को जमीन से 20–25 से.मी. छोड़कर काट दिया जाता है, तत्पश्चात इन्हें जड़ों को क्षति पहुंचाए बिना खोद लिया जाता है। रोपण से थोड़ा पहले स्वस्थ, जड़ों वाले स्लिप अलग कर लिए जाते है, इससे जड़ों के सूखने से होनेवाली क्षति कम हो जाती है।

रोपण की अवधि एवं विधि

रोपण से पूर्व खेत की अच्छी तैयारी की जाती है और 6 मी x 6 मी. आमाप भूखण्ड बना लिए जाते हैं। वाणिज्यिक खेती में 45 x 60, 50 x 60, 60 x 60 से.मी. दूरी रखी जाती है। उच्च वर्षापात वाले क्षेत्र में जल भराव से बचने के लिए मेड़ो पर रोपण किया जाता है। नवोद्–भिद पौधों/स्लिप्स को मजबूती से मिट्टी में रोपा जाता है परन्तु गहराई में नहीं करें। कुछ क्षेत्रों में कम दूरी 30 x 30 से.मी. रख कर रोपण किया जाता है।

खाद देना

खेत तैयारी के दौरान 10 टन/हे. की दर से गोबर की खाद डाली जाती है। सिफारिश की गई एन पी के की मात्रा 970 कि.ग्रा. यूरिया, 620 कि.ग्रा. सूपर फास्फेट तथा 210 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश है। मृदा में फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा मिला दी जाती है। नाइट्रोजन की मात्रा को 6 समान किस्तों में डाला जाता है, पहली किस्त रोपण के दौरान, दूसरी किस्त एक माह बाद तथा शेष किस्तें प्रत्येक कटाई के बाद दी जाती हैं।

सिंचाई प्रबंधन

इसे सामान्यत: वर्षा आधारित खेती के रूप में उगाया जाता है और अच्छी तरह वितरित वर्षापात वाले क्षेत्र में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। तथापि उच्च उपज प्राप्ति के लिए ग्रीष्मकाल के महिनों में 2–3 बार तथा प्रत्येक कटाई के बाद एक बार सिंचाई की जा सकती है।

खरपतवार प्रबंधन

अच्छी उपज के लिए फसल की प्रारम्भिक अवस्था में इसे खरपतवार मुक्त रखना चाहिए। रोपण के पश्चात् एक या दो बार तथा पहली कटाई के 30 दिनों के भीतर एक निराई करनी चाहिए। एक बार फसल फैलकर ज़मीन को ढक देती है तो खरपतवार का उगना कम हो जाता है।

पादप संरक्षण

इस फसल से किसी कीट नाशीजीव या रोग की सूचना नहीं मिली है।

कटाई एवं सस्योत्तर प्रबंधन

पौधे बहुवर्षीय प्रकृति के हैं और 5 वर्षों तक उपज देते हैं। घास को भूमि से 10 से.मी. छोड़कर फसल की कटाई की जाती है। रोपण के प्रथम वर्ष में 3 बार तथा बाद के वर्षों में 5–6 बार कटाई की जाती है। पहली कटाई रोपण से 90 दिनों के बाद की जाती है और इसके बाद 50–60 दिनों के अंतराल पर कटाई की जाती है। कटाई की गई पत्तियों को तेल की उपज या तेल की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव के बिना 3 दिनों तक छांव में रखा जा सकता है। डिस्टिलेशन से पूर्व घास को छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लिया जाता है।

उपज

प्रत्येक कटाई से 15 टन /है. शाकीय उपज प्राप्त होती है तथा ताजे घास से 0.5% तेल निकलता है। दूसरे वर्ष से तेल की उपज लगभग 375 कि.ग्रा./है. प्राप्त होती है।

फसल सुधार एवं सुरक्षा विभाग

65.धान

पी. के. सिंह, आर. के. गौतम, अवनीन्द्र कुमार सिंह, के. शक्तिवेल,
श्याम सुन्दर राव एवं अर्चना शर्मा

संक्षिप्त परिचय

धान अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह की एक प्रमुख फसल है। प्रति वर्ष लगभग 8,390 हेक्टेयर क्षेत्र में इसकी खेती की जाती है जिससे 24,000 टन धान का उत्पादन होता है। अंडमान में धान की औसत उपज 2.8 टन प्रति हैक्टेयर है जो काफी कम है। द्वीपों में धान का उत्पादन बढ़ाने की काफी संम्भावनायें हैं जिसे हम नई धान की उन्नत किस्मों, बीजों एवम् नवीन सस्य तकनीकी को अपना कर प्राप्त कर सकते हैं। द्वीपों में अच्छे किस्मों के बीजों की उपलब्धता का अभाव होने के कारण यहाँ के किसान धान की अच्छी उपज प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। अत: इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय द्वीपीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, पोर्ट ब्लेयर ने काफी अनुसन्धान कार्य किये हैं। द्वीपों की जलवायु के अनुकूल धान की 9 उन्नत किस्में विकसित की हैं जो कैरी धान 1, कैरी धान 2, कैरी धान 3, कैरी धान 4, कैरी धान 5, कैरी धान 6, कैरी धान 7, कैरी धान 8 एवं कैरी धान 9 हैं। जिसमे कैरी धान 4, कैरी धान 5, लम्बी अवधि की लवण सहनशील किस्में हैं। साथ ही इन किस्मों के उन्नत बीजों का भी उत्पादन किया जा रहा है। इसके अलावा अन्य अनुसन्धान कर द्वीपों के लिए धान की नवीन सस्य तकनीकी विकसित की हैं।

खेत की तैयारी

खेत की तैयारी रोपाई से एक माह पूर्व प्रारम्भ कर देनी चाहिए। जुताई के समय खेत में गोबर की सड़ी हुई खाद अथवा कम्पोस्ट 5 टन प्रति हैक्टेयर की दर से डालें। रोपाई से 15 दिन पूर्व खेत की पानी के साथ जुताई (पडलिंग) करनी चाहिए। रोपाई से 1 दिन पूर्व पुनः पडलिंग (कीचड़) करें तथा खेत में पाटा लगाकर कर रोपाई करें।

द्वीपों के लिए धान की उन्नत किस्में

अवधि	किस्में	उपज (टन/ हेक्टेयर)
शीघ्र पकने वाली किस्में (110 –115 दिन)	कैरी धान 1, कैरी धान 6 एवम् कैरी धान 3	4.0 –5.0
मध्यम अवधि की किस्में (125–135 दिन)	कैरी धान 2, कैरी धान 7 एवम् सी. एस. आर. 36	4.5–5.0
लम्बी अवधि की किस्में (141–150 दिन)	कैरी धान 4, कैरी धान 5, वर्षा, रंजीत, सावित्री एवम् गायत्री	4.5–5.0
लवण सहनशील किस्में	कैरी धान 4, कैरी धान 5 व सी. एस. आर.36	3.1 – 3.7
संशोधित किस्में (180–200 दिन)	कैरी धान 8, कैरी धान 9,	3.0 – 3.0

बुवाई का समय

धान की खरीफ मौसम की फसल के बीज की बुवाई जून माह के प्रथम सप्ताह से माह के मध्य तक करें तथा प्रकाश द्वारा सहज प्रभावित किस्मों (कैरी धान 8 और कैरी धान 9) की बुवाई जुलाई माह के प्रथम सप्ताह से माह के मध्य तक करें।

बीज की मात्रा

धान में बीज की मात्रा बोने की विधि से निर्धारित होती है। यदि धान की खेती रोपण विधि से की जा रही है तो बीज की मात्रा 25 कि. ग्रा. / है. की दर से प्रयोग करनी चाहिए। बीज की सीधे खेत में बुवाई (छिड़काव विधि) के लिए 50 कि. ग्रा. /है. बीज की आवश्यकता होती है । यदि एस. आर. आई. विधि से धान की खेती की जा रही है, तब 5.7 कि. ग्रा. / है. दर से बीज बोना चाहिए। लवणीय एवं क्षारीय भूमि में धान की खेती की जा रही हो तो बीज की मात्रा 30 कि. ग्रा. प्रति हैक्टेयर रखनी चाहिए।

बीज उपचार

बीज को 12 घंटे तक पानी में भिगोने के बाद पानी से निकाल कर छाया में फैला दें तथा पौधशाला में बुवाई से पूर्व बीज को कार्बेन्डाज़िम (बैविस्टीन) नामक फफूंदीनाशी दवा की 2 ग्राम मात्रा प्रति किलो बीज में मिलाकर उपचारित करें। उपचारित

बीज को समतल स्थान पर छाया में फैला दें तथा भीगी जूट की बोरियों से ढक दें व बोरियों के ऊपर दिन में 2–3 बार पानी का छिड़काव करें। बीज 1 से 2 दिन में अंकुरित हो जायेगा तत्पश्चात् धान की रोपाई करें।

पौधशाला की तैयारी

मई–जून माह में प्रथम वर्षा के बाद पौधशाला के लिए चुने हुए खेत की दो बार जुताई करें तथा जुताई से पूर्व 100 किलोग्राम गोबर की सड़ी हुई खाद डालें। जुताई के बाद खेत में पाटा चलाकर समतल कर लें। पौधशाला के लिए ऊँची उठी हुई तथा 1 मीटर चौड़ी एवं सुविधानुसार लम्बाई की समतल क्यारियाँ बना लें। एक हेक्टेयर क्षेत्र में रोपाई हेतु 800 –1000 वर्गमीटर पौधशाला की आवश्यकता पड़ती है।

पौधशाला की देख रेख

बीज की बुवाई के बाद पौधशाला में उचित नमी बनाये रखनी चाहिए। यदि वर्षा न हो तो हल्की सिंचाई करनी अनिवार्य है। पौधशाला को खरपतवारों से मुक्त रखें। कीटों का प्रकोप होने पर हल्की कीट नाशी दवा का प्रयोग करें।

रोपाई

पौधशाला में बीज बोने के 20–25 दिन बाद पौध रोपाई के लिए तैयार हो जाती है। पौधशाला से पौध निकालने के बाद उनकी जड़ों को रोपाई से पूर्व क्लोरपायरीफॉस कीटनाशी के घोल (1 मिलीलीटर दवा प्रति लीटर पानी) में 12 घंटे डुबोकर उपचारित करें। रोपाई पाटा लगाने के बाद समतल किये गये खेत में 2 से 3 सेंटीमीटर की गहराई में कतारों में करनी चाहिये। कतार से कतार एवं पौधे से पौधे की बीच की दूरी क्रमशः 20 सेंटीमीटर x 15 सेंटीमीटर रखें तथा एक स्थान पर 2–3 पौध की रोपाई करें। कतारों को उत्तर–दक्षिण दिशा की ओर रखें।

उर्वरक

उर्वरकों का प्रयोग भूमि परिक्षण के आधार पर ही करना उपयुक्त रहता है। द्वीपों में अधिक उपज प्राप्त करने के लिए सामान्य भूमि में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश को 90:60:40 कि. ग्रा. / है. की दर से प्रयोग करना चाहिए। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा रोपाई के पूर्व तथा नाइट्रोजन की शेष मात्रा को बराबर दो बार में कल्ले फूटते समय (रोपाई के 25 दिन बाद) तथा बाली बनने की प्रारंभिक अवस्था में प्रयोग करें। लवणीय भूमि में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस व पोटाश को 145:130:67 की दर से प्रयोग करें।

- जिंक की कमी होने पर धान की पत्तियाँ पीली एवं भूरें रंग की हो जाती है जिससे धान का खैरा रोग हो जाता है। यदि मृदा में जिंक की कमी हो तो जिंक सल्फेट 25–35 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से रोपाई से पूर्व खेत की तैयारी के समय प्रयोग करना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए धान की फसल को खरपतवारों से बचाना चाहिए। इसके लिए फसल की रोपाई के 25 दिन व 45–50 दिन बाद खेत की निराई– गुड़ाई करनी चाहिए। रासायनिक खरपतवार नाशी दवाओं का प्रयोग भी कर सकते हैं इसके लिए ब्युटाक्लोर (मचौटी) को 2.5 कि. ग्रा./हेक्टेयर की दर से मिट्टी या रेत में मिलाकर रोपाई के 24–48 घंटे के बाद खेत में डालना चाहिए। इसे प्रयोग करते समय खेत में 2–3 से.मी. पानी भरा होना अति आवश्यक है।

सिंचाई

द्वीपों में धान की खेती वर्षा काल में की जाती है अतः अधिक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती परन्तु वर्षा न होने पर उचित अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। पौधों की बढ़वार व बाली पकने के समय खेत में नमी रहना अति आवश्यक है। अधिक जल भराव की स्थिति में जल निकासी की सुव्यवस्था करनी चाहिये।

धान की प्रमुख बीमारियाँ एवं नियंत्रण

धान का झुलसा रोग : इस रोग से पौधों की पत्तियों एवं बालियों पर गहरे भूरें रंग के चकत्ते दिखाई देते हैं। रोग का अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ झुलस जाती हैं। इस रोग के नियंत्रण लिए रोग प्रतिरोधी किस्मों (कैरी धान 6 और कैरी धान 7) को लगायें एवं एग्रीमाइसिन व फाइटेन दवा को 50:50 पी. पी. एम. के अनुपात में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

शीथ ब्लाईट : इसमें पौधों की शीथ (निचला हिस्सा) पर भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं जो बाद में पूरे तने पर फैल जाते हैं। ग्रसित पत्तियाँ सूख जाती हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए प्रोपिकोनेजोल नामक दवा को 1 एम. एल. प्रति लीटर पानी या हेग्जाकोनीजोल को 1 एम. एल. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

फाल्स स्मट : रोगी बालियाँ स्वस्थ बालियों से कुछ पहले ही निकल आती हैं और इन बालियों के दानों से पीला व काला चूर्ण निकलता है। फाल्स स्मट की रोकथाम के लिए प्रोपिकोनेजोल दवा का 1 एम. एल./ली. या कापर ऑक्सीक्लोराइड का 4 एम. एल. / ली. के हिसाब से मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

खैरा रोग : रोगी पौधे आकार में छोटे रह जाते हैं, पत्तियों पर कत्थई रंग के धब्बे बन जाते हैं। ऐसे पौधों में छोटी व कमजोर बालियाँ निकलती है। जिंक सल्फेट 25–35 कि. ग्राम / हेक्टेयर का प्रयोग करें।

धान के प्रमुख कीट एवं नियंत्रण

धान का गंधी कीट : यह हरे रंग का छोटा कीड़ा है जो कि दुधिया अवस्था में बालियों के तनों का रस चूस लेता है ग्रसित बालियाँ सूखी एवं सीधी दिखाई देती हैं। गंधी कीट नियंत्रण के लिए नियंत्रण मोनोक्रोटोफॉस 1500 एम.एल. प्रति हेक्टेयर या कार्बारिल 1.50 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर या मैलाथियान 30 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर के हिसाब से प्रयोग करें।

पत्ती लपेटक : कीट का लार्वा धान की पत्तियों के दोनों किनारों को मोड़ कर इसके अंदर रहता है और पत्तियों को खाकर नुकसान पहुंचाता है। कीट नियंत्रण के लिए कारटेप हायड्रोक्लोराइड 1000 ग्राम प्रति हेक्टेयर या क्लोरोपाइरीफॉस 1500 एम. एल. या हैक्टेयर के हिसाब से प्रयोग करें।

तना छेदक : इसके प्रकोप से पूरा धान का पौधा सूख जाता है तथा बालिओं को ऊपर खींचने पर आसानी से खिंच जाती हैं। कीट नियंत्रण के लिए कार्बोफ्यूरान 33 कि. ग्रा. प्रति हेक्टेयर या कारटेप हायड्रोक्लोराइड 1000 ग्राम प्रति हेक्टेयर या मोनोक्रोटोफोस 1000 एम. एल. प्रति हेक्टेयर के हिसाब से प्रयोग करें।

ब्राउन प्लांट होप्पर : इसके कीट तनों का रस चूसकर फसल को नुकसान पहुँचाते हैं तथा इसके प्रकोप से पूरी फसल सूखने लगती है। कीट नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोरोपिड 75 एम. एल. / हेक्टेयर या इथोफेनोप्रोक्स 750 एम. एल. / हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

फसल की कटाई एवं मड़ाई

धान की फसल सामान्यतः बाली निकलने के 25–30 दिन बाद पककर तैयार हो जाती है। अच्छी तरह पकी फसल को ही काटना चाहिए। जब धान में 20–25 प्रतिशत नमी हो तो फसल कटाई के लिए तैयार होती है। फसल की मड़ाई साफ व सूखे स्थानों पर करनी चाहिए। फसल की कटाई तथा मड़ाई के समय दूसरी धान की प्रजातियों के मिश्रण से बचाना चाहिए। इसके लिये दूसरी प्रजातियों के धान की मड़ाई वाले खलिहान को अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये। धान को मड़ाई के बाद 12–13 प्रतिशत नमी रहने तक सुखाना चाहिए, सूखे स्थानों पर भंडारित करना चाहिए।

उत्पादन

सामान्य भूमि : 4.5 टन/है.

लवणीय भूमि : 3–3.5 ट/है.

भण्डारण

बीज को सूखे स्थान पर बोरों या लोहे के ड्रमों में भण्डारित करें। बीजों में भंडारण के समय की नमी 12 से 13 प्रतिशत होनी चाहिये। अधिक नमी होने पर भण्डारण के समय कीटों का अधिक प्रकोप होगा व अधिक गर्मी पैदा होगी जिससे बीजों की अंकुरण क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। बीज भण्डारण के समय बोरों पर उचित लेबल लगाना चाहिए।

66.द्वीपों में मशरूम उत्पादन

के. शक्तिवेल, आर. के. गौतम, पी. के सिंह, अर्चना शर्मा, रीना सिंह, श्याम सुन्दर राव और एस. दाम राय

संक्षिप्त परिचय

विश्व में मशरूम का प्रचलन प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। कई प्राचीन ग्रंथों में इसका वर्णन मिलता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से मशरूम एक अत्यंत ही लाभकारी आहार है। विशेषकर यह शाकाहारी लोगों के लिए बहुत ही लाभप्रद है। मशरूम एक प्रकार के कवक या फफूंद होते हैं जिनमे क्लोरोफिल नहीं होता है अतः ये दूसरे मृत या जीवित पौधों पर भोजन के लिए निर्भर होते हैं। यह एक संतुलित आहार है, जिसमे हमारे शरीर के विकास हेतु समुचित मात्रा में तत्व विद्यमान है जैसे कि उच्च गुणवत्ता वाली प्रोटीन, काफी सारे विटामिन, कम वसा, कार्बोहाइड्रेट तथा खनिज लवण इत्यादि। विटामिन में सी, बी एवं डी की प्रचुर मात्रा होती है तथा बी कॉम्प्लेक्स समूह में थाइमिन, नियासीन तथा राइबोफ्लेविन भी पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त लोहा एवम् फोलिक अम्ल भी पाये जाते हैं। गर्भवती व स्तनपान कराने वाली महिलाओं के लिए भी मशरूम एक पौष्टिक भोजन है। कम वसा, नमक, शर्करा व अधिक रेशे होने के कारण से हृदय, मधुमेह एवम् मोटापे से ग्रस्त रोगियों के लिए भी यह एक उत्तम भोजन है। इसकी सिफारिश प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थों में भी की गयी है। क्षारीय अम्ल एवम् रेशों की अधिकता के कारण मशरूम कब्ज के रोगियों के लिए अत्यंत लाभकारी है। किसानों व बेरोजगार युवकों के लिए मशरूम उत्पादन एक लाभप्रद व्यवसाय हो सकता है। मशरूम उत्पादन से कृषि व बागबानी फसलों में प्रयोग करने हेतु अच्छी खाद भी प्राप्त की जा सकती है।

खेती हेतु मशरूम का चयन

जलवायु विशेष को ध्यान में रखते हुए ही मशरूम के प्रकार का चयन किया जाता है। इसके साथ पोषाधार की उपलब्धता को भी ध्यान में रखा जाता है। अन्य कारक जो मशरूम के चयन को प्रभावित करते हैं वे हैं पानी की उपलब्धता, बाजार की उपलब्धता, सामाजिक दृष्टिकोण एवं उपलब्ध तकनीकी दक्षता इत्यादि।

संवर्धन (कल्चर)

शुद्ध संवर्धन हेतु हमें किसी उच्च स्तरीय प्रयोगशाला जैसे कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि विभाग एवं केंद्रीय द्वीपीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पोर्ट ब्लेयर आदि से ही संपर्क करना चाहिए।

मशरूम उत्पादन विधि

स्पॉन मशरूम की उपज एवम् गुणवत्ता दोनों को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। ऑयस्टर मशरूम को विभिन्न प्रकार के फसल अवशेषों पर आसानी से उगाया जा सकता है। पोषाधार किसी क्षेत्र में उसकी उपलब्धता पर निर्भर करता है। जैसे की हमारे द्वीपों में धान का पुआल, सूखे केले के पत्ते, सुपारी के छिलके, लकड़ी का बुरादा, फसलों के अवशेष आदि आसानी से उपलब्ध हैं जिन्हें हम मशरूम उगाने के लिए प्रयोग कर सकते हैं। इन अवशेषों को गरम पानी में उपचारित करके प्रयोग कर सकते हैं। इन द्वीपों में तीन प्रकार के मशरूम उगाये जा सकते हैं ऑयस्टर मशरूम, पैडी स्ट्रा मशरूम एवम् दूधिया मशरूम। इनमे से ऑयस्टर मशरूम को द्वीपों में बहुत अच्छी तरह से उगाया जा सकता है।

मशरूम उत्पादन के लिये पौषाधार को तैयार करना पड़ता है। अच्छे पौषाधार जैसे धान का पुआल या सूखे केले के पत्तों को छोटे छोटे टुकड़ों में काटकर व उन्हें खौलते पानी में आधे घंटे के लिए उपचारित कर प्रयोग में लाना चाहिए। पौषाधार को पानी से निथारकर व ठंडा कर प्रयोग में लाना चाहिए। पौषाधार में नमी की मात्रा 60–65% तक होनी चाहिए। पौषाधार के मध्यम आकार के पोलीप्रोपाईलिन थैलों में बण्डल बना कर इनमे बीज (स्पॉन) की बिजाई करनी चाहिए। बिजाई के 10–15 दिन बाद जब थैले में सफेद रंग पूर्णतया दिखाई देने लगे तब पानी का छिड़काव करना चाहिए। स्पॉन फैलने की अवधि के दौरान प्रकाश व पानी की आवश्यकता नहीं होती है। परन्तु मशरूम कक्ष में ताजी हवा के संचार का प्रबंध होना चाहिए। कमरे में हलके प्रकाश की आवश्यकता होती है। मशरूम बिजाई के 20–25 दिन बाद तोड़ने के लिए तैयार हो जाते हैं। मशरूम की तीन फसल को ही तोड़ते है। उसके बाद बण्डल को खाद बनाने के लिए एवं जानवरों को खिलाने के लिए इस्तेमाल किया जाता हैं।

उत्पादन

द्वीपों में एक मध्यम आकार के बण्डल (लगभग 1 किलोग्राम) से 500–750 ग्राम ऑयस्टर मशरूम का उत्पादन किया जा सकता है।

कीट एंव रोग नियंत्रण

अन्य फसलों की तरह मशरूम में भी कई प्रकार के कीट व व्याधियाँ होती हैं जो इसे क्षति पहुँचाकर उत्पादन को प्रभावित करती हैं। रोगों व कीटों द्वारा होने वाली हानि मशरूम की अवस्था व संक्रमण पर निर्भर करती है। कई प्रकार के कीड़े व सूत्रकृमि मशरूम को क्षति पहुँचाते हैं। बीमारियों से बचने के लिए उत्पादन कक्ष में प्रवेश द्वार पर फॉर्मेलिन या फिनाइल का घोल बनाकर ट्रे में रखकर उसमे पैर डुबोकर ही भीतर प्रवेश करना चाहिए। उत्पादन कक्ष के आसपास ब्लीचिंग पाउडर का छिड़काव करें। स्वच्छता मशरूम उत्पादन का विशेष अंग है अतः सफाई का विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। अधिक प्रकोप होने पर ही रसायन का प्रयोग करें। 0.1% फॉर्मेलिन का प्रयोग लाभप्रद है।

विषाणु जनित रोग

इसके लक्षण हैं– मशरूम के ऊपरी का भाग का सिकुडना, डंडी का फूलना या सामान्य से लंबा होना व बीजाणुओं का असमय झड़ना है। इससे बचाव के लिए मशरूम को थोड़ा समय से पहले तोड़ लेना चाहिए ताकि बीजाणु मशरूम पर प्रभाव न डाल सके। पौषाधार को सही तरीके से पानी में उबाल कर तथा संक्रमित बण्डल को नष्ट कर देना चाहिए।

जीवाणु जनित रोग

जीवाणु गलन व भूरा धब्बा तथा पीला धब्बा अक्सर मशरूम को क्षति पहुँचाते हैं। पौषाधार पर कभी–कभी भूरे धब्बे पाये जाते हैं। इस पर 100 मिग्रा/ ली पानी स्ट्रेप्टोसाइक्लिन का छिड़काव करने से बीमारी से बचा जा सकता है। पीला धब्बा रोग में भिन्न–भिन्न रंग व आकार के धब्बे ऊपरी भाग पर बनते हैं। पिन्निंग अवस्था में रोग द्वारा फसल को अधिक नुकसान होता है। प्रभावित मशरूम से गलन व सड़न वाली गंध आती है। इसकी रोकथाम के लिए 400 मिग्रा/ली पानी स्ट्रेप्टोसाइक्लिन का प्रयोग करे। जीवाणु गलन रोग में गिल्स पीले हो जाते है। यह रोग पिन्निंग उपरांत मशरूम बनने की अवस्था में दिखाई देता है, इससे ऊपरी भाग में गलन शुरू होती है और वह कटा–कटा दिखता है तथा वह ऊपर की ओर मुड़ जाता है। रोग की रोकथाम के लिए 100 मिग्रा/ली पानी स्ट्रेपटोमाइसिन सलफेट का प्रयोग करें।

प्रतियोगी या खरपतवार मोल्ड

मशरूम में विभिन्न अवस्थाओं में मोल्ड का प्रकोप होता है। अधिकतर मोल्ड कार्बेन्डाजिम द्वारा नियंत्रित किए जा सकते हैं। इसे आधा ग्राम प्रति लिटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।

स्पॉन : अन्य फसलों के बीज उत्पादन के विपरीत इसका बीज उत्पादन (स्पॉन) विशेष निगरानी में पूर्ण तकनीकी जानकारी के आधार पर ही सफलता पूर्वक किया जा सकता है। शुद्ध प्रमाणित बीज का ही उपयोग किया जाना चाहिए।

स्पॉन फैलने की अवधि के दौरान पानी तथा प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती है परंतु थोड़ी ताजी हवा के संचार की आवश्यकता होती है। कमरे में हल्का प्रकाश तथा ताजी हवा की जरूरत पड़ती है।

मशरूम उगाने का लाभ: मशरूम की पोषक गुणवत्ता की वजह से इसकी खपत व माँग लगातार बढ़ रही है। मशरूम उत्पादन द्वारा मुद्रा अर्जित की जा सकती है। छोटे व कम मझोले किसान इसको उगाकर अधिक से अधिक लाभ कमा कर अपनी आजीविका चला सकते हैं। इसके लिए कृषि योग्य भूमि की अवश्यकता नहीं होती है, अपितु मशरूम के फसल उपरांत पश्च फसल उत्पाद भूमि सुधार में प्रयोग हो सकते हैं। बंद कमरे में या झोपड़ी में मशरूम का उत्पादन किया जा सकता है। अंडमान व निकोबार द्वीप समूह में मशरूम उत्पादन जीविकोपार्जन का अच्छा विकल्प हो सकता है।

67.मूंग

डॉ. अवनींद्र कुमार सिंह

संक्षिप्त परिचय

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूहों में भी देश के अन्य भागों कि तरह भोजन के पोषण गुण के कारण मूंग दाल की फसल अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसमें प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता के कारण धान की फसल के बाद मूंग की खेती कम दिनों कि फसल (मात्र 65–80 दिन की) के रूप में एवं प्रोटीन से भरपूर होने के कारण किसानों को एक अतिरिक्त खाद्य एवं पोषण सुरक्षा वाली फसल हो सकती है। मूंग की खेती अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में रबी के मौसम में की जाती है। अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह के कुछ भागों के बहुत बडे क्षेत्रफल में धान की परती खेत के स्थान पर मूंग की फसल को लिया जा सकता है। मूंग की फसल की जड़ों में राइजोवियम नामक बैक्टीरिया पाया जाता है, जो वातावरण से नाइट्रोजन को अवशोषित कर मिट्टी में स्थिरीकरण कर पौधे को देता है, और इसके द्वारा जमीन में संचित किये गए नत्रजन (नाइट्रोजन) के स्थिरीकरण का लाभ, इस फसल के बाद ली जाने वाली फसल (अनुवर्ती फसल) को भी प्राप्त होता है।

जलवायु

मूंग की फसल के लिए अधिक वर्षा हानिकारक होती है, इसलिए मूंग की खेती इस द्वीप समूह में रबी के मौसम में प्रमुखता से की जा सकती है क्योंकि इस द्वीप समूह में रबी का मौसम शुष्क–नम एवं उष्ण कटिबंधीय जलवायु का होने के कारण फसल के वृद्धि एवं विकास तथा पौधों पर फलियाँ आते तथा फलियाँ पकते समय शुष्क मौसम तथा उच्च तापक्रम अधिक उपयुक्त है।

खेत का चयन

मूंग की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं जैसे हल्की से भारी मिट्टी पर की जाती है, लेकिन इन द्वीप समूहों में उचित जल निकास वाली दोमट, बलुई दोमट एवं बलुई मृदाऐ (मिट्टी) मूंग की खेती के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। जिनमे दोमट एवं बलुई दोमट मिट्टी सबसे अच्छी मानी जाती है।

खेत की तैयारी

धान कि फसल काटने के पश्चात् खेत में उपयुक्त नमी के आने पर एक जुताई देशी हल अथवा मिट्टी पलटने वाले हैरो (डिस्क हैरो) से करके पाटा लगा देना चाहिए और खेत को 2 – 3 दिनों के लिए छोड़ देना चाहिए, जिससे कि खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। इसके पश्चात् खेत की जुताई देशी हल अथवा कल्टीवेटर से करके भली – भाँति पाटा लगाना चाहिए ताकि खेत समतल हो जाए और अधिक नमी बनी रहे। मिट्टी में उचित नमी के रहने पर बीजों का अंकुरण एवं अंकुरण के पश्चात प्रान्कुर का विकास अच्छा होता है।

उन्नतशील प्रजातियाँ

मूंग की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए शीघ्र एवं लगभग एक साथ पकने वाली रोग प्रतिरोधी रोगमुक्त, विषमुक्त और स्वस्थ बीज की बुवाई ही करनी चाहिए। मूंग की इस द्वीप समूह के लिए संस्तुत प्रजातियाँ निम्नवत हैं।

मूंग कि संस्तुत प्रजातियाँ	पकने की अवधि (दिनों में)	उपज (कुंतल / हे.क्)	विशेषता
वाम्बन –2 (Vamban-2)	65–70	7.5	चमकदार हरे दाने, मध्यम रोग सहिष्णु एवं रबी के लिए उपयुक्त
वाम्बन –3 (Vamban-3)	65–70	8.80	मध्यम प्रतिरोधी प्रजाति पीली चित्तीदार एवं भभूतिया रोग या बुकनी रोग के लिए तथा रबी के लिए उपयुक्त
मालवीय जनकल्यानी (HUM-16)	60–70	12 – 15	रोग सहिष्णु एवं रबी एवं धान की परती भूमि के लिए उपयुक्त
आई.पी.एम–02–3 (IPM-02-3)	63–72	11 – 15	पीला चित्तीदार रोग सहिष्णु एवं रबी एवं धान की परती भूमि के लिए उपयुक्त
आई.पी.एम–02–14 (IPM-02-14)	60–65	7.37	रोग सहिष्णु एवं रबी एवं धान की परती भूमि के लिए उपयुक्त

एल जी जी–524 (LGG–524)	70–80	8.0–10.0	रोग सहिष्णु एवं रबी एवं धान की परती भूमि के लिए उपयुक्त
एल जी जी–526 (LGG–526)	70–80	9.0–12.0	रोग सहिष्णु एवं धान की परती भूमि के लिए रबी ऋतु के लिए उपयुक्त
कैरी मूंग –1	66–70	14.0 –16.0	रोग सहिष्णु एवं धान की परती भूमि के लिए रबी ऋतु में अगेती तथा सामान्य बुवाई के लिए उपयुक्त
कैरी मूंग –2	70–72	13.0 –15.0	रोग सहिष्णु एवं धान की परती भूमि के लिए रबी ऋतु में समय से बुवाई के लिए उपयुक्त
कैरी मूंग –3	66–70	12.0 –14.0	रोग सहिष्णु, धान की परती भूमि के लिए उपयुक्त, सूक्ष्म लवण सहनशील प्रजाति, रबी में विलम्ब से बुवाई के लिए उपयुक्त

बीज की मात्रा

रबी के मौसम में बोई जाने वाली मूंग की फसल के लिए 20 किग्रा/ हैक्टेयर की बीजदर रखना चाहिए तथा बोवाई पंक्तियों में (कतारों में) 30 सेमी एवं पौधे से पौधे कि दूरी 8–10 सेमी की दूरी पर करनी चाहिए। बीज की बुवाई कूंड में 3 – 4 सेंमी की गहराई में करनी चाहिए, जिससे कि जमाव अच्छा हो सके।

बीजोपचार: भू–जनित व बीज–जनित रोगों से बचाव के लिए थीरम या बैविस्टीन से 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज का शोधन करना चाहिए या 1 ग्राम कार्बेन्डाजिम / प्रति किलोग्राम बीज या 2–3 ग्राम थीरम फफूंदनाशक दवा की दर से प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करने से भू–जनित एवं बीज–जनित बीमारियों से फसल की सुरक्षा होती है।

दलहनी फसलों हेतु जैविक बीजोपचार

मूंग कि फसल में नत्रजन ग्रन्थियों को बढावा देने के लिए बीज में राइजोबियम कल्चर (राइजोबियम जीवाणुओं) के 5 ग्राम प्रति किलोग्राम की मात्रा से मिलाना चाहिए। 20–40 ग्राम जैविक खाद 1 किलो ग्राम बीज के उपचार के लिए पर्याप्त होता है। राइजोबियम कल्चर से बीज को उपचारित करने के लिए पहले गुड़ या चीनी को गर्म पानी में घोलकर 10% का घोल बनाया जाता है, तथा इसे ठंडा होने दिया जाता है। तत्पश्चात् इस गुड़ के घोल में 250 ग्राम जैविक खाद (राइजोबियम कल्चर) डालकर बीज के साथ अच्छी तरह से मिला लेते हैं ताकि बीजों पर एक पर्त बन जाए एवं उक्त उपचारित बीज को छाया में सुखाते हैं।

बोवाई का समय

सामान्य तौर पर इन द्वीप समूहों में विभिन्न स्थानों पर वर्षा के आच्छादन एवं मौसम कि अनुकूलता के आधार पर मूंग की बोवाई अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से लेकर जनवरी के मध्य तक की जा सकती है। परन्तु अच्छी उपज के लिए मूंग कि बुवाई नवम्बर के प्रथम सप्ताह से लेकर दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक करने पर अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

खाद का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना श्रेयस्कर होगा । मूंग की खेती के लिये 20 किलो नत्रजन, 50 किलो फास्फोरस, 20 किलो पोटाश एवं 20 किलो गंधक प्रति एकड़ बोने के समय मिट्टी में प्रयोग करना चाहिये।

जल प्रबंध

चूँकि इस द्वीप समूह में मूंग कि खेती रबी ऋतु में की जाती है अतः खेत में नमी की पर्याप्त उपलब्धता का ध्यान अवश्य रखना चाहिए, मौसम के अधिक शुष्क रहने कि अवस्था में सिचाई साधनों की उपलब्धता के आधार पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए, जब फसल पूर्ण पुष्प अवस्था पर हो तो उस समय कोई भी सिंचाई नहीं करना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

मूंग के दाने वाली फसल की अधिकतम पैदावार प्राप्त करने के लिए पहली निराई– गुड़ाई बुवाई के 20 दिन बाद करना आवश्यक है, दूसरी निराई– गुड़ाई बुवाई के 45 दिन बाद करनी चाहिये। खरपतवार के नियंत्रण के लिए बुआई के 2 दिन के भीतर पैंडीमैथलीन खरपतवार नाशी दवा का 1 किग्रा 800 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

कीट एवं रोग नियंत्रण

मूंग की अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु, संस्तुत प्रजातियों का चयन करना चाहिए तथा रोगमुक्त, विषमुक्त और स्वस्थ बीजों का ही प्रयोग करना चाहिए। अगर रोग आ ही गया है तो उस रोगयुक्त पौधे को तत्काल उखाड़कर जला देना चाहिए ।

कीट नियंत्रण

इस द्वीप समूह में मूंग की फसल को विभिन्न प्रकार के कीटों द्वारा क्षति पंहुचाई जाती है, अनुमानतः विभिन्न प्रकार के कीटों द्वारा 20 – 25% तक हानि पंहुचाई जा सकती है। अनुकूल मौसम में यह और भी ज्यादा हो सकती है। कुछ प्रमुख कीटों का नियंत्रण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

फली देदक: यह कीट मूंग का एक प्रमुख हानिकारक कीट है। इस कीटा की सुंडी मुलायम पत्तियों, कलियों, पुष्पों तथा फलियों को खा जाती है। इसका रंग जैसे पीले–हरे से गुलाबी संतरी, भूरा तथा मटमैला–काला विभिन्न प्रकार का होता है। इस कीट के नियंत्रण के लिए प्रारंभिक अवस्था में ही नष्ट कर देना ज्यादा लाभदायक होता है, इसके लिए 5% नीम आधारित कीटनाशक या नीम तेल 3000 PPM 1.0 मिली/ लीटर का छिडकाव करना चाहिए। हानिकारक कीटों के सही नियंत्रण के लिए समय–समय पर खेत का निरीक्षण करना चाहिए तथा गंध–प्रपंज (Pheromone trap) 5/ हेक्टेयर लगाना चाहिए।

चित्तीदार फली देदक: यह कीट मूंग का एक अति हानिकारक कीट है। इसकी सुंडी पुष्प कलिका, पुष्प तथा पत्तियों को खाकर नष्ट कर देती है। सुंडी हलके पीले या पीले सफेद रंग की होती है, जिसके प्रत्येक भाग पर दो लाल धब्बे होते है। इसके द्वारा नष्ट फली पर छोटे–छोटे गहरे रंग के प्रवेश छिद्र होते है। इस कीट के नियंत्रण के लिए कीटनाशकों का छिड़काव सुंडी के फली में घुसने से पहले करने पर प्रभावी नियंत्रण पाया जा सकता है। प्रारंभिक अवस्था में ही नष्ट कर देना ज्यादा लाभदायक होता है, इसके नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोरोपिड को 2.5 मिली/ लीटर कि दर से छिड़काव करना चाहिए।

फली चूसक कीड़ा (Stink Bug) : फली चूसक बग मूंग की फसल को नष्ट करती है। ये लाल, भूरे व काले रंग की होती है जो प्रायः पत्तियों पर समूह में भूरे रंग या सफेद रंग के अंडे देती है। ये अपने चूसक मुखांगो से फली में छिद्र कर बीज के रस को चूसती है। इनके द्वारा नष्ट फली कि भित्ति पर छोटे तथा गहरे रंग के छिद्र सहित निशान मिलते है। प्रारंभिक अवस्था में ही नष्ट कर देना ज्यादा लाभदायक होता है, इसके नियंत्रण के लिए डाईमेपीएट को 2.5 मिली/ लीटर या इमिडाक्लोरोपिड 1.0 मिली/ लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

हरा फुदका या जैसिड (लीफ हॉपर): पत्तियों के किनारे पीले रंग का होना, तत्पश्चात् पत्तियों का मुड़ जाना इस कीट के प्रकोप का प्रमुख लक्षण है जो पादप रस की कमी के कारण व कीट की जहरीली लार के पत्तियों में प्रवेश करने के पश्चात दिखाई देती है। जैसिड के प्रबंधन हेतु डाईमेथोयेट 0.03% छिड़काव लाभदायक होता है।

तना देदक मक्खी: इस कीट का अत्यधिक प्रकोप होने पर मूंग की फसल को काफी ज्यादा नुकसान पंहुचा सकता है। इसकी सुंडिया बाह्य तना भेदक होती है। जिस पौधे पर इनका प्रकोप अधिक होता है उस पर फलियाँ कम बनती है तथा अधिकतर खाली रह जाती हैं अथवा बीज छोटे आकार के बनते है। इसके प्रबंधन हेतु इमिडाक्लोरोपिड 625 मिली/ हेक्टेयर कि दर से 15 दिन के अंतराल पर करना प्रभावी होता है।

नीली तितली: छोटे आकार की नीले–भूरे रंग की यह तितली मूंग की फसल के लिए एक हानिकारक कीट है। ये हल्के नीले रंग के अंडे मुलायम व नयी नालिकायों पर देते हैं। इसकी सुंडी पत्तियों को खाती है लेकिन पुष्पों तथा कलियों को खाने की प्राथमिकता देती है। इसके प्रबंधन हेतु इमिडाक्लोरोपिड 40 ई.सी. 625 मिली/ हेक्टेयर कि दर से छिड़काव करना प्रभावी होता है।

रोग नियंत्रण

चारकोल विगलन: मूंग की फसल में इस बीमारी के होने का कारण इस द्वीप समूह का शुष्क एवं नम जलवायु का क्षेत्र होने के कारण है। यह बीमारी मेक्रोफोमिना कवक द्वारा होती है, इसमें कत्थई भूरे रंग के विभिन्न आकार के धब्बे पत्तियों के निचले भाग पर बनते हैं। इनकी रोकथाम के लिये 0.5 प्रतिशत कार्बेंडाजिम या डायथेन जेड–78, 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

सर्कोस्पोरा पत्र बुंदकी रोग: इस द्वीप समूह में मूंग का यह एक प्रमुख रोग है जिससे कि फसल को भारी क्षति होती है। यह बीमारी सर्कोस्पोरा नामक कवक के द्वारा उत्पन्न होती है। इस बीमारी में पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं जिनकी बाहरी सतह भूरे लाल रंग की होती है। इनकी रोकथाम के लिये डायथेन जेड–78, 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

चूर्णी कवक या भभूतिया रोग या बुकनी रोग: मूंग की फसल की यह एक प्रमुख बीमारी है जिसमें कि 30–40 दिन की फसल में पत्तियों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है। इसकी रोकथाम के लिये घुलनशील गंधक 0.15 प्रतिशत या कार्बेंडाज़िम 0.1 प्रतिशत के 15 दिन के अंतराल पर तीन छिड़काव करना चाहिए।

पीली चितेरी रोग: यह सफेद मक्खी द्वारा फैलने वाला विषाणु जनित रोग है। इसमें पत्तियाँ तथा फलियाँ पीली पड़ जाती है और उपज पर प्रतिकूल असर होता है। सफेद मक्खी के नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोरोपिड 2–3 मिली प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। इस बीमारी की प्रारंभिक अवस्था में प्रभावित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देने पर काफी हद तक नियंत्रण पाया जा सकता है। रोग प्रतिरोधक प्रजातियों को उगाना ही सबसे अच्छा उपाय है।

कटाई मड़ाई

जब फलियाँ काली पड़कर (लगभग 80 प्रतिशत तक पक जाने पर) पकने लगे तब तुड़ाई करना चाहिये। मूंग की फलियाँ गुच्छों में लगती हैं, पूरी फसल में फलियों को 2–3 बार में तोड़ लिया जाता है। इन फलियों को सुखाकर लकड़ी द्वारा पीटकर मड़ाई करें।

उपज

उपरोक्त तरीके से मूंग की खेती करने पर उपज 10–12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती है।

भंडारण

बीज के भण्डारण से पहले दाने को अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए। बीज में 8 से 10 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं रहनी चाहिए। मूंग के भण्डारण में स्टोरेज बिन का प्रयोग करना चाहिए। सूखी नीम की पत्ती तथा नीम केक का भण्डारण के समय बीज के साथ प्रयोग करने से उपज की कीड़ों से सुरक्षा की जा सकती है।

68.उर्द / उड़द

अवनींद्र कुमार सिंह

संक्षिप्त परिचय

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूहों में भी देश के अन्य भागों की तरह भोजन के पोषण गुणवत्ता के कारण उड़द दलहनी फसलों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। उड़द इस द्वीप समूह में मूंग की फसल के बाद दलहनी फसल के रूप में उगाई जाने वाली दूसरी प्रमुख फसल है, जिसकी खेती धान की खेती के बाद रबी के मौसम में एक बड़े भू–भाग पर की जाती है। उड़द की खेती सामान्यतः इस द्वीप समूह के सभी क्षेत्रो में की जाती है परन्तु उत्तरी एवं मध्य अंडमान, दक्षिणी अंडमान, छोटा अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह के ग्रेटर निकोबार द्वीप समूह के क्षेत्र में प्रमुखता से की जाती है। इसमें प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता के कारण स्वास्थ्य के लिए भी यह फसल अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अन्य दलहनी फसलो की तरह उड़द भी वातावरण से नाइट्रोजन को अवशोषित करके उसका मिट्टी में स्थिरीकरण कर देता है जिसका लाभ पौधे को प्राप्त होता है, और इन फसलों में नाइट्रोजन की कम आवश्यकता पड़ती है, फलस्वरूप उत्पादन लागत भी कम आती है। यदि उपलब्ध वैज्ञानिक विधियों और उन्नत तकनीको से इस फसल की खेती की जाये तो इनका उत्पादन इस द्वीप समूह में भी बढ़ाया जा सकता है।

जलवायु

उड़द की फसल के लिए अन्य दलहनी फसलों की भांति अधिक वर्षा हानिकारक होती है। उड़द की खेती के लिए सामान्यतः सम शीतोष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है, और पौधों पर फलियाँ आने तथा पकने के समय शुष्क मौसम तथा उच्च तापक्रम अधिक लाभप्रद होता है। इसलिए उड़द की खेती इस द्वीप समूह में रबी के मौसम में प्रमुखता से की जा सकती है।

खेत का चयन

उड़द की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं में सफलतापूर्वक की जा सकती है, इन द्वीप समूहों में उचित जल निकास वाली चिकनी दोमट, दोमट, बलुई दोमट उड़द की खेती के लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त होती हैं।

खेत की तैयारी

उड़द की बुवाई के लिए स्वच्छ व गहरा जुता हुआ खेत अधिक उपयुक्त होता है, जिससे भूमि के अन्दर छिपे हुए कीट व कीट कोषक ऊपर आ जाते हैं और कीटभक्षी पक्षी उन्हें खाकर नष्ट कर देते है। इसके अलावा मिटटी में अन्दर रहने वाले रोंगों के बीजाणु भी नष्ट हो जाते है। धान की फसल के पश्चात् खेत में उपयुक्त नमी के आने पर एक जुताई देशी हल अथवा मिट्टी पलटने वाले हैरो (डिस्क हैरो) से करके पाटा लगा देना चाहिए और खेत को 2 – 3 दिनों के लिए छोड़ देना चाहिए, जिससे कि खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। इसके पश्चात खेत की जुताई देशी हल अथवा कल्टीवेटर से करके भली – भाँति पाटा लगाना चाहिए जिससे कि मिट्टी महीन व खेत समतल हो जाए और मिट्टी की नमी अधिक दिनों तक बनी रहती है। मिट्टी में उचित नमी के रहने पर बीजों का अंकुरण एवं अंकुरण के पश्चात प्रान्कुर का विकास अच्छा होता है।

उन्नतशील प्रजातियाँ

उड़द की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए शीघ्र एवं लगभग एक साथ पकने वाली संस्तुत एवं उन्नत प्रजातियों का चुनाव उनकी विशेषताओं के आधार पर करना चाहिये। उड़द की इस द्वीप समूह के लिए कुछ संस्तुत प्रजातियाँ निम्नवत है।

उड़द कि संस्तुत प्रजातियाँ	पकने की अवधि (दिनों में)	उपज (कुंतल/ हेक)	विशेषता
वाम्बन –6 (Vamban-2)	65–70	8.0 – 9.0	मंद काले दाने, मध्यम रोग सहिष्णु एवं रबी के लिए उपयुक्त
वाम्बन –7 (Vamban-3)	65–70	9.0 – 10.0	पीली चित्तीदार एवं भभूतिया रोग के लिए प्रतिरोधी प्रजाति तथा रबी के लिए उपयुक्त
आईपीयु–02–43 (IPU-02-43)	60–65	9.0–10.0	रोग सहिष्णु एवं रबी एवं धान की परती भूमि के लिए उपयुक्त
एल.जी.जी–524 (LGG-752)	70–75	8.0–10.0	रोग सहिष्णु एवं रबी एवं धान की परती भूमि के लिए उपयुक्त
एल.जी.जी–645 (LGG-752)	70–75	10.0–12.0	रोग सहिष्णु एवं भभूतिया रोग के लिए तथा रबी में धान की परती भूमि के लिए उपयुक्त

बीज की मात्रा

रबी के मौसम में बोई जाने वाली उड़द की फसल के लिए 20 किग्रा/ हैक्टेयर की बीजदर रखना चाहिए तथा बोवाई पंक्तियों में (कतारों में) 30 सेमी एवं पौधे से पौधे कि दूरी 8–10 सेमी रखनी चाहिए। बीज की बुवाई कूंड में 3 – 4 सेंमी की गहराई में करनी चाहिए, जिससे कि जमाव अच्छा हो सके।

बीजोपचार: भू–जनित व बीज–जनित रोगों से बचाव के लिए थीरम या बैविस्टीन से 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज का शोधन करना चाहिए या 1 ग्राम कार्बेन्डाज़िम / प्रति किलोग्राम बीज या 2–3 ग्राम थीरम फफूंदनाशक दवा की दर से प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करना लाभप्रद होता है।

दलहनी फसलों हेतु जैविक बीजोपचार

उड़द की फसल में नत्रजन ग्रन्थियों को बढ़ावा देने के लिए बीज में राइजोबियम कल्चर (राइजोबियम जीवाणुओं) 5 ग्राम प्रति किलोग्राम की मात्रा से मिलाना चाहिए। 20–40 ग्राम जैविक खाद 1 किलो ग्राम बीज के उपचार के लिए पर्याप्त होता है। राइजोबियम कल्चर से बीज को उपचारित करने के लिए पहले गुड़ या चीनी को गर्म पानी में घोलकर 10% का घोल बनाया जाता है, तथा इसे ठंडा होने दिया जाता है। तत्पश्चात इस गुड़ के घोल में 250 ग्राम जैविक खाद (राइजोबियम कल्चर) डालकर बीज के साथ अच्छी तरह से मिला लेते हैं ताकि बीजों पर एक परत बन जाए एवं उक्त उपचारित बीज को छाया में सुखाते हैं।

बोवाई का समय

सामान्य तौर पर इन द्वीप समूहों में विभिन्न स्थानों पर वर्षा के आच्छादन एवं मौसम की अनुकूलता के आधार पर उड़द की बुवाई अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से लेकर जनवरी के मध्य तक की जा सकती है। परन्तु अच्छी उपज के लिए उड़द की बुवाई नवम्बर के प्रथम सप्ताह से लेकर दिसम्बर के प्रथम सप्ताह तक करने पर अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। बुवाई करते समय अधिक वर्षा न होने की एवं मौसम के साफ रहने की संभावना पर भी अवश्य गौर करना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

खाद का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना श्रेयस्कर होगा । उड़द की खेती के लिये 20 किलो नत्रजन, 50 किलो फास्फोरस, 20 किलो पोटाश एवं 20 किलो गंधक प्रति एकड़ बोने के समय मिट्टी में प्रयोग करना चाहिये।

जल प्रबंध

उड़द की अच्छी पैदावार प्राप्त करने हेतू, खेत में नमी की पर्याप्त उपलब्धता का ध्यान अवश्य रखना चाहिए, मौसम के अधिक शुष्क रहने की अवस्था में सिंचाई साधनों की उपलब्धता के आधार पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए, जब फसल पूर्ण पुष्प अवस्था पर हो तो उस समय कोई भी सिंचाई नहीं करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

उड़द की फसल की अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए पहली निराई– गुड़ाई बुवाई के 20–25 दिन बाद करना आवश्यक है, दूसरी निराई–गुड़ाई बुवाई के 45 दिन बाद करनी चाहिये। खरपतवार के नियंत्रण के लिए बुआई के 2 दिन के भीतर पेंडीमैथलीन खरपतवारनाशी दवा का 1 किग्रा 800 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

कीट एवं रोग नियंत्रण

उड़द की अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु, संस्तुत प्रजातियों का चयन करना चाहिए तथा रोगमुक्त, विषमुक्त और स्वस्थ बीजों का ही प्रयोग करना चाहिए। अगर रोग आ ही गया है तो उस रोगयुक्त पौधे को तत्काल उखाड़कर जला देना चाहिए।

कीट नियंत्रण

इस द्वीप समूह में उड़द की फसल को विभिन्न प्रकार के कीटों द्वारा क्षति पंहुचाई जाती है। कुछ प्रमुख कीटों का नियंत्रण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

फली द्देदक: यह कीट उड़द का एक प्रमुख हानिकारक कीट है। इस कीट की सुंडी मुलायम पत्तियों, कलियों, पुष्पों तथा फलियों को खा जाती है। इस कीट को नियंत्रण के लिए प्रारंभिक अवस्था में ही नष्ट कर देना ज्यादा लाभदायक होता है, इसके लिए 5% नीम आधारित कीट नाशक या नीम तेल 3000 PPM 1.0 मिली/ लीटर का छिडकाव करना चाहिए। हानिकारक कीटों के सही नियंत्रण के लिए समय–समय पर खेत का निरिक्षण करना चाहिए तथा गंध प्रपंज 5/ हेक्टेयर लगाना चाहिए।

चित्तीदार फली द्देदक: यह कीट उड़द का एक अति हानिकारक कीट है। इसकी सुंडी पुष्प कलिका, पुष्प तथा पत्तियों को खाकर नष्ट कर देती है। इस कीट की पहचान यह है कि शाखा कि उपरी पत्तियों, कलियों तथा पुष्पों को एक साथ लपेट

कर तथा अंदर बैठकर फली के दानों व पुष्पों को एक साथ लपेटकर तथा अंदर बैठकर फली के दानों व पुष्पों को खाता है। इस कीट के नियंत्रण के लिए कीटनाशकों का छिड़काव सुंडी के फली में घुसने से पहले करने पर प्रभावी नियंत्रण पाया जा सकता है। इसे प्रारंभिक अवस्था में ही नष्ट कर देना ज्यादा लाभदायक होता है। इसके नियंत्रण के लिए क्लोरपायरिफॉस 20 EC को 2.5 मिली/ लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

फली चूसक कीड़ा (Stink Bug): फली चूसक बग उड़द की फसल को काफी नुकसान पंहुचा सकते है। ये अपने चूसक मुखांगो से फली में छिद्र कर बीज के रस को चूसती है। चूसे हुए बीज काले या गहरे रंग के हो जाते है जो कि खाने एवं बीज हेतु उपयोग के योग्य नहीं रहते हैं। इसके नियंत्रण के लिए क्लोरपायरीफास 20 EC को 2.5 मिली/ लीटर या इमिडाक्लोरोपिड 36SL 1.0 मिली/ लीटर कि दर से छिड़काव करना चाहिए।

हरा फुदका या जैसिड (लीफ हॉपर): पत्तियों के किनारे पीले रंग का होना, तत्पश्चात पत्तियों का मुड़ जाना इस कीट के प्रकोप का प्रमुख लक्षण है, जो पादप रस की कमी के कारण व कीट की जहरीली लार के पत्तियों में प्रवेश करने के पश्चात् दिखाई देती है। अधिक प्रकोप की दशा में पत्तियों के किनारे मुड़ने के बाद सूख जाते हैं और पौधों की वृद्धि रुक जाती है। जैसिड के प्रबंधन हेतु डाईमेथोयेट का क्रमशः 0.075% व 0.03% छिड़काव लाभदायक होता है।

नीली तितली: छोटे आकार की नीले–भूरे रंग की यह तितली उड़द की फसल के लिए एक हानिकारक कीट है। ये हल्के नीले रंग के अंडे मुलायम व नयी नालिकयों पर देते है। इसकी सुंडी पत्तियों को खाती है लेकिन पुष्पों तथा कलियों को खाने की प्राथमिकता देती है। इसके प्रबंधन हेतु इमिडाक्लोरोपिड 40 ई.सी. 625 मिली/ हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना प्रभावी होता है।

रोग नियंत्रण

चूर्णी कवक या भभूतिया रोग या बुकनी रोग: उड़द की फसल की यह एक प्रमुख बीमारी है जिसमें कि 30–40 दिन की फसल में पत्तियों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है। इसकी रोकथाम के लिये घुलनशील गंधक 0.15 प्रतिशत या कार्बेंडांज़िम 0.1 प्रतिशत के 15 दिन के अंतराल पर तीन छिड़काव करना चाहिए।

सर्कोस्पोरा पत्र बुंदकी रोग: इस द्वीप समूह में उड़द का यह एक प्रमुख रोग है जिससे फसल को भारी क्षति होती है। यह बीमारी सर्कोस्पोरा नामक कवक के द्वारा उत्पन्न होती है। इस बीमारी में पत्तियों पर भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं जिनकी बाहरी सतह भूरे लाल रंग की होती है।

पीली चितेरी रोग: यह सफेद मक्खी द्वारा फैलने वाला विषाणु जनित रोग है। इसमें पत्तियाँ तथा फलियाँ पीली पड़ जाती हैं और उपज पर प्रतिकूल असर होता है। सफेद मक्खी के नियंत्रण हेतु से या इमिडाक्लोरोपिड 2–3 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। इस बीमारी की प्रारंभिक अवस्था में प्रभावित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए। रोग प्रतिरोधक प्रजातियों को उगाना ही सबसे अच्छा उपाय है।

चारकोल विगलन: उड़द की फसल में इस बीमारी के होने का कारण इस द्वीप समूह का शुष्क एवं नम जलवायु का क्षेत्र है। यह बीमारी मैक्रोफोमिना कवक द्वारा होती है, इसमें कत्थई भूरे रंग के विभिन्न आकार के धब्बे पत्तियों के निचले भाग पर बनते हैं। इनकी रोकथाम के लिये 0.5 प्रतिशत कार्बेंडांज़िम या डायथेन जेड–78, 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

कटाई मड़ाई

जब फलियाँ काली पड़कर (लगभग 80 प्रतिशत तक पक जाने पर) पकने लगे तब तुड़ाई करनी चाहिये। उड़द की फलियाँ गुच्छों में लगती हैं। पूरी फसल में फलियों को 2–3 बार में तोड़ लिया जाता है। इन फलियों को सुखाकर लकड़ी द्वारा पीटकर मड़ाई करें।

उपज

उपरोक्त तरीके से उड़द की खेती करने पर उपज 8–10 क्विंटल प्रति हैक्टेयर प्राप्त की जा सकती है।

भंडारण

बीज के भण्डारण से पहले दाने को अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए। बीज में 8 से 10 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं रहनी चाहिए। उड़द के भण्डारण में स्टोरेज बिन का प्रयोग करना चाहिए। सूखी नीम की पत्ती तथा नीम केक का भण्डारण के समय बीज के साथ प्रयोग करने से उपज की कीड़ों से सुरक्षा की जा सकती है।

69.अरहर

अवनींद्र कुमार सिंह

अन्य दलहनी फसलों की तरह ही अरहर की खेती भी अंडमान एवं निकोबार में की जा सकती है। यहाँ तक कि इस द्वीप समूह में इसकी खेती लगभग 315 हेक्टेयर क्षेत्र में की जा रही है। अन्तर फसल एवं बीच की फसल के तहत भी अरहर की खेती सफलता पूर्वक की जा सकती है। अरहर वर्षा आधारित खेती वाले क्षेत्रों के लिए बहुत उपयोगी फसल है। इससे मिश्रित फसल के रूप में भी किसी अन्य फसल के साथ बुवाई करके अतिरिक्त लाभ प्राप्त किया जा सकता है। दलहनी फसल होने के कारण यह भूमि की उर्वरा शक्ति को भी बढ़ाती है। अरहर की फसल की जड़ों में भी राइजोबियम नामक बैक्टीरिया पाया जाता है, जो वातावरण से नाइट्रोजन को अवशोषित कर जमीन में संचित कर देता है, जिसका लाभ अरहर की फसल को स्वयं की वृद्धि एवं विकास के लिए तथा अरहर के बाद ली जाने वाली अनुवर्ती फसल या अरहर के साथ ली जाने वाली मिश्रित फसल को भी प्राप्त होती है। अरहर की खेती करने से जमीन में जैविक खाद की मात्रा एवं जीवाष्म की उपलब्धता को बढ़ाती है।

जलवायु

अरहर लम्बी अवधि की फसल है तथा इसकी खेती के लिए भी अन्य दलहनी फसलों कि भांति अधिक वर्षा हानिकारक होती है। अरहर की खेती के लिए इस द्वीप समूह में वर्षाकाल के आरम्भ होने से पूर्व का मौसम सर्वथा उपयुक्त है, क्योंकि वर्षा के बाद का समय इस द्वीप समूह में शुष्क–नम एवं उष्ण कटिबंधीय जलवायु होने के कारण, फसल के लिए वृद्धि एवं विकास तथा पौधों पर फलियाँ आते समय तथा फलियाँ पकते समय उच्च तापक्रम का होना इस फसल के लिए अधिक उपयुक्त है।

खेत का चयन

अरहर की खेती को इस द्वीप समूह में सफलता पूर्वक करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण ध्यान खेत के चुनाव पर निर्भर करता है। यह द्वीप समूह अधिक वर्षा वाला क्षेत्र है। इसलिए अरहर की खेती के लिए खेत का चुनाव करते समय कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना होगा, जैसे कि इसकी खेती के लिए ऊँचाई वाले, अच्छे जल निकास वाले एवं समतल खेतों का ही चुनाव करना चाहिए। अरहर की खेती हल्की मिट्टी में अच्छी मानी जाती है। इन द्वीप समूहों में उचित जल निकास वाली दोमट, बलुई दोमट अरहर की खेती के लिए सबसे अच्छी होती हैं। अरहर की खेती के लिए इस द्वीप समूह की उपरभूमि एवं पहाड़ी भू–भाग सर्वथा उपयुक्त हैं।

खेत की तैयारी

अरहर की खेती के लिए स्वच्छ व गहरा जुता हुआ खेत अधिक उपयुक्त होता है, जिससे भूमि के अन्दर छिपे हुए कीट व कीट कोषक ऊपर आ जाते हैं और कीटभक्षी पक्षी उन्हें खाकर नष्ट कर देते हैं। अरहर की बुवाई चूँकि जून – जुलाई में करने की सलाह दी जाती है, इसलिए वर्षा प्रारम्भ होने से पहले ही खेत की हल से जुताई कर लेनी चाहिए। उथली व जल भराव वाली मिटटी में इसकी खेती सफलतापूर्वक नहीं की जा सकती है। जुताई देशी हल से या ट्रैक्टर, कल्टीवेटर से करनी चाहिए। यदि खेत समतल है तो न्यूनतम जुताई के आधार पर, देशी हल अथवा कल्टीवेटर से करके भली – भाँति पाटा लगाना चाहिए, उसके पश्चात् यदि संभव हो तो मेढ़ों पर बुवाई करनी चाहिए। साथ ही, जल निकास की उचित व्यवस्था का अवश्य ध्यान रखना चाहिए। यदि अरहर की खेती बहुत बड़े क्षेत्र पर नहीं की जा रही है तो, बीज को dibling बुवाई विधि द्वारा करने से भी उचित उपज प्राप्त कर सकते हैं। यदि खेत ढालू हो तो बीज की बुवाई न्यूनतम जुताई के साथ ही dibling विधि द्वारा ही करनी चाहिए।

उन्नतशील प्रजातियाँ

अरहर की खेती के लिए इस द्वीप समूह के जलवायु को ध्यान में रखते हुए मध्यम एवं लम्बे समय में पकने वाली रोग प्रतिरोधी, विषाणु रहित स्वस्थ बीज की बुवाई ही करनी चाहिए। अरहर की खेती के लिए इस द्वीप समूह के लिए कुछ संस्तुत प्रजातियाँ निम्नवत है:

अरहर कि संस्तुत प्रजातियाँ	पकने की अवधि (दिनों में)	उपज (कुंटल/ है)	विशेषता
नरेन्द्र अरहर –1 (Narendra Arhar-1)	220 – 240	10–13	मध्यम आकार वाले दाने, रोग सहिष्णु एवं द्वीप समूह के लिए उपयुक्त
सीओ–6 (Co -6)	210 – 240	11–13	मध्यम आकार वाले दाने, रोग सहिष्णु एवं द्वीप समूह के लिए उपयुक्त
बहार (Bahar)	230 – 270	9–11	मध्यम आकार वाले दाने, रोग सहिष्णु एवं द्वीप समूह के लिए उपयुक्त

बीज की मात्रा एवं बीजोपचार

खरीफ ऋतु में वर्षाकाल प्रारंभ होने के साथ ही बोई जाने वाली अरहर की फसल के लिए 16–20 किग्रा/ हैक्टेयर का बीजदर रखना चाहिए, तथा बोवाई पंक्तियों में (कतारों में) 60–75 से.मी. की दूरी पर एवं पौधे से पौधे की दूरी 20–30 से.मी. पर करनी चाहिए। बीज की बुवाई कूंड में 3 – 4 सें.मी. की गहराई में करनी चाहिए, जिससे कि जमाव अच्छा हो सके। प्रारम्भ में भू–जनित व बीज–जनित रोगों से बचाव के लिए थीरम या बावस्टीन से 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज का शोधन करना चाहिए या 1 ग्राम कार्बेन्डाज़िम / प्रति किलोग्राम बीज या 2–3 ग्राम थीरम फफूंदनाशक दवा की दर से प्रति किलोग्राम बीज को उपचारित करने से भू–जनित एवं बीज–जनित बीमारियों से फसल की सुरक्षा होती है।

बोवाई का समय

सामान्य तौर पर इन द्वीप समूहों में विभिन्न स्थानों पर वर्षाकाल (मानसून) प्रारम्भ होने के साथ ही मौसम की अनुकूलता के आधार पर अरहर की बुवाई जून एवं जुलाई के अंतिम सप्ताह तक की जा सकती है। परन्तु अच्छी उपज के लिए अरहर की बुवाई जून के प्रथम सप्ताह से लेकर जुलाई माह के प्रथम सप्ताह तक करने पर अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। यदि अरहर की बुवाई मेड़ पर की जाये तो अधिक वर्षा के होने के कारण जल आच्छादन से पौधों की सुरक्षा की जा सकती है।

अरहर के साथ मिश्रित खेती

अरहर बुआई का उपयोग मिश्रित फसल के रूप में करने से कतारों के बीच में छूटने वाली जगह का उपयोग हो जाता है तथा किसान को अतिरिक्त आमदनी मिल जाती है। प्रारंभिक अवस्था में यह फसल बहुत ही धीरे धीरे बढ़ती है इसलिए इसके पकने से पहले कोई शीघ्र पकने वाली व उथली जड़ों वाली फसल को सह–फसली खेती के रूप में ली जा सकती है। अरहर अगर मिश्रित फसल के रूप में बोई गई है तो साथ में ली गई मिश्रित फसल की कटाई के तुंरत बाद अरहर की कतारों के बीच में हल्की गुड़ाई कर देने से पौधों की वृद्धि तेज हो जाती है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

खाद का प्रयोग मृदा परिक्षण के आधार पर करना श्रेयस्कर होगा। अरहर की खेती के लिये 15–20 किलोग्राम नत्रजन, 50–60 किलो फॉस्फोरस, 20 किलो पोटाश एवं 15 किलो गंधक प्रति हैक्टेयर बुवाई के समय मिट्टी में प्रयोग करना चाहिये।

जल प्रबंधन

अरहर की खेती में बहुत अधिक सिंचाई आदि की आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु इसकी अच्छी पैदावार प्राप्त करने हेतु, खेत में जलप्लावन एवं जल जमाव की स्थिति का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। इस द्वीप समूह में बुवाई का समय जून – जुलाई एवं सितम्बर संस्तुत किया गया है जो कि प्रायः अधिक वर्षा का मौसम होता है साथ ही इसकी खेती वर्षा–आधारित फसल के रूप में की जा सकती है, अतः इसकी खेती के लिए इस द्वीप समूह में सिंचाई की बहुत आवश्यकता नहीं होगी। वर्षा नहीं होने पर प्रारंभिक अवस्था में ही सिंचाई के साधनों की उपलब्धता के आधार पर सिंचाई करनी चाहिए। दूसरी सिंचाई फल लगते समय वर्षा नहीं होने पर करनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

अरहर की फसल की अधिकतम पैदावार प्राप्त करने के लिए निराई – गुड़ाई की आवश्यकता पड़ती है। पहली निराई–गुड़ाई बुवाई के 20–30 दिन बाद करना आवश्यक है, इससे पौधों की वृद्धि में सहायता मिलती है, दूसरी निराई– गुड़ाई, बुवाई के 60–75 दिन बाद करनी चाहिये। खरपतवार के नियंत्रण के लिए बुआई के 2 दिन के भीतर पेंडीमिथालिन खरपतवारनाशी दवा का 1 किग्रा 800 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

कीट एवं रोग नियंत्रण

अरहर की फसल के कुछ प्रमुख कीट एवं रोग जिनका प्रभाव इस द्वीप समूह में देखा गया है निम्नवत हैं, जो कि फूल बनने कि अवस्था से लेकर फलियों के बनने एवं पकने तक इस फसल को अत्यधिक नुकसान पहुंचाते हैं।

कीट नियंत्रण

अरहर की फसल को अनेक प्रकार के कीट नुकसान पहुँचाते हैं। फूल और फली की अवस्था में इस द्वीप समूह में जिन कीटों से अधिक नुकसान होता है वे निम्नवत हैं। अतः इन कीड़ों की पहचान एवं उनके नियंत्रण के उपायों की जानकारी होना अरहर की फसल के अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु लाभप्रद है।

फली की मक्खी: इस कीट से प्रभावित फली को बाहर से देखने पर सामान्यतः कोई स्पष्ट लक्षण नजर नहीं आते हैं, क्योकि यह कीट फली में छोटे छिद बनाकर फली के अंदर अंडे देता है तथा इस छिद्र को सावधानीपूर्वक मोम जैसे पदार्थ से बंद कर देता है। इल्ली (मेगट) अपना संपूर्ण जीवन चक्र फली के भीतर दानों को खाकर पूरा करती है। इससे दानों

का विकास रूक जाता है तथा वे खाने के उपयोग के लायक नहीं रह जाते हैं। इस कीट के नियंत्रण के लिये समेकित कीटनाशक जैसे डायमेथोयेट का उपयोग प्रभावकारी है।

फली छेदक इल्ली: यह कीट पौधों की कलियॉ फूल एवं फलियों को खाकर सीधे क्षति पहुंचाता है। प्रभावित फली पर बड़े गोल आकार के स्पष्ट छिद्र नजर आते हैं। जिसके अंदर सिर डालकर यह कीट (इल्ली) हरे एवं आंशिक रूप से पके दानों को खाते है। इमिडाक्लोरोपिड कीटनाशकों का छिड़काव करके अथवा क्विनालफॉस या फेनवरलेट का भुरकाव से इसका नियंत्रण करना चाहिये।

पत्तियों का फोल्डर कीट: पत्तियों को जाली बनाकर लपेटकर बांध देता है तथा इल्ली इस जाली के अंदर पत्तियां खाकर भोजन करती हैं। यह कीट फूल एवं कलियों के गुच्छों को पत्ती के साथ लपेटकर पूरी तरह नष्ट कर देता है। इसके नियंत्रण के लिये इमिडाक्लोरोपिड कीटनाशक का छिड़काव करें।

फल्लियों को सुखाने वाला मत्कुण: यह कीट हरी फल्लियों का रस चूस कर विकास करते दानों को क्षति पहुँचाता है फलस्वरूप दाना सिकुड़ जाता है। ऐसे बीजों की अंकुरण क्षमता नष्ट हो जाती है तथा मनुष्य के खाने योग्य नहीं रहते हैं। डायमेथोयेट एवं इमिडाक्लोरोपिड से इस कीट को नियंत्रित किया जा सकता है।

प्लूममांथ: इसकी इल्ली कलियॉ, फूल एवं फलियों को अपना भोजन बनाती हैं। इससे संक्रमित कलियों में तथा नाजुक फलियों में छोटे–छोटे छिद्र देखे जा सकते हैं। इमिडाक्लोरोपिड अन्य सामान्य कीटनाशकों के छिड़काव से इस कीट को नियंत्रित किया जा सकता है।

रोग नियंत्रण

अरहर का पौधा अपने जीवन काल में अनेक बिमारियों से ग्रसित होता है। इस द्वीप समूह में अरहर की फसल में कुछ प्रमुख बिमारियाँ जो अत्याधिक नुकसान पहुँचाती हैं उनका विवरण निम्नानुसार है।

उकठा रोग (विल्ट): इस रोग में पौधा पीला पड़ कर सूख जाता है। पौधे की किसी भी अवस्था में इस रोग का प्रभाव हो सकता है यह एक भूमि जन्य रोग है तथा लगातार एक खेत में कई वर्षों तक अरहर की फसल लेने से इस रोग की उग्रता बढ़ती है। इस रोग के नियंत्रण हेतु प्रतिरोधी किस्में जैसे नरेन्द्र अरहर –1, सी ओ–6, किस्मों का उपयोग लाभप्रद है।

बांझपन विषाणु रोग: इस द्वीप समूह में बांझपन विषाणु रोग (स्टेरिलिटी मोज़ेक) नाम से जाना जाने वाला अरहर का यह बांझ रोग विषाणु जन्य है यह वायरस एक विशेष किस्म के सूक्ष्म जीवाणु के द्वारा एक पौधे से दूसरे पर स्थानांतरित हो जाता है एवं प्रभावित पौधे आंशिक अथवा पूर्ण रूप से बांझ हो जाते है। जिनमें फूल व फल्लियॉ नहीं लगती हैं। रोग ग्रस्त पौधे पीलापन लिये हुये हरे एवं झाड़ीनुमा हो जाते हैं। पौधों पर पत्तियों के आकार से भारी कमी तथा आंशिक या पूर्ण रूप से फूलों का न आना इस रोग के विशेष लक्षण हैं। रोग स्थानांतरित करने वाले जीवाणु की रोकथाम के लिये इमिडाक्लोरोपिड 700 मि.ली. प्रति हेक्टेयर के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें।

फाइटोपथोरा अंगमारी रोग: इस रोग से पौधे सतह पर आते ही नई पौध रोग ग्रसित हो सकती है जो पौधे एक माह पुराने होते हैं उनकी पत्तियों पर इस रोग का असर धब्बों के रूप में देखा जा सकता है। एक सप्ताह के भीतर पूरी पत्तियॉ अंगमारी रोग से जलकर नष्ट हो सकती है। तने एवं शाखाओं पर इस रोग के धब्बे गोलाई में बढ़कर उतने भाग को सुखा देते हैं। प्रभावी तना हवा से टूटकर गिर जाता है। कभी–कभी तने पर गांठ के रूप में इस रोग का असर होता है। इसमें तना सूखता नहीं हैं। प्रभावी क्षेत्रों में गॉठों पर दरारे आ जाती हैं तथा पौधा टूट जाता है। पुराने पौधों की तुलना में कम उम्र के पौधे इस रोग के अपेक्षाकृत अधिक संक्रमित होते है।

कटाई मड़ाई

जब फलियाँ काली पड़कर (लगभग 80 प्रतिशत तक पक जाने पर) पकने लगे तब तुड़ाई करना चाहिये। अरहर की फलियाँ गुच्छों में लगती हैं। पूरी फसल में फलियों को 2–3 बार में तोड़ लिया जाता है। इन फलियों को सुखाकर लकड़ी द्वारा पीटकर मड़ाई करें।

उपज

उपरोक्त तरीके से अरहर की खेती करने पर उपज 12–14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त की जा सकती है।

भंडारण

बीज के भण्डारण से पहले दाने को अच्छी तरह सुखा लेना चाहिए। बीज में 8 से 10 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं रहनी चाहिए। अरहर के भण्डारण में स्टोरेज बिन का प्रयोग करना चाहिए। सूखी नीम की पत्ती तथा नीम केक का भण्डारण के समय बीज के साथ प्रयोग करने से उपज की कीड़ों से सुरक्षा की जा सकती है।

70.फसल एवं भण्डारण में चूहा प्रबंधन

के. शक्तिवेल, आर.के. गौतम, पी. के. सिंह, योगेश्वरी, के. श्याम सुन्दर राव, अर्चना शर्मा एवं एस.के. जमीर अहमद

परिचय

द्वीपों में चूहे फसलों व भण्डारण में बहुत अधिक हानि पहुंचाते हैं। चूहों की कुल १६ प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जिनमे से केवल तीन प्रजातियाँ ही द्वीपों की स्थानीय हैं। चूहे न केवल भण्डारण में दानों को खाते हैं, बल्कि मल मूत्र इत्यादि से खाद्य पदार्थों को दूषित भी करते हैं। दूषित होने से खाद्य पदार्थ गंदे व विषैले हो जाते हैं, जिसके परिमाणस्वरुप घातक रोग जैसे प्लेग, साल्मोनेलोसिस तथा लेप्टोस्पायरोसिस आदि भी फैलते हैं। चूहे इन रोगों के वाहक के रूप में कार्य करते हैं। ऐसा अनुमान है कि चूहे द्वीपों में मुख्य भूमि से मालवाहक जहाजों के द्वारा पहुंचे हैं।

धान की फसल में चूहों से क्षति

चूहे धान की फसल को सभी अवस्थाओं मे क्षति पहुँचाते हैं लेकिन दानों मे दूध बनने की अवस्था से दानों के पकने के बीच गंभीर प्रकोप देखा गया है। प्रायः चूहे धान के पौधों को 45^0 कोण पर जमीन के स्तर से 5–10 सेंटीमीटर की ऊँचाई से काटते हैं जिसे देखकर चूहों द्वारा की गयी क्षति को असानी से पहचाना जा सकता है।

भंडारण में चूहों से क्षति

चूहे अपने शरीर के भार का लगभग 10 प्रतिशत तक अनाज रोज खराब करते हैं। यह दानों को काटने के अलावा उसमें मल–मूत्र एवं झड़े बालों को गिराकर भी अनाज को दूषित करते हैं। आधे खाये दानों के साथ बहुत सारे जीवित बिल, भण्डारण परिसर के आस–पास देखे जा सकते हैं।

चूहों का पारंपरिक प्रबंधन :

- खेत की गहरी जुताई कर चूहों के बिलों को नष्ट करना।
- खेत की मेढ़ियों को पतला (संकीर्ण) व साफ सुथरा रखना।
- खरपतवार मुक्त खेती करने से चूहों के प्रकोप को कम किया जा सकता है।
- चूहों को नियंत्रित करने के लिये समय–समय पर चूहे दानी का प्रयोग करना।
- भंडारण मे गिरे हुए दानों एवम् अन्य अवांछित चीजों की तुरंत साफ सफाई की जानी चाहिए तथा भंडार को हमेशा स्वच्छ रखना चाहिए।
- चूहों से क्षति कम करने हेतु पारंपरिक लकड़ी के भंडारण बिन के स्थान पर आधुनिक भंडारण संरचना व मेटल बिन का प्रयोग करना चाहिए।

चूहों का रासायनिक प्रबंधन

चूहों का अधिक प्रकोप होने पर इस विधि को अपनाना चाहिए। वर्तमान में चूहा प्रबंधन के लिए दो प्रकार के चूहानाशी की सिफारिश की गयी है जैसे की ब्रोमोडायालोन केक (0.005%) तथा जिंक फोस्फाईड (2%) है। ब्रोमोडायालोन केक चूहानाशी दुकानों पर ब्रोमोडायालोन रैट किल के नाम से आसानी से उपलब्ध है। इसे जीवित बिलों के भीतर सीधा रख देते हैं। जीवित बिल की पहचान के लिए खेत मे या भंडारण क्षेत्र मे सभी बिलों को मिट्टी से बंद कर दिया जाता है एवम् दो तीन दिन तक निगरानी की जाती है। चूहों द्वारा इन बिलों को दोबारा खोदने पर इसे जीवित माना जाता है। बहुत अधिक प्रकोप की स्थिति मे जिंक फॉस्फाइड दवा का प्रयोग सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

जहर रहित चारा बनाना

20 ग्राम वनस्पति (सरसों या मूंगफली या नारियल) तेल को 900 ग्राम टूटे चावल के चूरे मे मिलाकर सामान्य चारा बनायें। अधिक प्रकोप होने पर जहरीला चारा प्रयोग करने से पहले 2 से 3 दिन तक जहर–रहित चारे का प्रयोग करना चाहिए।

जहरीला चारा बनाना

20 ग्राम जिंक फॉस्फाइड, 20 ग्राम वनस्पति (सरसों या मूंगफली या नारियल) तेल को 900 ग्राम टूटे चावल के चूरे मे मिलाकर जहरीला चारा बनायें। जहरीला चारा प्रयोग करने से पहले चूहों को सामान्य (जहर रहित) चारा दिया जाता है जिससे चूहे चारे की ओर आकर्षित हो सकें इसे प्रीबेटिंग कहते हैं। सामान्य चारा खिलाने के 2 दिन बाद चूहों को जहर युक्त चारा दिया जाता है। चारे को चूहों के आवागमन वाले रास्तों व बिलों के पास प्लास्टिक के एक फुट लम्बे पाइपों व कटी हुई प्लास्टिक की बोतलों में रखना चाहिए।

चूहानाशी प्रयोग करते समय सावधानियाँ

- चूहानाशी पशुओं व मनुष्य के लिए बहुत अधिक विषैले व हानिकारक होते हैं।
- जहरीला चारा बनाने के लिए अलग बर्तनों का इस्तेमाल करें, घरेलू बर्तनों का इस्तेमाल ना करें।
- जहर को बच्चों व पालतू पशुओं की पहुँच से दूर रखें।
- चूहानाशी का इस्तेमाल करते समय खाना, पीना तथा धूम्रपान करना वर्जित है।
- चूहानाशी के डब्बों को खुले व हवादार स्थान पर ही खोलना चाहिए।

बचे हुए जहरीले चारे, खाली डब्बों एवं मरे हुए चूहों को गहरे गड्ढे में दबा देना चाहिए। जहरीली दवा बनाने वाले बर्तनों व हाथों को पास के तालाब व पानी के स्त्रोतों में ना धोयें।

71.मक्का

नरेश कुमार बैंसला, पी. के. सिंह, आर. के. गौतम, संजय कुमार पाण्ड्ेय, ए. के. सिंह, के. शक्तिवेल, एस. के. जमीर अहमद,
नागेश राम, साईं दास एवं एस. दाम रॉय

भूमिका

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में 572 द्वीप हैं जो 6–14^0 उत्तरी अक्षांश से 92^0–94^0 पूर्वी दक्षांश के बीच फैले हुए हैं, इनका क्षेत्रफल 8,249 वर्ग किलोमीटर है इन द्वीपों में उगाए जाने वाले अनाजों में चावल प्रमुख फसल है जिसे 8,000 हेक्टेयर क्षेत्र में वर्षा ऋतु के दौरान उगाया जाता है जबकि मक्का और अन्य् अनाजों का स्थान नगण्य (200 हे.) है। चूंकि यह कृषि भूमि विभिन्न द्वीपों में फैली हुई है जहां की कृषि जलवायु, कृषक समुदाय तथा खेती की शैली में भिन्नताएं हैं, अत: स्थान विशेष किस्मों/संकरों का विकास एवं परीक्षण अनिवार्य है। भारत मक्का उत्पादन क्षेत्र में पांचवा बड़ा उत्पादक देश है जो वैश्विक उत्पादन में 3% का योगदान देता है। भारत में मक्का का उत्पादन सभी ऋतुओं यानि खरीफ, रबी और ग्रीष्मकाल में होता है। चूंकि मक्का वर्षा आधारित है, अत: इसे मुख्यत: खरीफ ऋतु में उगाया जाता है। भारत में मक्के के क्षेत्रफल, उत्पादन और उपज में पिछले पांच दशकों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है और भारत शुद्ध आयात से आत्मनिर्भरता स्तर तक पहुंच गया है।

द्वीपों में गरीब एवं सीमान्त किसानों विशेषकर बेरोजगार ग्रामीण युवाओं के हित में इसे वाणिज्यिक रूप से उगाकर और इस पर आधारित उत्पादों की बिक्री से रोजगार उत्पन्न करने की विशेष किस्में जैसे गुणवत्ता प्रोटीन वाली मक्का, स्वीट कॉर्न एवं बेबी कॉर्न के विकास हेतु अथक प्रयास किये गए हैं। तथापि, उन्नत प्रौद्योगिकी के बावजूद इसका फल द्वीप समूह को प्राप्त नहीं हुआ है मुख्यत: इसका कारण है द्वीपों की खेती में इस फसल के प्रति ढिलाई। अत: आहार, खाद्य तथा चारे में मक्के के महत्व, द्वीप में स्पेशालिटी कॉर्न के आर्थिक महत्व पर विचार करते हुए तथा बढ़ते पर्यटन और स्थानीय बाजारों में बढ़ती मांग की दृष्टि से स्पेशालिटी कॉर्न की सम्भावनाओं की खोज तत्काल आवश्यक है।

बढ़ते पर्यटन उद्योग की दृष्टि से देखा जाए तो स्पेशलिटी कॉर्न आधारित उत्पा्दों की मांग और बढ़ेगी। इसके अतिरिक्त इसके उप–उत्पाद वर्षभर शूकर पालन, कुक्कुट पालन एवं पशुधन पालन में चारा के रूप में उपयोगी होगा। इससे द्वीप में मक्का उत्पादन के क्षेत्रफल, उत्पादन और उत्पादकता बढ़ाने में सहायता मिलेगी विशेषकर मानसून के बाद की अवधि में। भारत में एकल क्रॉस हाइब्रिड मक्का की सफलता को समझते हुए विशेषकर गैर–परम्परागत क्षेत्रों में, द्वीपों में इस फसल की अपार सम्भावनाएं प्रतीत होती हैं। द्वीप वासियों के लिए अनाजों की विविधता एवं सतत विकल्प हेतु मक्के में अनुसंधान एवं विकास प्रारम्भ करना समयोचित मांग है।

मृदा

मक्के को विभिन्न प्रकार की मृदाओं जैसे दोमट बलुई से चिकनी दोमट तक में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। तथापि जैविक पदार्थों से समृद्ध, उच्च जल धारण क्षमता एवं तटस्थ पीएच स्तर वाली मृदा उच्ची उत्पादकता के लिए अच्छी मानी जाती हैं। नमी के प्रति संवेदनशील फसल होने के कारण विशेषकर अधिक मृदा नमी एवं लवणता के प्रति यह वांछनीय है कि कम जल निकासी वाली निचली भूमि तथा उच्च लवणता वाले क्षेत्रों से बचे रहें। अत: मक्के की खेती के लिए उपयुक्त जल निकासी वाले खेतों का चयन किया जाना चाहिए।

किस्में

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में स्पेशलिटी कॉर्न सहित लगभग सभी प्रकार के मक्के को उगाया जा सकता है, द्वीप की स्थितियां वर्षभर किसी न किसी प्रकार के मक्के की खेती के लिए उपयुक्त हैं। केन्द्रीय द्वीपीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा सामान्य मक्का, क्वालिटी प्रोटीन मक्का, स्वीट कॉर्न, बेबी कॉर्न आदि की भली भांति जांच की गई और सफलतापूर्वक उगाया गया है।

सामान्य मक्का : डी एच एम 117 एवं एच एम 8

क्वालिटी प्रोटीन मक्का : एचक्यूपीएम1, एचक्यू पीएम2, एचक्यू पीएम3, एचक्यूपीएम4, एचक्यूंपीएम5, एचक्यूपीएम7 तथा विवेक क्यूयपीएम 9।

बेबी कॉर्न : एचएम 4, प्रकाश तथा पीईएचएम–2

स्वीट कॉर्न : एचएससी–1, स्वीट–72, प्रिया, माधुरी तथा विन।

पॉपकॉर्न : जवाहर, अम्बर तथा वीएल पॉपकॉर्न

बोवाई का समय और स्थान

मक्के को सभी ऋतुओं जैसे खरीफ, मानसून पश्चात तथा रबी (सूखी ऋतु) एवं बसंत ऋतु में उगाया जा सकता है। रबी और बसन्त ऋतु में किसानों के खेतों से उच्च उपज प्राप्त करने हेतु सिंचाई सुविधाओं को सुनिश्चित करना होगा। खरीफ ऋतु के दौरान यह वांछनीय है कि बोवाई कार्य मानसून प्रारम्भ होने से 12–15 दिन पहले पूरा कर लिया जाए। तथापि, वर्षा आध ाारित क्षेत्रों में बोवाई मानसून के प्रारम्भ के साथ होनी चाहिए। बोवाई का अनुकूलतम समय का विवरण नीचे दिया गया है।

ऋतु	खेत की स्थिति	उत्तम प्रकार	बोवाई का अनुकूलतम समय
खरीफ	अपलैंड	बेबी कॉर्न	मई के प्रथम सप्ताह से अगस्त माह के किसी भी खिले धूप का दिन।
		चारा	मई के प्रथम सप्ताह से अगस्त माह के खिले धूप का दिन।
		क्यूपीएम तथा हरे कॉब्स के लिए सामान्य मक्का	मई के प्रथम सप्ताह से जून के प्रथम सप्ताह के दौरान किसी भी खिले धूप के दिन।
	ढालू पहाड़ी क्षेत्र	बेबी कॉर्न	मई के प्रथम सप्ताह से अगस्त माह के किसी भी खिले धूप का दिन।
		चारा	मई के प्रथम सप्ताह से अगस्त माह के किसी भी खिले धूप का दिन।
रबी	पूरक सिंचाई सुविधा वाले अपलैंड क्षेत्र	बेबी कॉर्न, स्वीट कॉर्न, क्यू पीएम तथा सामान्य मक्का	नवम्बर के प्रथम सप्ताह से दिसम्बर के प्रथम सप्ताह के दौरान।
	पूरक सिंचाई सुविधा वाले अपलैंड क्षेत्र	चारा	अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से दिसम्बर माह तक किसी भी समय।
बसंत	अवशेष नमी तथा बंडिंग सुविधायुक्त निकले क्षेत्र	बेबी कॉर्न, स्वीट कॉर्न, क्यू पीएम तथा सामान्य मक्का	जनवरी के प्रथम सप्ताह से फरवरी के प्रथम पखवाड़ा तक।
	पूरक सिंचाई सुविधा वाले अपलैंड क्षेत्र	चारा	जनवरी के प्रथम सप्ताह से मार्च माह तक किसी भी समय।

बीज दर एवं पादप ज्यामिति

उच्च उत्पादकता एवं संसाधन उपयोग की दक्षता प्राप्त करने में मुख्य घटक अनुकूलतम पादप संख्या प्रमुख कारक हैं। किस्मों के अनुसार बीज दर, बीज आमाप, पादप प्रकार, ऋतु, बोवाई पद्धति आदि के लिए निम्नलिखित पादप ज्यामिति और बीज दर अपनानी चाहिए।

क्र. सं.	उद्देश्य	बीज दर (कि.ग्रा./हे.)	पादप ज्यादमिति (पादप x पंक्ति, से.मी.)
1.	दाने (सामान्य तथा क्यूपीएम)	20	60 x 20
2.	स्वीट कॉर्न	8	75 x 25
3.	बेबी कॉर्न	25	60 x 15
4.	चारा	50	30 x 10

जोताई एवं फसल स्थापना

अनुकूलतम पौध स्थापना प्राप्त करने हेतु जुताई एवं फसल स्थापना की कुंजी है जो फसल उपज का मुख्य संचालक है। यद्यपि फसल स्थापना क्रियाओं (बीज बोना, अंकुरण, अंकुर फूटना तथा पौध स्थापना) की श्रंखला है जिसमें बीजों की प्रतिक्रियाओं, बीज बोने की गहराई, मृदा की नमी, बीज बोने की विधि, मशीनरी आदि सम्मिलित हैं परन्तु रोपण की विधि उगाने की नियत स्थितियों के अंतर्गत फसल की बेहतर स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मक्के की बोवाई सामान्यत:

विभिन्न जोताई पद्धतियों एवं स्थापन विधियों को अपनाकर सीधे बीजों से की जाती है परन्तु शीतकाल में जब खेत सही समय (नवम्बर) तक खाली नहीं होते हैं तो नर्सरियों में उगाकर खेत में प्रतिरोपण किया जाता है। तथापि बोवाई कि विधि (स्थापना) मुख्यत: अनेक कारकों जैसे बीज बोने के समय की जटिल प्रतिक्रियाएं, मृदा, जलवायु, जैविक, मशीनरी और प्रबंधन, ऋतु, फसल प्रणाली आदि पर निर्भर करती है। अत: उच्च उपज प्राप्ति के लिए भिन्न भिन्न स्थितियों में विभिन्न प्रकार की रोपण विधियों को अपनाना महत्वपूर्ण है जो नीचे वर्णित है।

(i) ऊंची क्यारियों (मेड़) में रोपण : मानसून एवं शीतकाल के दौरान अधिक नमी तथा सीमित जल उपलब्धता/वर्षा आधारित दोनों ही स्थितियों में ऊंची क्यारियों में रोपण, मक्के की उत्तम रोपण विधि मानी जाती है। पूर्वी–पश्चिमी मेड़ों/क्यारियों के दक्षिणी ओर बीज बोवाई/रोपण किया जाना चाहिए इससे अच्छे अंकुरण में सहायता मिलती है। उपयुक्त दूरी रखकर रोपण किया जाना चाहिए। ऊंची क्यारियों में रोपण प्रौद्योगिकी अपनाकर उच्च उत्पादकता के साथ 20–30% सिंचाई जल की भी बचत की जा सकती है। इसके अलावा, अस्थायी रूप से अत्यधिक मृदा नमी/भारी वर्षा के कारण जल भराव की स्थितियों में फरो निकासी चैनल के रूप में कार्य करेंगे तथा फसल को अत्यधिक नमी दबाव से बचाया जा सकता है।

(ii) व्यावहारिक समतल खेत रोपण : बिना जोताई वाले अत्यधिक खरपतवार ग्रसन वाले क्षेत्र जहां रासायनिक/शाकनाशक खरपतवार प्रबंधन आर्थिक रूप से अलाभकर हैं और वर्षा आधारित क्षेत्र जहां फसल की उत्तरजीविता संरक्षित मृदा नमी पर निर्भर करती है, उन स्थितियों में सीड–कम–फर्टीलैजर प्लांटर्स के उपयोग से फ्लैट प्लाटिंग की जा सकती है।

(iii) क्यारी रोपण : जहां बसंत ऋतु के दौरान समतल एवं ऊंची क्यारियों में रोपण से जल की वाष्पण क्षति अधिक है और फसल नमी की दबाव झेलती है, वहां इसकी रोकथाम के लिए इन स्थितियों में उपयुक्त वृद्धि, सीड सेटिंग तथा उच्च उत्पादकता के लिए मक्के को फरो में उगाने का सुझाव दिया जाता है।

अंतर–फसलीकरण

द्वीप समूह में मक्के को कई अन्य फसलों के साथ उगाया जा सकता है, चावल को छोड़कर। द्वीपीय स्थितियों के अंतर्गत बेबी कॉर्न, सामान्य तथा उन्नत प्रोटीनयुक्त् मक्के की सफल खेती का परीक्षण सब्जियों जैसे भिण्डी, लोबिया, पत्तीदार सब्जियां, कद्दू, बैंगन तथा मिर्च के साथ किया गया है। साथ ही किसानों द्वारा अन्य फसलों के साथ मक्के की खेती की सराहना की गई। अंतर फसल तथा मुख्य फसल में पौधों के बीच की दूरी, पौषणिक प्रबंधन तथा जल प्रबंधन में सावधानी बरतनी चाहिए। इसके अलावा बारहमासी बागानों में मक्के की खेती की जा सकती है जहां नारियल एवं मसालों के पेड़ों के बीच खाली स्थान अनुपयुक्त रहता है।

विभिन्न सब्जियों के साथ मक्के की अंतर–फसल

मक्के् की खेती निम्नीकृत भूमि पर बनाए गए विभिन्न आकारों जैसे चौड़ा खेत एंव क्यारी, मत्स्य तालाबों के किनारों पर, दलहनों, सब्जियों, फूलों सहित अन्य फसलों के साथ आवश्यकता आधारित जोताई के साथ की जा सकती है।

पौषणिक प्रबंधन

सभी अनाजों में से सामान्य रूप से मक्का, विशेषकर संकर प्रजातियां डाले गए जैविक या अजैविक पोषक तत्वों के प्रति प्रतिक्रियाशील होती हैं। पौषणिक तत्वों के उपयोग की दर मृदा में मौजूद पोषण स्तर और फसल प्रणाली पर निर्भर करती है। उपयोग की गई जैविक खाद के प्रति मक्के की प्रतिक्रिया उल्लेलखनीय है, अत: मक्का आधारित उत्पादन प्रणालियों में समेकित पोषण प्रबंधन एक महत्वपूर्ण पोषण प्रबंधन रणनीति है। अत: मक्के की उच्च आर्थिक उपज के लिए बोवाई से 10–15 दिन पहले 10 टन गोबर की खाद/है. की दर से डाली जाती है तथा पूरक के रूप में 150–180 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 70–80 कि.ग्रा. फास्फोरस पेंटाक्साइड, 70–80 कि.ग्रा. पोटाशियम आक्साइड तथा 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हेक्टेयर की सिफारिश की जाती है। फास्फोरस, पोटाशियम और जिंक की सम्पूर्ण मात्रा बीजों के साथ दी जानी चाहिए। उच्च उत्पादकता और उपयोग कुशलता के लिए नाइट्रोजन की मात्रा को नीचे दिए रूप से 5 किस्तों में डाला जाना चाहिए। दाने लगने के दौरान नाइट्रोजन के उपयोग से दाने बेहतर रूप से लगते हैं। अत: नाइट्रोजन के बेहतर उपयोग के लिए इसे पांच किस्तों में बीज बोने के दौरान 20%, वी4 (4 पत्तियों की अवस्था) पर 25%, वी8 (8 पत्तियों की अवस्था) पर 30%, पुष्पण पर 20% तथा दाने लगने के दौरान 5% दिया जाना चाहिए। फसलों में पौषणिक कमी से उपज और किसानों का लाभ घट जाता है। खेत में मुख्य पौषणिक तत्वों की कमी के स्पष्ट संकेत मिलने के पूर्व ही उपज प्रायः 10–30% घट जाती है।

खरपतवार प्रबंधन

मक्के की खेती में खरपतवार गंभीर समस्या है विशेषकर खरीफ मानसून अवधि में। ये मक्के के साथ पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं और उपज 35% तक घट जाती है। अत: उच्च उपज प्राप्ति के लिए समयानुसार खरपतवार प्रबंधन आवश्यक है। एट्राजीन एक चयनात्मक एवं ब्रॉड स्पेक्ट्रम शाकनाशक है जो मक्के की खेती में खरपतवारों को बृहत रूप से नियंत्रित करता है। खरपतवार उभरने से पूर्व एट्राजीन 1.0–1.5 कि.ग्रा./हे./600 ली. जल में या अलाक्लार 2–2.5

कि.ग्रा./हे., या मेटोलाक्लार 1.5–2.0 कि.ग्रा./हे., या पेंडामेथलिन 1–1.5 कि.ग्रा./हे. का उपयोग अनेक वार्षिक और बड़ी पत्तियों वाले खरपतवारों के नियंत्रण में प्रभावकारी है। छिड़काव के दौरान छिड़काव करने वाले व्यक्ति को पीछे की ओर बढ़ना चाहिए ताकि मृदा की सतह पर बनी एट्राजीन की पतली परत भंग न हो। उन क्षेत्रों में जहां शून्य जोताई अपनायी गयी है, वहां रोपण से पूर्व खरपतवार नियंत्रण के लिए (बीज बोने से 10–15 दिन पहले) गैर–चयनात्मक शाकनाशक जैसे ग्लाइफोसेट 1.0 कि.ग्रा./हे./400–600 ली. जल या पैराक्वैट 0.5 कि.ग्रा./हे./600 ली. जल में उपयोग करने की सिफारिश की जाती है।

जल प्रबंधन

सिंचाई जल प्रबंधन ऋतु पर निर्भर करता है चूंकि मक्के की 80% खेती मानसून के दौरान विशेषकर वर्षा आधारित स्थितियों में की जाती है। तथापि जिन क्षेत्रों में सुनिश्चित सिंचाई सुविधा उपलब्ध है, वहां वर्षा एवं मृदा में नमी धारण क्षमता के अनुसार आवश्यकता होने पर सिंचाई की जानी चाहिए तथा पहली सिंचाई सावधानीपूर्वक की जानी चाहिए ताकि मेड़/क्यारियों पर जल की बहुतायत न हो। सामान्यत: फरो में जल मेड़/क्यारियों की 2/3 ऊंचाई तक भरा जाता है। तरूण नवोद्भिद पौधे, घुटनों तक की अवस्था (वी8), पुष्पण (वीटी) तथा दाने लगने की अवस्था, जल दबाव की संवेदनशील दशाएं हैं, अत: इन अवस्थाओं में सिंचाई सुनिश्चित की जानी चाहिए।

कटाई

द्वीपों में सूखी अवधि के दौरान ग्रीन कॉब तथा दानों के प्रयोजन के लिए सामान्य मक्के को उगाया जा सकता है। ग्रीन कॉब बोवाई के 70–75 दिनों में बाजार के लिए तैयार हो जाते हैं। द्वीपों में पौषणिक, जल एवं खरपतवारों के उपयुक्त प्रबंधन की स्थितियों में इन संकरों की औसत उपज 8–10 टन प्रति हेक्टेयर आंकी जाती है। बेबी कॉर्न मक्के के पौधे के मादा पुष्पवृन्त का युवा कॉर्न (यंग ईयर) है जिसे निषेचन से पूर्व जब सिल्क उगता है तब काट लिया जाता है। बेबी कॉर्न संकर के एक पौधे से 6 बेबी कॉर्न उगते हैं।

72.जैव–नियंत्रण कारकों के माध्यम से पादप रोग प्रबंधन

के. शक्तिवेल, आर. के. गौतम, पी. के सिंह, अर्चना शर्मा, रीना सिंह, श्याम सुन्दर राव और एस. दाम राय

दैनिक कृषि कार्यों में पौधों के रोग गंभीर चिन्ता के विषय हैं चूंकि रोगों के कारण फसल की उपज में भारी क्षति होती है। अंडमान द्वीपों की जलवायु जहां 3000 मि.मी. से अधिक वर्षा और 80% सापेक्ष नमी होती है, अधिकांश रोगाणुओं के वर्षभर जीवित रहने के लिए अत्यंत अनुकूल है जिससे फसलों में गंभीर रोग संक्रमण होता है। प्रत्येक वर्ष द्वीपों में किसान केवल विभिन्न पादप रोगों के कारण प्रमुख फसलों की कुल उपज का 10–50% नुकसान उठा रहे हैं। पादप रोग का सम्पूर्ण नियंत्रण संदेहास्पद है चूंकि प्रत्येक विशिष्ट पादप रोगाणु के लिए उपयुक्त रसायन अनुपलब्ध है। साथ ही रसायनों के उपयोग का भी अधिक समर्थन नहीं किया जाता है चूंकि इससे मानव एवं पशु स्वास्थ्य तथा द्वीपों की स्थलीय और समुद्री जैव–विविधता के लिए गंभीर खतरा है। परन्तु पादप रोगों के सफल प्रबंधन के लिए रोग के प्रारम्भ में ही रोग निरोधक उपायों की सामान्य प्रक्रिया अपनानी चाहिए। जैविक नियंत्रण भी एक ऐसी ही पद्धति है जहां स्थानीय उपयोगी जीवित सूक्ष्म जीवों के उपयोग से पादप रोगों को नियंत्रित किया जाता है। सरल शब्दों में कहा जाए तो यह विनाशकारी पादप रोगाणुओं को लाभप्रद बहु–क्षमता वाले स्थानीय मृदा सूक्ष्मजीवों के माध्यम से नियंत्रण करने की पद्धति है। जीवाणुवीय जैव–कारक जैसे बैसिलस स्पीशीज, सूडोमोनास स्पीशीज तथा कवकीय जैव–कारक जैसे ट्राइकोडर्मा स्पीशीज कुछ ऐसे जैव नियंत्रण कारक हैं जो बाजार में आसानी से उपलब्ध होते हैं। इन सूक्ष्म जीवों को जब उपयुक्त रूप से प्रयोग किया जाता है तो पादप रोगों से फसल अवधि के दौरान सम्पूर्ण एवं निरंतर रोकथाम होती है और मृदा में कोई अवशेषों की समस्या भी नहीं होती है। इन जैव–कारकों की मुख्य कार्य प्रणाली में परजीविता, प्रतिजीविता, प्रतिस्पर्धा तथा पादप रोगाणुओं के प्रति अपघटन सम्मिलित हैं।

जैव–कारकों से लाभ

- पादप रोग नियंत्रण की किसी अन्य पद्धति की अपेक्षा जैविक नियत्रण कम खर्चीला है।
- जैव–कारक सम्पूर्ण फसल अवधि मे संरक्षण देते हैं।
- अधिकांश कवकीय एवं जीवाणुवीय जैव कारक पादप रोगाणुओं के प्रति काफी प्रभावकारी हैं।
- पादप, मृदा, पर्यावरण तथा अन्य उपयोगी जीवों के लिए गैर–विषाक्त हैं।
- जैव–कारक अनेक उपयोगी यौगिकों के निस्सारण के माध्यम से पौध वृद्धि को बढ़ाते हैं और अन्य लाभप्रद मृदा सूक्ष्म जीवों को प्रेरित करते हैं।
- रसायनों से भिन्न जैव–कारकों का प्रबंधन आसान होता है और हैंडलिंग करने वाले व्यक्ति के लिए सुरक्षित है।
- इन्हें बाजार में उपलब्ध अन्य सूत्रणों के साथ भी उपयोग किया जा सकता है।

उपयोग पद्धतियां

बेहतर पादप रोग प्रबंधन एवं उच्च उपज प्राप्त करने हेतु इनका उपयोग फसल हेतु खेत की तैयारी से कटाई अवस्था तक किया जाना चाहिए। उपयोग की चार पद्धतियां निम्नवत हैं।

(i) मृदा में अनुप्रयोग

- एक किलोग्राम तालक आधारित जैव–कारक को 50 कि.ग्रा. अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद में अच्छी तरह मिलाया जाना चाहिए।
- 4–5 दिनों तक छांव में रखें। दो दिन में एक बार अच्छी तरह मिलाकर इसमें थोड़े से जल का छिड़काव करें।
- जोताई एवं प्रतिरोपण से पूर्व जैव–कारक से समृद्ध गोबर की खाद को एक एकड़ भूमि पर समान रूप से फैलाया जा सकता है।
- बेहतर रोग प्रतिरोधिता के लिए खड़ी फसल में 10 दिनों में एक बार मृदा उपचार जारी रखना चाहिए।

(ii) बीज उपचार

- 10 ग्रा. जैव नियंत्रक को पर्याप्त जल में मिलाकर घोल तैयार किया जा सकता है।
- बोवाई से पूर्व एक किलोग्राम बीज इसमें भिगोकर 30 मिनट तक रखें।

(iii) नवोद्भिद पौधों का उपचार

- 500 ग्रा. जैव नियंत्रक को 5 ली. जल में मिलाकर घोल तैयार किया जा सकता है।
- नर्सरी से मुख्य खेत में प्रतिरोपण से पूर्व 30 मिनट के लिए नवोद्–भिद पौधों की जड़ों के डुबोकर उपचार करें।

(iv) पर्णीय अनुप्रयोग

- 10 ग्रा. तालक आधारित सूत्रण को 1 ली. जल में मिलाकर खड़ी फसल की पत्तियों, फूलों तथा फलों पर छिड़काव किया जा सकता है।

रोग के प्रकोप से बचने के लिए 10–15 दिनों में एक बार छिड़काव किया जा सकता है।

पशु विज्ञान

73.मुर्गियों की नस्लें

टी. सुजाता एवं ए. कुंडू

घरेलू चिकन प्रजातियों की लगभग 300 नस्लें दुनिया भर में मौजूद हैं। उन्हें तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है:

1. शुद्ध वाणिज्यिक नस्लें
2. क्रॉस–प्रजनन से उत्पन्न संकर नस्लें
3. स्थानीय नस्लें या क्षेत्रीय प्रजातियां

वाणिज्यिक नस्लों को उनके मुख्य उत्पादन के अनुसार विभाजित किया जाता है:

1. अंडा देने वाली, मुख्य रूप से हल्के भार वाली नस्लें या लेयर्स
2. मांस उत्पादन, मुख्य रूप से अधिक भार वाली नस्लें या ब्रॉयलर
3. तथाकथित दोहरे प्रयोजन वाली नस्लें, अंडा देने वाली और मांस उत्पादन वाली नस्ल ।

वाणिज्यिक एवं संकर नस्लें

हल्के भार वाली नस्ल : अच्छी तरह ज्ञात हल्की भार वाली अंडे देने वाली नस्ल व्हाइट लेगहॉर्न है। व्हाइट लेगहॉर्न अनेक सफेद अण्डों के लिए जानी जाती है। अपने छोटे आकार के कारण इन्हें कम आहार की आवश्यकता होती है। अत: व्हाइट लेगहॉर्न अण्डें देने वाली दक्ष नस्ल है। अण्डे देने की अवधि समाप्त होने के पश्चात् उनसे काफी कम मांस प्राप्त होता है।

भारी नस्लें

भारी नस्लें: कुछ भारी नस्लें मांसयुक्त होती हैं और अनेक अंडे भी देती हैं। ये दोहरे उद्देश्य के उत्पादन के लिए उपयुक्त हैं। ये मुर्गियां भूरे रंग के अंडे देती हैं और आमतौर पर भूरे पंख होते हैं। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में छोटे मुर्गी पालकों के लिए भारी दोहरे उद्देश्य वाली नस्लें अत्यंत अनुकूल होती हैं, उदाहरण के लिए भूरे रंग वाली रोढ आइलैंड रेड, लाइट–ब्राउन न्यू हैम्पशायर।

मध्यम भार वाली नस्लें : मध्यम भार वाली नस्लों और भारी नस्लों को मांस उत्पादन के लिए पालन किया जाता है। मध्यम भार वाली नस्लों के कुक्कटों को भी वध के लिए रखा जाता है जो ब्रॉयलर चिकन के रूप में बेहतर होते हैं। उदाहरण के लिए व्हाइट कॉरनिश और व्हाइट प्लाईमाय रॉक।

संकर भारी नस्लों की विशेषताएं

इन भारी नस्लों में अधिक मांसपेशियां होती हैं। ये तेजी से बढ़ते है और बढ़कर शीघ्रता से वधशाला में पहुंच जाते हैं। इनके लिए भारी तादात में गुणवत्तापूर्ण आहार की आवश्यकता होती है। इसकी अच्छी आपूर्ति एवं संतुलन के लिए विशेष कौशल की आवश्यकता होती है। संकर या संकर नस्लें इस प्रयोजन के लिए विकसित विशेष वंशक्रमों का स्थानीय नस्लों के संकरों से प्राप्त होते हैं। संकर प्रजातियों की उत्पादकता अधिक होती है। शुद्ध नस्लों के बीच क्रॉस ब्रीडिंग भी आम बात है, उदाहरणार्थ व्हाइट लेगहॉर्न का संकरण रोड आइलैंड रेड से। आजकल संकर नस्लें आम हो गई हैं।

स्थानीय नस्लें

स्थानीय नस्लें लोगों की अपनी सम्पदा हैं। संकर नस्लों को लम्बे समय तक उपयोग नहीं किया जा सकता है चूंकि इनकी उत्पादकता घट जाती है। उत्पादन को उच्च स्तर पर रखने हेतु संकरों की नियमित खरीददारी की जानी चाहिए। अत: स्थानीय नस्लों को रखना हमेशा सस्ता होता है। चूंकि स्थानीय नस्लें स्थानीय परिस्थितियों का बेहतर अनुकूलन करते हैं अत: रोग आदि के प्रति संकर नस्लों की अपेक्षा कम संवेदनशील होते हैं। स्थानीय नस्लें सामान्यत: हल्की होती हैं और संकर नस्लों की अपेक्षा छोटे अंडे देती हैं। तथापि अंडों की संख्या के संदर्भ में भी स्थानीय नस्लें कम उपजाऊ होती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय नस्लें वर्ष में लगभग 50 अंडें देती हैं जब कि संकर नस्लें अनुकूल स्थितियों में एक वर्ष में 250 से 270 अंडे देती हैं। दूसरी ओर स्थानीय नस्लें संकर चिकन की अपेक्षा अपशिष्ट पदार्थों का बेहतर उपयोग करती हैं, अत: स्थानीय नस्लें घर के आस पास रखने के लिए अत्यति उपयुक्त हैं।

चिकन नस्ल का चयन

मुर्गियों की नस्ल के प्रकारों को निम्नलिखित कारकों / स्थितियों के आधार पर चुना जाता है:

1. मूल्य : आधुनिक संकर नस्ल बहुत महंगी हैं। उन्हें उपजाऊ होने के लिए बहुत अच्छी देखभाल और उच्च गुणवत्ता वाले, संतुलित आहार फीड की आवश्यकता होती है। स्थानीय नस्लें सस्ती होती हैं और स्थानीय स्थितियों के लिए अनुकूलित हैं। पर्याप्त देखभाल करने पर वे औचित्यपूर्ण उत्पादक हैं। हालांकि, बड़े पैमाने पर मुर्गी उत्पादन के लिए हमेशा संकर नस्लें बेहतर होती हैं।

2. बाजार की स्थिति : यदि बाजार में अंडों और मांस की अच्छी मांग तथा अच्छी आपूर्ति एवं संतुलित आहार उपलब्ध हो तो मध्यम भार वाले संकरों का चयन करना चाहिए।
3. यदि अंडे बेचने का प्रयोजन हो तो अंडे देने वाली सफेद मुर्गियों को चुना जाना चाहिए। मांस के प्रयोजन के लिए, भारी और भूरी नस्लों का चयन किया जाता है। अपने घर की खपत के लिए और स्थानीय रूप से अतिरिक्त अंडे और मांस की बिक्री के लिए, स्थानीय नस्लें सबसे अच्छी होती हैं। अनुभव की स्थिति में सस्ती और स्थानीय नस्लों को चुना जाता है।
4. कृषि प्रबंधन : बेहतर कृषि प्रबंधन के तहत अधिक महंगी और लाभदायक संकर पसंद किए जाते हैं।
5. स्थानीय वरीयता: भूरे रंग के अंडे स्थानीय क्षेत्र में अधिक पसंद किये जाते हैं।
6. उपलब्धता: हाइब्रिड हमेशा स्थानीय रूप से उपलब्ध नहीं हैं। ऐसी स्थिति में, स्थानीय नस्लों का चयन किया जाता है।

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह की मुर्गियाँ

मुख्य भूमि से अलगाव की लंबी अवधि के दौरान द्वीपों की मुर्गियों के जीनोम में आनुवांशिक बदलाव आए हैं। इन द्वीपों में पक्षियों की 243 प्रजातियाँ और उप प्रजातियाँ हैं और उन्हें प्रवासियों – 100, निवासियों – 43, निवासी (स्थानिक) – 95 और प्रवेश कराए गए – 5 के रूप में वर्गीकृत किया गया है। ब्रिटिश ने पहले इन द्वीपों में व्यवस्थित पोल्ट्री खेती की है। उपलब्ध पोल्ट्री जर्मप्लाज्म ज्यादातर नॉन–डिस्क्रिप्ट हैं, निकोबारी फौउल वल, फ्रिजल फौउल, नग्न गर्दन, एसील, बार्ड देसी और रेड जंगल जैसे कुछ स्वदेशी पक्षियों को छोड़कर। द्वीप में मुख्यत: 80% नॉन–डिस्क्रिप्ट हैं और केवल 20% पोल्ट्री पक्षी उच्च उपज देने वाली एवं विदेशी नस्ल हैं।

निकोबारी पक्षी (फाउल)

निकोबारी फाउल को स्थानीय रूप से जनजातियों में इसे टकनिएट कहा जाता है जिसकी शेंक की लम्बाई कम, गठीला शरीर और वक्र आकार, पीछे के आंगन में पालन करने पर दक्ष आहार कंवर्टर, उच्च रोग प्रतिरोधिता इसकी विशेषताएं हैं। यह मुख्यत: निकोबार क्षेत्र विशेषकर कचाल, टेरेसा, कमोर्टा, चौरा, कार निकोबार, पिलोमिलो तथा दक्षिणी एवं मध्य अंडमान के विभिन्न भागों में पायी जाती हैं। भारत की देशी प्रजातियों में अत्यधिक अंडे देती हैं। तीन किस्में उपलब्ध हैं जैसे भूरे, सफेद और काला। वयस्क का औसत शारीरिक भार 1.4 कि.ग्रा है, वार्षिक अंडा उत्पादन 150 अंडे हैं, लैंगिक परिपक्वता 184 दिनों पर, फीड कंवर्जन रेशियो 2.6 तथा मोर्त्यता (0–8 सप्ताह) केवल 2 प्रतिशत तथा 0–72 सप्ताह, 6.4 प्रतिशत है।

स्थानीय पक्षी (देसी)

स्थानीय देसी पक्षी सभी द्वीपों और विभिन्न किस्मों में उपलब्ध है जैसे बार्ड देसी, फ्रिजल फौउल, नंगे गर्दन और इन सभी का मिश्रण इन द्वीपों में पाए जाते हैं। ये पक्षी अंडे कम देते हैं और शरीर का भार भी कम होता हैं। वे रोगों के प्रति अति संवेदनशील हैं जिनमें मुख्यत: रानीखेत रोग और आईबीडी रोग।

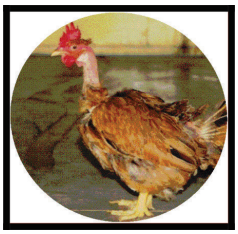

वैकल्पिक पोल्ट्री खेती

जापानी बटेर

इन्हें आमतौर पर बटेर के नाम से जाना जाता है। इन छोटे पक्षियों को अंडमान एवं निकोबार के गर्म एवं नम जलवायु में वर्ष 2000 में प्रवेश कराया गया था। लैंगिक परिपक्वता की आयु बहुत कम है (5 वें सप्ताह) और बहुत अधिक अंडे (250–300 अंडे/वर्ष) देती है। जनरेशन अंतराल कम है, निम्न मृत्यु दर, कुशल फीड कनवर्टर और विपणन हेतु आयु (6 सप्ताह) में औसत शरीर का वजन 130–150 ग्राम प्रति पक्षी है।

गिनी फाउल

हार्डी पक्षी, विनम्र और समूह बनाकर चलते हैं। किसी भी कृषि–जलवायु के लिए उपयुक्त, चिकन के कई आम रोगों के प्रति प्रतिरोधी है। इसमें किसी भी विस्तृत और महंगे आवास की आवश्यकता नहीं होती है उत्कृष्ट सफाई और क्षमताओं को बढ़ाते हुए, मुर्गियों का भोजन उपयोग न किए जाने वाले सभी गैर–पारंपरिक फीड की खपत करता है। 12 सप्ताह में शारीरिक वजन 900–1000 ग्राम, पहले अंडे 230–250 दिन की आयु में, औसत अंडे का वजन 38–40 ग्राम, अंडे का उत्पादन (मार्च से सितंबर तक की एक अंडे देने के चक्र में) 100–120 होता है।

टर्की

इन्हें भी मुख्य भूमि से प्रवेश कराया गया है। उपलब्ध किस्मों की चौड़ी छाती वाली काली और सफेद रंगों में ये होती हैं। आम तौर पर पिछवाड़े की खेती में पालतू पक्षियों के रूप में किसानों द्वारा इनका पालन किया जाता है। लैंगिक परिपक्वता की आयु 24 सप्ताह है, यौन परिपक्वता पर वजन 7–8 किलोग्राम है, वार्षिक अंडा उत्पादन 80–90 है और अंडे का वजन 64–84 ग्राम है।

बत्तख

बत्तख की आबादी 97,287 है जो कुल मुर्गी आबादी का 8.3% है। उपलब्ध किस्मों में मुख्य रूप से खाकी कैम्पबेल, पेकिन और स्थानीय बतख हैं। यौन परिपक्वता की आयु 145 दिन है, यौन परिपक्वता पर वजन 1.4–1.5 कि.ग्रा. है, औसत वार्षिक अंडों का उत्पादन 150 है और अंडे का वजन 62–65 ग्राम है।

निष्कर्ष

दुनिया भर में सैकड़ों मुर्गियों की नस्लें उपलब्ध हैं। वे तीन श्रेणियों में आते हैं शुद्ध वाणिज्यिक नस्लें, क्रॉस–प्रजनन और स्थानीय नस्लें या क्षेत्रीय प्रजातियों से उत्पन्न संकर नस्लें। व्हाइट लेगहॉर्न बहुत सफेद अंडे देती हैं। भारी दोहरे प्रयोजन वाली नस्लें अंडे और मांस दोनों के लिए हैं। मांस के उत्पादन के लिए मध्यम आकार की नस्लों को चुना जाता है। स्थानीय नस्लें आमतौर पर वजन में हल्की होती हैं और संकर नस्लों के मुकाबले छोटे अंडे देती हैं। नस्लों को मूल्य, स्थानीय वरीयता, अनुभव, कृषि प्रबंधन, उपलब्धता और बाजार की स्थिति जैसे आधारभूत कारकों के आधार पर चुना जाता है। अंडमान एवं निकोबार द्वीपसमूह के मुर्गी समूह में निकोबारी मुर्गी और अन्य देसी पक्षी शामिल हैं।

74.अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में मवेशी पालन

एम.एस. कुंडू, ए.के. डे., ए. कुंडू, टी. सुजाता, जय सुंदर एवं एम. मुणिस्वामी

मवेशियों की सामान्य प्रबंधन कार्य प्रणाली

हाउसिंग

डेयरी मवेशियों के लिए हाउसिंग अति महत्त्वपूर्ण हैं। इससे मवेषियां तनावमुक्त होते हैं। मवेशियों का शैड चाहे कच्चा हो या पक्का हो, इन बातों पर ध्यान रखना आवश्यक होगा कि उपयुक्त निकासी और अपशिष्ट सामग्री का निपटान हो। मवेशियों के शैड की नियमित रूप से सफाई करनी चाहिए ताकि संक्रमण की रोकथाम हो सके।

टीकाकरण

सौभाग्यवश अंडमान एवं निकोबार द्वीप गोजातीय पशुओं के प्राणीघाती रोगों से मुक्त है। इसके बावजूद कुछ रोग इन द्वीपों में व्याप्त हैं जैसे एफएमडी, ब्रूसेल्लोसिस आदि। अत: किसानों को अंडमान एवं निकोबार प्रशासन के पशु पालन विभाग के टीकाकरण कार्यक्रमों से लाभ लेना चाहिए।

नियमित डी–वार्मिंग

इन द्वीपों में परजीवीय रोग व्याप्त हैं और निम्न दुग्ध उत्पादन में यह एक प्रमुख चिन्ता का विषय है, नियमित डी–वार्मिंग अपनाया जाए। किसानों को इस विषय पर चर्चा हेतु पशु चिकित्सा अस्पताल जाना चाहिए।

पशुओं की दैनिक निगरानी

पशुओं की निगरानी दैनिक तौर पर की जानी चाहिए। यदि पशुओं में कोई असाधारण व्यवहार या असुविधा देखी जाती है तो पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।

आहार

डेयरी क्षेत्र में पशुओं को उचित आहार देना अति महत्त्वपूर्ण है। यदि पशुओं को उचित आहार नहीं दिया जाता तो दुग्ध उत्पादन घट जाएगा। औसतन पशुओं को 100 कि.ग्रा. शारीरिक भार पर 2.5 से 3.0 कि.ग्रा. सूखे पदार्थ दिये जाने चाहिए। उदाहरण के लिए यदि एक गाय का शारीरिक भार 300 कि.ग्रा. है तो उसे 7.5 से 9.0 कि.ग्रा. सूखे पदार्थ दिये जाने चाहिए। यदि चारा उपलब्ध हो तो 20 कि.ग्रा. चारा/दिन एक गाय के लिए पर्याप्त है।

चारा

उत्पादन लागत का दो तिहाई भाग आहार पर खर्च होता है, अत: यह महत्त्वपूर्ण है। इसके अलावा संतुलित पशुधन आहार का परिणाम तुरन्त दुग्ध उत्पादन में वृद्धि के रूप में देखा जा सकता है। मांस प्रयोजन के लिए पशुओं का पालन किया जाता है तो इसका प्रभाव वृद्धि दर, शारीरिक भार में लाभ तथा उन्नत उर्वरता (शीघ्र, समय पर बियाना; बछड़ों के बीच कम अंतराल) तथा स्वास्थ्य पर देखा जा सकता है। चूंकि दूध हर दिन निकाला जाता है, अत: पशुपालक दुधारू पशुओं को आहार देने पर ज्यादा ध्यान देते हैं। जलवायु परिवर्तन एवं सामाजिक आर्थिक अवरोधों के कारण फसल निष्पादन की अनिश्चितताओं के दौर में अधिक संख्या में लोग विशेषकर युवा वर्ग पशु पालन गतिविधियों की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। फसलों की तुलना में पशुधन के लिए बाजार किसान के घर तक ही पहुंच जाता है। अत: लाभ प्राप्त करने के लिए पशुधन के आहार पर समुचित एवं समय पर ध्यान देना आवश्यक है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि हमारे पास विश्व का 2.3% भू–भाग है परन्तु विश्व पशुधन का 10.71% भाग हमारे पास है। प्रति पशुधन भूमि का कम उपलब्ध होने के कारण इनके सहारे के लिए आहार और चारा संसाधन अपर्याप्त हैं। नबार्ड कंसलटेंसी सर्विसेस (एनएबीसीओएनएस, 2007) द्वारा देश में चारे की स्थिति (तालिका–1) से संबंधित आकलनों से स्पष्ट है।

तालिका–1 देश में चारा संसाधनों की स्थिति

चारा के प्रकार	मांग (मिलियन टन)	उपलब्धता (मिलियन टन)	अंतर का प्रतिशत
सूखा चारा	416	253	40
हरा चारा	222	143	36
कांसनट्रेट	53	23	57

द्वीप में मक्का ज्वार, बाजरा, छोटे अनाज और मूंगफली की फसलों के अधीन छोटा सा भू–भाग होने के कारण आहार की तैयारी के लिए कच्ची सामग्री उपलब्ध नहीं होती है। इन्हें मुख्य भूमि से ला कर स्थानीय रूप से मिश्रण तैयार करने पर बहुत अधिक खर्च होता है और चारे की गुणवत्ता भी कम होती है।

चारे की कमी का समाधान

द्वीप में चारे की कमी की पूर्ति के लिए निम्नलिखित प्रयासों की आवश्यकता है जैसे क) वर्तमान में उपलब्ध चारा संसाधनों का उचित उपयोग और ख) चारे के नए संसाधनों का विकास।

वर्तमान में उपलब्ध चारा संसाधनों का उचित उपयोग

आहार देने की सरल तकनीक जैसे चारे को काट कर देना, आहार नांद में देना आदि से चारा/आहार नष्ट होने से बचाया जा सकता है। पशुधन पालकों में कम लागत वाले फूस कटर को लोकप्रिय बनाया जाना चाहिए। केन्द्र सरकार द्वारा मनरेगा के अंतर्गत राज्य सरकारों को पशुधन संबंधी कार्य करने की अनुमति जैसे चारा नांद (मुंगेर) का निर्माण तथा अज़ोला इस संदर्भ में अत्यंत उपयोगी होंगी। सभी किसान जिन्होंने सरकारी सहायता के अंतर्गत फूस कटर प्राप्त किए हैं, उन्हें अपरिहार्य रूप से मनरेगा के अंतर्गत चारा नांद और अज़ोला निर्माण के लिए सहायता उपलब्ध करायी गयी है।

परिरक्षित चारा तैयारी वास्तविक रूप से द्वीप में मौजूद नहीं है। चारे की खेती के अंतर्गत वार्षिक क्षेत्र बहुत ही कम है, परिरक्षित चारा तैयारी के लिए कच्ची सामग्री बारहमासी चारा उगाए जाने वाली रोपण फसलों से लाना होगा।

वर्षाकाल की लम्बी अवधि के कारण पशुधन को इस अवधि के दौरान चराई के लिए रोपण फसलों तथा सामुदायिक भूखण्डों से अतिरिक्त सामग्री उपलब्ध हो जाती है। शीतकाल और ग्रीष्म काल के दौरान चारे की कमी को दूर करने के लिए परिरक्षित चारे की तैयारी उपयोगी होगी। भारी वर्षाकाल के दौरान परिरक्षित चारे की तैयारी के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है। द्वीप में हरित चारे की निम्न गुणवत्ता की दृष्टि से हेलेज तैयारी, परिरक्षित चारे की तैयारी से बेहतर होगी। उत्पादित बायोमास की गुणवत्ता पर ध्यान दिए बिना हेलेज में परिवर्तित किया जा सकता है।

चारे के नए संसाधनों का विकास

- विशेष मकई (बेबी कार्न और स्वीट कार्न) की बढ़ती मांग को ध्यान में रखते हुए इसके लिए अतिरिक्त भूमि देनी चाहिए जिससे हरित चारे के अलावा मूल्यवान आर्थिक उत्पाद भी उपलब्ध होंगे।
- द्वीप के विशाल वेस्ट लैंड जैसे जल भराव क्षेत्र, अम्लीमय–लवणीय, लवणीय–लवणीय–सोडिक मृदाएं, तटीय रेतीली मृदाएं को क्षेत्र के लिए उपयुक्त, चारा उत्पादन के लिए उपयोग किया जाना चाहिए।
- इन द्वीपों में खाद्य कमी को हमेशा के लिए दूर करने के लिए चारे का इनडोर कल्टीवेशन ट्रे (सोल्यूशन कल्चर) में करना उपयोगी होगा।
- सरकार द्वारा कनसन्ट्रेटेड फीड प्रोडक्शन एण्ड सप्लाई एककों की स्थापना और मुख्य भूमि के राज्य (आन्ध्रप्रदेश, प. बंगाल तथा तामिलनाडु) से सहकारी/वाणिज्यिक डेयरी से भी आहार लागत में कमी आ सकती है।
- द्वीप में पशुधन क्षेत्र के लिए अपार सम्भावनाएं हैं जिससे संतुलित पोषण तथा रोज़गार दोनों को प्रोन्नत किया जा सकता है परन्तु समस्या चारा आपूर्ति की ओर से है जिसे सभी पणधारियों के सामूहिक प्रयासों से निपटना होगा। इन द्वीपों में चारा उत्पादन को बढ़ाने के लिए निम्नलिखित उपायों को अपनाना चाहिए।
- प्रत्येक पंचायत क्षेत्राधिकार के अंतर्गत उपलब्ध चराई/परती भूमि के उपयोग के लिए चारा विकास कार्यक्रम हेतु एक कार्य दल का गठन किया जाना चाहिए और कमी की अवधि के लिए चारा बैंक का विकास किया जाना चाहिए।
- वर्तमान योजना को बेहतर कार्यान्वयन के लिए इसे पुन:अनुकूल किया जाना चाहिए।
- चारा विकास कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने तथा इसे कार्यान्वयन के लिए सीआईएआरआई को संयोजक बनाया जाना चाहिए।

मवेशियों के आम रोग

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह अनेक घातक रोगों जैसे हेमॉरेहजिक सेप्टीसेमिया, रिंडरपेस्ट, एन्थ्राक्स, ब्लैक क्वॉरटर आदि से मुक्त है। तथापि अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में व्याप्त कुछ रोगों का नीचे उल्लेख किया जा रहा है :

- खुर एवं मुंहपका रोग
- ब्रूसेल्लोसिस
- लो मिल्क फैट सिंड्रोम
- केटोसिस
- मिल्क फीवर
- ग्रास टेटानी
- व्हाइट मजल डिसीज
- अनुर्वरता
- परजीवीय रोग

गर्भवती गाय का प्रबंधन

गर्भवती गायों की उचित देखभाल तथा कुशल प्रबंधन पर ही सफलता अधिकांशत: निर्भर होती है। डेयरी पालक गर्भवती गाय तथा प्रसव के बाद उस पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान रखना चाहिए। निम्न लिखित बिन्दुओं को अपनाया जाना चाहिए।

- गर्भावस्था की अंतिम तिमाही, गायों के लिए महत्त्वपूर्ण है और उस दौरान गाय किसी चोट या संक्रमण के प्रति अत्यंत संवेदनशील होती है। उस दौरान नियमित रूप से ध्यान देना चाहिए।
- गर्भावस्था की उन्नत स्थिति में गायों की देखभाल करनी चाहिए कि जमीन पर फिसलने के कारण उन्हें कोई चोट न पहुंचे। अत: फर्श फिसलन भरा न हो। फर्श और कैटल शैड की नियमित रूप से सफाई की जानी चाहिए।
- गर्भावस्था की उन्नत स्थिति वाली गायों को अन्य गायों से अलग रखना चाहिए ताकि उन्हें कोई चोट न पहुंचे।
- प्रसव के लक्षणों पर सावधानीपूर्वक ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके लक्षण हैं उदर का फूलना, योनी का फूलना तथा पूंछ के चारों ओर स्नायुबंधन छोड़ना। इस अवस्था में गाय को अन्य पशुओं से अलग कर देना चाहिए। प्रसव के दौरान इस पर ध्यान देना चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।
- प्रसव के पश्चात, जननांग, फ्लैंक तथा पूंछ को गर्म जल में पोटाशियम परमैंगनेट डालकर या नीम की पत्तियों को उबालकर उस जल से सफाई/धोना चाहिए। यह एक अच्छा एंटीसेप्टिक है।
- प्रसव के पश्चात् पशु को गर्म स्थितियों में रखें तथा गुड़ का शरबत पिलायें।
- गाय का प्रसवनाल 2–4 घंटे में निकल जाता है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहीं पशु इसे न खा जाए। यदि यह 6–8 घंटों में नहीं निकलता है तो पशु चिकित्सक की सहायता ली जानी चाहिए।

डेयरी पशुओं पर आधारित पशुधन पालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह के संदर्भ में भी यह सही है और किसानों की आजीविका में सहायक है। डेयरी फार्म का प्रबंधन डेयरी की सफलता का केन्द्र बिन्दु है। यदि उचित प्रबंधन किया जाए तो डेयरी क्षेत्र किसान के लिए अत्यधिक लाभदायक होगा।

75.द्वीपों में बकरी पालन

जय सुंदर, ए कुंडू, एम् एस कुंडू एवं टी सुजाता

अंडमान निकोबार द्वीप समूह में बकरियों की प्रजातियाँ

इन द्वीपों में मुख्य रूप से बकरियों की तीन प्रजातियाँ पायी जाती है। इनके नाम हैं : अंडमान लोकल बकरी, टेरेसा बकरी और जंगली बकरी (बैरन द्वीप में)। इसके अलावा अन्य बकरियों में, मालाबारी बकरी भी पायी जाती है जो अंडमान पशु पालन निदेशालय द्वारा सातवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत लायी गयी थी।

अंडमान लोकल बकरी

यह बकरियाँ छोटे और मध्यम आकार में पायी जाती हैं, साथ ही इनके पैर बड़े सख्त होते हैं। यह प्रजाति अपने बेहद अच्छे मांस और उत्तम किस्म के चमड़े के लिए मशहूर है। अंडमान लोकल बकरी काफी हद तक ब्लैक बंगाल प्रजाति से मिलती जुलती है। ये बकरियॉ पूरे अंडमान तथा निकोबार द्वीप में पायी जाती हैं। यहॉ पर तीनों रंग की बकरियॉ पायी जाती हैं जैसे काली, सफेद और भूरी। किन्तु काले रंग की बकरियाँ,भूरे और सफेद रंग की अपेक्षा ज्यादा पायी जाती हैं। इन्हें प्राथमिक खुराक कि.ग्रा. में ही दीया जाती है तथा इन्हें खराब मौसम के समय में भी कि.ग्रा. में चारा दिया जाता है। इन बकरियों में अत्यधिक प्रजननकारी और जुड़वा तथा तीन बच्चे देना सामान्यतः होता है। व्यस्क अवस्था में शरीर का भार १६–२२ कि.ग्रा. होता है।

टेरेसा बकरी

यह बकरियाँ टेरेसा, बम्बूका, कचाल और कार निकोबार द्वीपों में पायी जाती हैं। यह बकरियाँ इन्डोनेशिया की कैम्बीं•–कचां• प्रजाति के जैसी दिखती हैं। इनमें जुड़वा तथा तीन बच्चे देने का गुण सामान्य है। पूर्णतः प्रजनन के लिए इन्हें 9 महीने का समय लगता है। 4 साल की अवस्था में इनका भार 50–60 कि.ग्रा.– तक बढ़ जाता है। रोजाना दूध की औसत पैदावार 1 लिटर की दर से होती है। ये १३–१५ महीने पर पहली बार बच्चे को जन्म देती हैं। इन बकरियों को मॉस की पूर्ति के लिए पाला जाता है तथा निकोबारी जनजाति के लोग इन्हें पालते हैं। इनकी खुराक में नारियल, नारियल के पत्ते और अन्य पेड़ के पत्ते आते हैं।

ज़ंगली बकरी

ये बकरियाँ मुख्यतः बैरन तथा नारकोन्डम द्वीपों में पाई जाती हैं, जहॉ पर जनजीवन शून्य है। हमारे देश में बैरन द्वीप एक ऐसा द्वीप है, जहॉ सक्रिय ज्वालामुखी है। सन् 1891 में स्टेशन स्टीमर ने पोर्ट ब्लेयर से ब्लैक बंगाल की बकरियों की कुछ किस्मों को वहाँ पर ले जाकर छोड़ दिया था जिनमे से कुछ बकरियॉ यहॉ के परिस्थिति में ढल गयी हैं और जीवित बच गयी। ये बकरियाँ मीठे पानी के अभाव के कारण समुद्र के जल पर ही निर्भर रहती हैं। अध्ययन करने पर पता चला है कि ये बकरियॉ 1:4 ताजे {वर्षा के जल} तथा समुद्री जल को पीती हैं। इनके मॉस की गुणवत्ता तथा बहुप्रजनक क्षमता सामान्य ब्लैक बकरियों जैसे होती हैं। इनका दुग्ध उत्पादन बहुत कम होता है। ये मुख्य रूप से खुले में तथा एकांत में चरना पंसद करती हैं। ये सुबह तथा शाम के समय चरती हैं और पेड़ों के नीचे छाया में विश्राम करती हैं। इनके व्यस्क का शरीरिक भार 25–30 किग्रा. तक होता है।

मालाबारी बकरी

मालाबारी बकरियों को सातवें पंचवर्षीय योजना के दौरान इस द्वीप में केरल तथा तामिलनाडु से खरीद कर लाया गया था। यह बकरियाँ मध्यम आकार की होती हैं तथा इनका कोई विशेष रंग नही होता है। ये पूरे सफेद तथा पूरे काले रंग के बीच के सभी रंगो में पायी जाती है। इस प्रजाति को मॉस की मांग पूर्ति के लिए पाला जाता है। इनकी पहली बार यौन परिपक्वता के समय औसतन 246–250 दिन, पहली बार बच्चे को जन्म देने का समय 410–5 दिन, और बच्चों का वजन 1–9 कि.ग्राम तथा एक साल बाद शरीर का वजन 13–16 कि.ग्रा. हो जाता है। दूसरे साल 21–26 किलोग्राम तथा चौथे वर्ष 34–36 कि.ग्रा. वजन हो जाता है।

निवास स्थान की सुविधा

हर बकरी के रहने के लि, 6–7 वर्गफीट की आवश्यकता होती है। इन बकरियों के घर को तैयार करने में लकड़ी या पक्के घर की जरूरत होती है। बकरियों का निवास स्थान अच्छा हवादार हो तथा वे साफ–सुथरे स्थान में आराम करना पसंद करती हैं।

चारे की आदत

- बकरियाँ कई प्रकार के चारे खाती हैं तथा दिन भर कुछ न कुछ मुँह में लेकर जुगाली करती रहती हैं।

- बकरियाँ बहुत ही छोटे–छोटे घास खाना पसंद करती हैं तथा कल्ले वाली पत्तियाँ खाती हैं। परन्तु ये चरते समय अन्य जानवरों की उपस्थिति बिलकुल पंसद नही करती हैं।
- व्यस्क, प्रौढ़ावस्था के अलग–अलग चरणों में ये कुछ विशेष प्रकार के पौधों के पत्ते खाती हैं।
- पत्तों का प्रयोग बकरियों के आहार का एक महत्वपूर्ण भाग है।
- इनका चारा बहुत ही सस्ते में आ जाता है। इनके आहार में कल्ले वाली पत्तियॉं, खेतों का व्यर्थ पदार्थ और कारखानों से निकला हर पदार्थ, जो खाने योग्य हो, ये खाते हैं।
- बकरियाँ कच्चे और रेशेदार चीजों को भी बड़ी आसानी से खाकर पचा लेती है।
- बकरियाँ अपने चारें में भूसी भी खाती हैं जो इनके पाचन क्रिया में मदद करती है।

व्यस्क बकरियों के भोजन में निम्नलिखित तत्वों का मिश्रण होना चाहिए।

गेहूँ का चोकर	20–0 कि–ग्रा–
चना	15–0 कि–ग्रा–
मक्का	37–0 कि–ग्रा–
खली	25–0 कि–ग्रा–
खनिज तत्वों का मिश्रण	2–50 कि–ग्रा–
सामान्य नमक	0–5 कि–ग्रा–
कुल	100–00कि–ग्रा–

चारे का प्रबंध

- बकरियों को उनके भोजन में पौष्टिक तत्वों की अच्छी मात्रा मिलने से इनके दूध उत्पादन में 45 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है।
- बकरी पालन तथा इनके चारे की लागत पालने में होने वाले खर्च से बहुत कम होती है।
- बकरियाँ पाचन शक्ति तथा पाचन क्रिया को बनाये रखने के लिए भूसी खाती है।
- मेमनों को अच्छी मात्रा में खीस का दूध मिलना चाहिए, क्योंकि इसमें सारे पौष्टिक तत्वों की प्रचुर मात्रा होती है जिससे इनके शरीर को रोगों से लड़ने की शक्ति प्राप्त होती है तथा रोगों से बचाता है।
- बकरी के बच्चे दूध पर ही निर्भर करते हैं तथा उनकी आयु और उनके शारीरिक वजन में वृद्धि के लिए इन्हें अच्छी मात्रा में मिलना जरूरी है। एक बच्चे का शारीरिक वजन 2.5 से 7.0 कि.ग्रा. तक बढ़ने के लिए उसे उसके जन्म से लेकर 3 से 4 हफ्तों तक 400–700 मि.लि. दूध रोजाना मिलना चाहिए, तथा साथ ही इन्हें चारा देने के शुरूआती समय में ताजे तथा कोमल घास तथा कल्ले वाले पत्ते देना चाहिए।
- शिशु के जन्म लेने के 4 महीने बाद ही उन्हें मोटा चारा दिया जा सकता है।
- जब बच्चे का शारीरिक वजन 5 कि.ग्रा. का हो जाए तो इन्हें इनके खाद्य पदार्थ को मिलाकर 50 ग्राम की मात्रा में खुराक देनी चाहिए।

जब बकरी के शरीर का वजन 30 कि.ग्रा. का हो जाए, तो उसे उनके मिश्रित खुराक की 350 ग्राम की मात्रा देनी चाहिए। तथा यह खुराक हमेशा देते रहना चाहिए। और इनके शरीर के 10 कि.ग्रा. वृद्धि पर इनकी खुराक की मात्रा में 50 ग्रा. बढ़ा देना चाहिए।

इनके शारीरिक भार की वृद्धि के लिए, मोटा चारा (कंपाउंड फीड) प्रदान करना है तथा शारीरिक वृद्धि के लिए हरा चारा 1.5 कि.ग्रा. देना चाहिए, तथा हर 5 कि.ग्रा. शारीरिक भार की वृद्धि पर 0.50 कि.ग्रा. चारा बढ़ाते रहना चाहिए। 30 कि.ग्रा. शारीरिक भार होने के बाद इनके शारीरिक भार के अनुसार इन्हें हरा चारा 40,50,60, कि.ग्रा. के वजन पर क्रमशः 4.0 कि.ग्रा. 5.0 कि.ग्रा. तथा 5.5 कि.ग्रा. चारा दिया जाना चाहिए।

शिशुओं की देखभाल

- शिशु बकरी के थन के अग्र भाग को पकड़े बिना अच्छी तरह दूध नहीं चूस पाते।
- शिशु के लिए खीस का दूध सबसे पौष्टिक भोजन है।
- जब बच्चे 3–4 हफ्ते के हो जाऐं तो इन्हें कम मात्रा में हरा चारा देना शुरू कर देना चाहिए।
- बच्चों को प्रचुर मात्रा में खुली हवा और सूर्य की रोशनी की आवश्यकता होती है।
- चार महीने के होने पर ये बच्चे पूरी तरह दूध पीना छोड़ देते हैं।
- जिन नर शिशुओं को प्रजनन के उद्देश्य से नहीं पाला जाता है कि उन्हें 2–3 महीने के बाद इनके शरीर से अडंकोश को निकाल दिया जाता है।

- इसके 2 हफ्ते बाद इन्हे सख्त आहार देना शुरू कर देते हैं।
- वे नर बच्चे जिन्हे प्रजनन के उद्देश्य से पाला जाता है इन्हें दूध की थोड़ी मात्रा और संतुलित आहार दिया जाता है।
- इन्हें इनके भोजन में चारों की अधिक मात्रा नही देनी चाहिए ।
- इन्हें भूसी अच्छी मात्रा में देनी चाहिए।

- इनके जन्म के समय इनकी नाभी से निकला हुआ, पतला तन्तु जो रक्त वाहिनी नली से जुड़ा होता है, उसमें टिंक्चर आयोडीन नामक औषधि 2 दिन तक लगातार लगानी चाहिए।
- छोटे बच्चों के बाड़े की अच्छी तरह कीट रहित करने के लिए, फिनाइल 10 प्रतिशत और कॉपर सल्फेट 10 प्रतिशत लेकर इनके घोल से धोना चाहिए।
- खूनी दस्त के इलाज के लिए एम्प्रोसॉल औषधि का इस्तेमाल करना चाहिए। बाह्य परजीवियों के लिए मैलाथियान का घोल (0.5 प्रतिशत्) तथा अंत: कृमि की रोकथाम के लिए ऐंथलमेंटिक दवाओं का इस्तेमाल करना चाहिए।
- इनको कभी–कभी शीतला (टिटेनस) का टीका लगवाना पड़ता है परन्तु इस द्वीप में शीतला का टीका बकरी को बहुत कम ही लगाया जाता है।
- बीमार जानवरों से इन्हें हमेशा अलग रखना चाहिए।

बकरियों में पाये जाने वाले सामान्य रोग

आमतौर पर बकरियों में पाये जाने वाले रोग हैं

- न्यूमोनिया : यह बहुत ही भयंकर बीमारी है और इसके कई कारण हो सकते हैं। बरसात के दिनों में न्यूमोनिया की समस्या ज्यादा होती है। मुख्य लक्षणों में तेज बुखार, दाना पानी बंद करना, घुटनों में सूजन, सर्दी, कंपकपी और अंत में मृत्यु। उपचार हेतु एंटीबायोटिक का प्रयोग करें ।
- बच्चों में जीवाणुजनित दस्त : इसके भी कई कारण हो सकते हैं । मुख्य लक्षण में पतले दस्त, जोकि जन्म के २४ घंटे बाद शुरू हो जाता है । धंसी आँखें, कमजोरी एवं मृत्यु । इस बीमारी से बचने के लिए बच्चों को हमेशा सूखे स्थान पर रखें।
- थनैला : इसके बहुजीवाणु कारण हो सकते हैं। इसमें थन व नलिकाओं पर घाव हो जाता है और कई बार थन पूर्ण रूप से बेकार हो जाता है। मुख्य लक्षणों में थनों का सूजन, तेज बुखार, दूध में खून के थक्के, आदि पाए जाते हैं। उपचार हेतू एंटीबायोटिक का इस्तेमाल करना चाहिए।

- ब्रुसेलॉसिस : यह भी जीवाणुजनित रोग है। इसका संक्रमण प्रदूषित जल, आहार, प्लेसेंटा, मूत्र और गर्भाशय अस्त्राव, संक्रामक नर के प्राकृतिक/कृत्रिम गर्भाधान द्वारा फैलता है। मुख्य लक्षणों में गर्भपात, लगातार योनी अस्त्राव, अंडकोश में सूजन, व दर्द आदि। इलाज के लिए टीकाकरण उपलब्ध है।
- पेट फूलना : यह मुख्य रूप से अधिक गेहूं, चावल, दाना खाने से होता है । मुख्य लक्षणों में पेट का फूलना, सुस्ती, पैर का फूलना तथा सही वक्त पे इलाज नहीं मिलने पर मृत्यु । इलाज के लिए, खाने का सोडा, खनिज तेल, वसा, आदि हलका गुनगुना पानी में मिलाकर पिलायें। फिर भी ठीक नहीं होने से पशुचिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए।
- फूट रॉट (खुर का सड़ना) : यह बीमारी यहाँ पर सामानयरूप से बारिश के मौसम में देखी जाती है। मुख्य लक्षण है, लंगड़ापन, खुरों के बीच सूजन व दर्द, बखार आदि । इसके इलाज के लिए रोगाणुरोधक घोल (५ : कापर सलफेट, फोर्मलिन) से घावों को साफ करना चाहिए, और बकरियों को सूखे स्थान पर रखना चाहिए ।
- लिवरफ्लूक संक्रमण : यह परजीवियों से होने वाली बहुत ही सामान्य बीमारी है । यह घोंघों से फैलता है और इस परजीवी का जीवन चक्र घोंघो से होकर गुजरता है । मुख्य लक्षण है, शेट का फूलना, दस्त, कमजोरी, वजन में कमी होना आदि । इलाज के लिए फ्लुक्नाशक औषधि का हर दो माह के अन्तराल पर इस्तेमाल करें ।

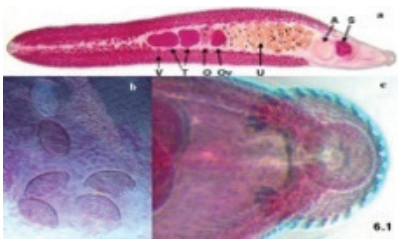

बिमारियों से बचाव हेतु कुछ सुझाव

- बकरी पालन का प्रारंभ हमेशा स्वस्थ पशुओं से करना चाहिए ।
- खरीद के तुरंत बाद लगभग एक माह तक झुण्ड की अन्य बकरियों से इन्हें पृथक अपने प्रेक्षण में रखना रोग नियंत्रण व बचाव में अहम् भूमिका निभाता है ।
- बकरियों को संतुलित व पर्याप्त आहार देना चाहिए ।
- उपयुक्त पशुघर में आरामदायक वातावरण देकर बकरियों को पारिस्थितिक प्रतिबल से मुक्त रखा जा सकता है ।
- गहन पद्धति में पली जाने वाली बकरियों के बाड़े तथा आहार व पानी के बर्तनों की नियमित सफाई आवश्यक है ।
- अनुत्पादक बकरियों को छांटकर अलग करके उनके स्थान पर परीक्षित अच्छे प्रजन पशुओं को रखना प्रभंध दृष्टि से लाभप्रद है ।
- आंतरिक परजीवियों के लिए निरंतर गोबर परिक्षण आवश्यक है और उचित कृमिनाशक औषधियों का नियमित इस्तेमाल आवश्यक है ।
- बाह्य रूप से बकरियों में किसी रोग लक्षण का अनुभव करते ही बीमार पशु को झुण्ड से अलग कर पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए ।
- बकरियों को अन्य पशुओं जैसे गाय, भैंस आदि से संपृथक कर देना चाहिए।

76.पशुधन एवं कुक्कुट पालन में जठरांत्रिय परजीविता प्रबंधन

सोफिया इंबराज, ए. कुंडू, जय सुदंर, एम. एस. कुंडू एवं टी. सुजाता

भूमिका

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह एक विशिष्ट द्वीपीय पारिस्थितिक क्षेत्र है जहां की जलवायु गर्म एवं आर्द्र उष्णकटिबंधीय है। द्वीपों में उल्लेखनीय संख्या में पशुधन एवं कुक्कुट प्रजातियां मौजूद हैं। मुख्य भूमि भारत से भौगोलिक रूप से अलग रहने के कारण यह द्वीप पशुधन के अनेक रोगों एवं प्रकोपों से मुक्त हैं जो भारत के अन्य राज्यों में व्याप्त हैं। द्वीप के गर्म एवं आर्द्र तापमान एवं द्वीपों में अधिक वर्षापात के कारण पशुओं में परजीवीय संक्रमण की वार्षिक सूचना मिली है।

परजीविता के प्रकार एवं नैदानिक लक्षण

पशुधन को प्रभावित करने वाले जठरांत्रिय परजीवियों को (i) ट्रेमाटोड्स या फ्लूक्स (ii) फीताकृमि (iii) सूत्रकृमि या गोलकृमि में वर्गीकृत किया जा सकता है। वयस्क पशुओं की तुलना में युवा पशु अधिक प्रभावित होते हैं। परजीवीय संक्रमण एवं भार प्रबंधकीय पहलुओं जैसे आवासीय पद्धति, चराई के प्रकार, जल स्रोत के अलावा जलवायु और पशु के प्रकार पर निर्भर करता है। प्रत्येक पशु या नस्ल की स्वाभाविक प्रतिरोधिता भी परजीवीय संक्रमण में भूमिका निभाती है। पशुधन पालक स्वयं ही परजीवियों से संक्रमित पशुओं को नैदानिक लक्षणों जैसे (i) दस्त (ii) आंखों की लसफस ष्लेष्म झिल्ली (iii) झालरदार रोएं (iv) शारीरिक भार या शारीरिक अवस्था की क्षति (v) युवा पशुओं में उभरा हुआ पेट से पहचान कर सकते हैं। मवेशियों में परजीवीय संक्रमण से दुग्ध उपज घट जाता है और बांझपन की समस्या हो जाती है। भैंस के बछड़ों के मृत्यु के कारणों में एक कारण अस्कारिड परजीवी माना जाता है। मांसल पशुओं जैसे बकरी, शूकर और कुक्कुट में इससे वृद्धि दर और मांस की गुणवत्ता घट जाती है जिससे आर्थिक आय कम हो जाती है।

प्रबंधकीय रणनीतियां

पशुओं में जठरांत्रिय परजीविता का नियंत्रण प्रबंधन प्रथाओं के एक सेट को अपनाकर किया जा सकता है जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित है।

(i) पशुपालाओं में सफाई बनाए रखना

(ii) निम्नलिखित उपायों को अपनाकर घोंघा नियंत्रण (क) कॉपर सल्फेट जल में 1:1500000 की दर से मिलाकर उपयोग (ख) बत्तख पालन

(iii) चारागाह भूमि पर चक्रीय चराई (वयस्क–युवा पशु; मवेशी–बकरी)

(iv) ऊपर उल्लेखित नैदानिक लक्षणों को देखकर स्थानीय पशु चिकित्सक के परामर्श से नियमित रूप से एन्थेलमेंटिक थेरापी।

कृमिनाशन शेड्यूल

क्र. सं.	प्रजाति	तरूण/युवा पशु	वयस्क पशु
1.	मवेशी एवं भैंस	● नियोनेटल एस्कारियासिस के लिए आयु के प्रथम सप्ताह ● 6 माह की आयु तक प्रत्येक माह एक बार	लीवर फ्लूक्सय एवं फीताकृमि – वर्ष में दो बार मानसून के पहले एवं मानसून के पश्चात। सूत्रकृमि-वर्ष में तीन बार
2.	बकरियां	● आयु के आठवें सप्ताह से कृमिनाशन प्रारम्भ ● एक वर्ष की आयु तक 4–8 सप्ताह में एक बार कृमिनाशन	● वर्ष में 4–6 बार कृमिनाशन
3.	शूकर	● दूध छुड़ाने के एक सप्ताह बाद ● आयु के तीसरे एवं सातवें माह में	● जंगलीसूअर – प्रत्येक 6 माह में ● शूकरी – ब्याना से दो सप्ताह पूर्व एवं दूध छुड़ाने के बाद
4.	कुक्कुट	● 6 माह की आयु से कृमिनाशन प्रारम्भ	● गहरी गंदगी या बैकयार्ड स्थितियों में महीने में एक बार ● टीकाकरण से कम से कम 10 दिन पहले पक्षियों का कृमिनाशन

77.द्वीपीय स्थितियों में वैज्ञानिक शूकर पालन

एम.एस. कुंडू, ए. के. डे, ए. कुंडू, टी. सुजाता एवं जय सुंदर

अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह के शूकर

द्वीपों में शूकरों के चार विभिन्न अनुवंशिक समूह (अंडमान वन्य शूकर, निकोबारी शूकर, लार्ज व्हाइट यार्कशैर ब्रीड के संकर एवं अंडमान के गैर वर्णनात्मक शूकर) मौजूद हैं। अंडमान वन्य शूकर घरेलूकरण के अंतर्गत नहीं है और यह अन्य तीन समूहों से विशेष प्रकार से भिन्न है। घरेलू शूकर जिन्हें निकोबारी शूकर कहा जाता है, अधिकांशत: निकोबारी द्वीप समूह में पाए जाते हैं जिनके विशेष लक्षण होते हैं और जनजातीयों में यह अत्यंत लोकप्रिय हैं। यह शूकर नस्ल विशिष्ट प्रकृति के होते हैं और निकोबारी जनजातीयों की आजीविका में अच्छी तरह समाहित है। निकोबारी जनजातीय लोग शूकरों को अनावश्यक रूप से उपभोग या बेचने हेतु वध नहीं करते हैं। शूकरों का अधिकांशत: त्यौहारों के दौरान ही वध करते हैं। पशु पालन विभाग में उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार शूकरों की संख्या 52,201 (डिगल, 2006) से घटकर 13,755 हो गई है। वर्तमान समय में इनकी क्रमिक वृद्धि हो रही है जो 19वीं पशुधन गणना, 2012 से स्पष्ट है। इसके अनुसार निकोबार में 22,781 शूकर हैं। यद्यपि निकोबारी जनजातीय लोग शूकर पालन से भली भांति जुड़े हुए हैं परन्तु उनमें शूकर पालन की वैज्ञानिक पद्धतियों की जानकारी नहीं है जो इस विशिष्ट जननद्रव्य की अनुकूलतम क्षमता को बढ़ाने के लिए आवश्यक है।

निकोबारी समुदाय में शूकर पालन अत्यंत महत्त्वपूर्ण व्यवसाय है और यह उनके लिए प्रतिष्ठा का प्रतीक है। वे कुक्कुट पालन सहित विभिन्न प्रकार के पशुधन का पालन भी करते हैं। इस प्रकार शूकर काफी स्वस्थ होते हैं और वे अधिकांशत: नारियल और इसके पानी पर पलते हैं। इस देशी नस्ल को स्थान विशेष कृषि जलवायु के लिए विकसित किया गया है। परितंत्र के न्यूनीकरण के कारण अपनाए गए पशुधन नस्ल या जीन प्ररूप में कमी आयी है। अंडमान द्वीप समूह के किसानों में यह आम परिपाटी है कि वे स्थानीय रूप से उपलब्ध पूरक आहार जैसे चावल की भूसी, टूटे चावल, रसोई से बचे–खुचे अपरद्द तथा अरबी (गुंइया) के साथ सफाई प्रणाली के अंतर्गत पालित कुछ स्थानीय या संकर नस्लों के शूकरों के लिए रखते हैं।

चित्र 1 : निकोबारी शूकर

चित्र 2: अंडमान वन्यी शूकर

चित्र 3: अंडमान देशी शूकर

निकोबारी शूकर के आर्थिक महत्व वाले गुण

परिपक्व निकोबारी शूकर का वजन 150–200 कि.ग्रा. होता है जो सामान्यत: 12–15 माह की आयु में प्राप्त होता है। प्रथम ब्याना, लिटर साइज और ब्योना अंतराल क्रमश: 10–12 माह, 6–12 घेंटे (पिगलेट्स) एवं 8–10 माह है। सामान्यत: शरीर की खाल सफेद, काली तथा सफेद खाल पर काली चकतियां होती हैं। दो विशिष्ट लम्बे– एवं छोटे थुथनी वाले किस्म पाए जाते हैं। वे सापेक्षिक रूप से अनेक रोगों के प्रतिरोधी होते हैं। इनका प्रबंधन आसानी से खुली स्तर की प्रणाली में किया जा सकता है। निकोबारी समुदाय के ऊंचे मकानों के नीचे शूकरों को रखा जाता है। देशी शूकरों की वृद्धि दर कम है, सम्भवत: आहार की गुणवत्ता में कमी, परजीवीय संक्रमण तथा अन्य रोगों के साथ साथ अनुवांशिक बदलाव के कारण हैं।

शूकर आहार एवं पर्यावरण

पौषणिक रूप से देखा जाए तो शूकरों को आहार देना एक जटिल प्रक्रिया है। लगभग 30–40 प्रतिशत शूकर ब्याने के बाद बाजार पहुंचने से पहले ही मर जाते हैं। इसके लिए अवैज्ञानिक रूप से आहार देने तथा पौषणिक कमी उतरदायी मानी जाती है। वैज्ञानिक तरीके से संतुलित एवं पौष्टिक आहार देकर इस क्षति को दूर किया जा सकता है। नाइट्रोजन (प्रोटीन एवं अमीनो एसिड का एक महत्वपूर्ण घटक), फास्फोरस तथा ऊर्जा शुकरों की खुराक में खर्चीले घटक हैं। दिलचस्प बात यह है कि शूकर खाद से प्रदूषण में नाइट्रोजन तथा फास्फोरस उल्लेखनीय योगदान करते हैं, अत: इन पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता को अधिकतम स्तर तक बढ़ाना आवश्यक है। बढ़ती मानव जनसंख्या एवं वैश्विक उष्मायन के प्रति उनकी चिन्ता से यह अनिवार्य हो जाता है कि शूकर पालन में नाइट्रोजन उपयोग दक्षता को बढ़ाने और पाचन बढ़ाने वाले गुणयुक्त शूकर आहार को विकसित किया जाए जिससे किसानों द्वारा शूकर पालन किया जा सके और पर्यावरण पर इसके प्रभाव कम हो सकें। यद्यपि परम्परागत उत्पादन प्रणालियां आर्थिक अध्ययनों के अनुसार व्यर्थ एवं अलाभकारी है, यह देखा

गया है कि कुल शूकर उत्पादन का केवल 20 प्रतिशत ही गहन पालन प्रणालियों से निकलते हैं जब कि 70 प्रतिशत से अधिक शूकर परम्परागत क्षेत्र से ही निकलते हैं। शूकरों के लिए विभिन्न गैर–परम्परागत उष्णकटिबंधीय फल एवं पत्तियां पौषणिक तत्वों के उत्कृष्ट स्रोत हैं। तथापि इन स्रोतों के महत्व और शूकर पालन की सतत उत्पादन प्रणालियों में इनके उत्पादन और उपयोग पर बहुत कम जानकारियां उपलब्ध हैं। मृदा एवं जल में उत्पन्न अनेक पौधों की पत्तियों में मौजूद प्रोटीन जो पादप ऊतकों की वृद्धि के लिए आवश्यक एंजाइमों में बदलता है, उसमें एक अमीनो एसिड संतुलन होता है जो ''आइडियल'' प्रोटीन (प्रेस्टन, 2006) जैसा प्रतीत होता है। अत: वाणिज्यिक संतुलित आहार में फिशमील तथा सोयाबीन का उपयोग करना उपयुक्त है जिससे आहार पर लागत भी कम होगी।

टैरों (अरबी या गुइंया) उष्णकटिबंधीय खाद्य फसल है और इन द्वीपों में प्रचुर रूप में उपलब्ध है जिसकी जड़ों (या कॉर्न) एवं वनस्पतिक उच्च उपज के कारण अपार सम्भावनाएं हैं। आर्टोकार्पस प्रजाति के अन्य फल एवं पत्तियां भी निकोबारी जनजातीयों द्वारा शूकरों को खिलाये जाते हैं। ये पत्तियां प्रोटीन एवं रेशों से समृद्ध हैं और इनके लिंकेजों के कारण पाच्यता कम हो जाती है। इनमें कुछ पौषणिकता विरोधी घटक भी पाए जाते हैं जैसे आक्सालिक एसिड, टैनिंस एवं सपोनिंस जो ताजी पत्तियों की खपत को सीमित करने के कारक हैं। अत: इस प्रकार टैरो पत्तियां शूकरों के लिए रूचिकर नहीं होती हैं, जब कि शूकरों के लिए इसकी जड़ें स्वादिष्ट (कुंडू एवं अन्य, 2008) हैं। परिरक्षण चारे से कैल्सीयम आक्सालेट की सांद्रणता घट सकती है। यह सूचना प्राप्त हुई है कि फिशमील प्रोटीन के बदले टैरो का परिरक्षित चारा उपयोग किया जा सकता है। आहारीय रेशा वास्तव में उत्पादन इकाइयों में नाइट्रोजन क्षति को कम करने और शूकर की आंतों के स्वास्थ्य और पशु कल्याण में सुधार के लिए एक संभावित साधन है। शूकरों के आहार में इन रेशेदार खाद्य पदार्थ सम्मिलित करने के आहारीय प्रोटीन एवं ऊर्जा की पाच्यता पर प्रतिकूल प्रभाव होने के बावजूद इन्हें गहन पालन प्रणाली में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है, विशेषकर उष्णकटिबंधीय देशों में। ये आहारीय रेशे अमोनिया उत्सर्जन को कम करने में सहायक होते है और आंतों के स्वास्थ्य में सुधार करते हैं। गैर–पूरक आहारों की तुलना में आहारीय योग जो खाद्य परिवर्तन कुशलता को बढ़ाते हैं, वे भी मलोत्सर्जन में नाइट्रोजन एवं फास्फोरस को घटाते हैं।

आहार देने की प्रचलित प्रथाएं

अन्य छोटे उष्णकटिबंधीय द्वीपों की भांति अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह की मुख्य कृषि फसल नारियल है। इस क्षेत्र की जनसंख्या की आजीविका अधिकांशत: नारियल बागानों पर निर्भर है। लोग आवश्यक सब्जियां जैसे कंद, केला और अरबी की विभिन्न किस्मों को घरेलू बगीचों में उगाते हैं। यहां उत्पादित अनाज मानव समूह के लिए पर्याप्त नहीं है, अत: मुख्य भूमि भारत से आयातित खाद्यान्न पर निर्भर करता है। इससे शूकरों के लिए देशी आहार के उत्पादन में समस्याएं उत्पन्न होती हैं। शूकरों को मुख्यत: नारियल एवं इसके पानी पर ही पाला जाता है। निकोबारी जनजातीय लोग शूकरों को नारियल के टुकड़ों या नारियल को पत्थर या हथौड़े से तोड़कर इसे किचन वेस्ट में मिलाकर खिलाते हैं। तुहेट (निकोबारी भाषा में संयुक्त परिवार को ''तुहेट'' कहा जाता है) के एक सदस्य को शूकरों को सुबह और शाम भोजन खिलाने का दायित्व' सौंपा जाता है। दैनिक चर्या का यह महत्वपूर्ण कार्य है। आहार देने हेतु शूकरों को बुलाने के लिए जनजातीयों का विशेष अंदाज होता है, जैसे बांसों को आपस में पीटना, ऊंची आवाज में चिल्लाकर विशेष ध्वनि उत्पन्न करना या विशेष प्रकार के गीत गाना आदि। इनसे पशु अपने स्वामियों को तुरन्त प्रतिक्रिया देते हैं और संबंधित आहार स्थल पर पहुंच जाते हैं। आहार के पश्चात, पशु पंडानस फलों, स्थानीय रूप से उपलब्ध कंद फसलों और जड़ों के लिए जंगल की ओर चले जाते हैं और रात के समय गांव/घर के परिसर में लौट आते हैं। इन द्वीपों में उपलब्ध प्रोटीन का एक अन्य स्रोत मत्स्य अपरद्द है, परन्तु परम्परागत उपयोग यानि फिशमील उत्पाादन के लिए पर्याप्त नहीं है। तथापि जनजातीयों द्वारा शूकरों को निम्न श्रेणी की मछलियों तथा मत्स्य अपरद, घोंघे तथा घोंघे के मांसलदार भागों को खिलाते हैं। निम्न ज्वार के दौरान शूकर भी मछलियों, घोंघों, कवचमीन, समुद्री प्राणिजात तथा अन्य समुद्री जीवों के लिए समुद्री तटों पर भटकते हैं। ये निकोबारी शूकर पके नारियल को छीलकर और बाद में इन्हें तोड़कर कोपरों को खाने में अच्छी तरह प्रशिक्षित होते हैं।

शूकरशाला एवं बिस्तर सामग्री

निकोबार द्वीप समूह में मकान बनाने की विधि सरल है। इस प्रकार के मकानों को ''खट्च'' कहा जाता है। मानव निवास के लिए निकोबारी हट ऊंचे प्लैटफार्म पर बनाते हैं। इस प्लैटफार्म पर हट/मकान बनाने हेतु स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री जैसे बांस, नारियल की पत्तियां, मैंग्रोव पेड़ों के तने उपयोग किए जाते हैं। शूकरों को इस प्लैटफार्म के नीचे रखा जाता है। आहार एवं जल के लिए लकड़ी के हौज और वाटर का उपयोग किया जाता है। सामान्यत: ब्यावना जंगल के क्षेत्र में होता है और कुछ दिनों बाद शूकरी अपने बच्चों के साथ अपने शेल्टर पर वापस आ जाती है। बिस्तर सामग्री के रूप में रेत का उपयोग किया जाता है। नवजात शूकरों के लिए नारियल की पत्तियां, पुराने फटे कपड़े भी बिस्तर सामग्री के रूप में उपयोग किये जाते हैं।

अंडमान द्वीप समूह में शूकरों के रखरखाव की पांच प्रकार की विधियां अपनाई जाती हैं। 18 शूकर पालकों के शूकर समूह का अध्ययन किया गया जिसमें देखा गया है कि शूकरों को मुक्त रूप से रेंजिंग (30.2%), टेथरिंग (26.41%) के लिए छोड़ा जाता है और रात के समय बाड़े में रखते हैं। तथापि शेष (43.39%) को पर्याप्त स्थान उपलब्ध कराते हुए बंद बाड़ों में रखा जाता है। बाड़े का फर्श कांक्रीट का बना होता है। स्पष्टत: यह देखा गया है कि बंद बाड़ों में रखकर वाणिज्यिक रूप से तैयार आहार खिलाए गए शूकर अन्य प्रकार के हौसिंग प्रबंधन में रखे गए एवं कम पौषणिक आहार दिए गए शूकरों से बेहतर पाए गए हैं।

उष्णकटिबंधीय द्वीपों की स्थितियों में शूकर पालन के लिए निम्नलिखित रणनीतियों को अपनाया जा सकता है –

- खाड़ी द्वीपों में देशज शूकरों का संरक्षण और प्रवर्धन।
- स्थानीय रूप से उपलब्ध खाद्य पदार्थों जैसे अनेक जलीय पौधों की पत्तियां, खली और अरबी एवं टैरो जैसे कंद के उपयोग से शूकर आहार का सूत्रण किया जाए।
- शूकरों के लिए उपयोग किए गए गैरपरम्परागत खाद्य पदार्थों की उचित पहचान एवं नामावली सहित व्यापक सूची तैयार करना।
- स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री के उपयोग से शूकरशाला का निर्माण जिससे उपयुक्त स्वच्छता, हवादार वातावरण तथा शूकरों को प्रभावित करने वाले परजीवियों एवं रोगाणुओं के नियंत्रण के लिए सूखा फर्श उपलब्ध हो सके।
- देशज/स्थानीय पशु अनुवंशिक संसाधनों के लुप्त होने के प्रति वैश्विक चिन्ता की दृष्टि से कृषि पारिस्थितिकी के उपयुक्त विलक्षणताओं का गुणचित्रण एवं संरक्षण करें।
- शूकरों में वांछनीय उत्पादकता एवं रोग निरोधी गुणों की पहचान, अलग करने और उनका पता लगाने में जैव–तकनीकी का उपयोग।
- जागृति उत्पन्न करने एवं बेहतर पशु पालन के लिए प्रशिक्षण तथा बीज सामग्री के संदर्भ में छोटे किसानों को पर्याप्त–संस्थागत सहायता दी जानी चाहिए।

ऊपर दिए गए सुझावों को अपनाकर, द्वीपों में शूकर पालन को बढ़ाया जा सकता है जिससे विशेष रूप से निकोबारी जनजातीयों की पौषणिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

मात्स्यिकी विज्ञान

78.अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह में मात्स्यिकी एवं जलजीव पालन

वेंकटेश आर. ठाकुर, अनुराज ए., के. सरवनन, नागेश राम एवं एस. दाम रॉय

परिचय

अंडमान एवं निकोबार 572 द्वीपों का एक समूह है जो 6^0 तथा 14^0 उत्तरी अक्षांश तथा 92^0 एवं 94^0 पूर्वी देशान्तर के बीच बंगाल की खाड़ी के दक्षिणी ओर 800 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। द्वीपों का कुल भौगोलिक क्षेत्र 8249 वर्ग किलोमीटर है। इसे बेआइलैंड भी कहा जाता है। इस निखात निधि में समुद्री जल 0.6 मिलियन वर्ग किलोमीटर, भारतीय उपमहाद्वीप का समृद्ध वर्षा वन तथा कोरल रीफ परितंत्र हैं। अंडमान एवं निकोबार द्वीपों के कुल भौगोलिक क्षेत्र के 88% क्षेत्र को आरक्षित एवं संरक्षित वर्ग के अंतर्गत रखा गया है। अंडमान एवं निकोबार द्वीप समृद्ध एवं अनेक मत्स्य प्रजातियों के लिए जाना जाता है। इन द्वीपों में मीठे जल की एवं समुद्री जल की कुल 539 मत्स्य प्रजातियाँ दर्ज की गई हैं। इन द्वीपों की समृद्ध जैव (मीन) विविधता, समुद्री वास स्थान (हैबीटैट) के कारण है जिसमें मैंग्रोव, क्रीक्स, लैगून, ज्वारनदमुख, कीचड़ भरे तट और कोरल रीफ सम्मिलित हैं। 26 दिसंबर 2004 की सुनामी ने अंडमान और निकोबार द्वीप समूह को भारी क्षति पहुंचायी, भौतिक क्षति के कारण जल संसाधन प्रभावित हुए तथा मलबा और नमक जमा हो गया है। अंडमान एवं निकोबार द्वीप के तटीय क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की मानव गतिविधियां हैं। अंतर्स्थलीय मीठा जल, चावल–आधारित सिस्टम से मैंग्रोव और तटीय स्ट्रिप्स मुख्य रूप से मछली पकड़ने के लिए उपयोग किये जाते हैं। सुनामी से पहले उपलब्ध खेती योग्य भूमि 50,000 हैक्टेयर थी, जो सुनामी के बाद घट के 43,339 है. हो गई। सुनामी ज्वार की लहरों ने समुद्री जल को बड़ी मात्रा में अंतर्स्थलीय जल निकायों में पहुंचा दिया है और समुद्री जल के बड़े ज्वारीय पूलों का भी सृजन हुआ है।

सुनामी ने द्वीप समूह पर बड़ी तबाही मचायी और कुछ स्थायी लवणीय और खारे पानी के निकायों को भी बनाया। इन नए जल निकायों को जलजीव पालन हेतु उपयोग किया जा सकता है ताकि भूस्वाामियों एवं किसान की आजीविका क्षति का प्रतिफल दे सके। अंडमान समुद्री मत्स्य संसाधनों से संभावित रूप से समृद्ध है, विशेषकर ग्रूपर, स्नैपर, लाब्स्टर तथा श्रिम्प् संसाधन जिनकी निर्यात सम्भावनाएं हैं। द्वीपों के 1.48 लाख टन संभावित हार्वेस्टेपबल मत्स्य संसाधनों में से केवल ट्यूना संसाधन ही 67,000 टन है। संभावित आकलनों के विरूद्ध वर्तमान मत्स्य उपज 28,000 टन प्रतिवर्ष है। इससे यह सूचित होता है कि अंडमान एवं निकोबार द्वीपों के संसाधनों को कितना कम उपयोग किया जा रहा है। उपज संरचना पर नजर डालें तो ज्ञात होता है कि ट्यूना संसाधनों के न्यून उपयोग के कारण खाड़ी का विशेष रूप से फासला बन गया है, जिनकी मौजूदा वार्षिक लैंडिंग लगभग 800–1000 टन के आसपास होती है। इससे स्पष्ट, सूचित होता है कि ट्यूना मछलियों के सतत दोहन तथा गौण उद्योग की स्थापना हेतु केज कल्चर उद्योग के विकास की व्यापक सम्भावनाएं हैं। इससे न केवल निर्यात को बढ़ावा मिलेगा परन्तु अंडमान एवं निकोबार द्वीपों के लोगों को रोजगार प्राप्त होगा। इसके अलावा, मीठे पानी और खारे पानी का जलजीव पालन, समुद्री रंगीन मछलियों का प्रजनन, खेती और सस्योत्तर प्रौद्योगिकी कुछ ऐसे क्षेत्रों में हैं जहां विकास के लिए जोर देने की आवश्यकता है।

समुद्री मात्स्यिकी

अंडमान एवं निकोबार द्वीप में कोई पारंपरिक मछली पकड़ने की आबादी नहीं है। आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल और पश्चिम बंगाल के अन्य लोग मछली पकड़ने में लगे हुए हैं। कुछ द्वीपों में जनजातियों द्वारा मत्स्यन कार्य धनुष और तीर, सीन्स और भाले के पारंपरिक तरीकों से किया जाता हैं। वर्तमान में मत्स्य संसाधनों का दोहन तटीय जल (पिल्लई और अब्दुसमद, 2009) तक ही सीमित है। गहरे जल में मत्स्यन कार्य के लिए मत्स्यन नाव एवं मत्स्यन यान पर्याप्त नहीं हैं और अंडमान बेस (रॉय एवं जार्ज, 2010) से व्यवस्थित ऑफशोर मत्स्यन कार्य नहीं होता है। मछुआरों के 97 गांव हैं और इनकी जनसंख्या 15,320 है। समुद्री मत्स्यन कार्यों में 5,617 मछुआरे पूर्णकालिक रूप से तथा 718 अंशकालिक रूप से जुड़े हुए हैं। कुल 2,808 पंजीकृत मत्स्यन क्राफ्ट्स परिचालन में हैं, जिनमें से 1524 नॉन– मोटोराइज्ड/परम्परागत क्राफ्ट्स, 1279 मोटोराइज्ड क्राफ्ट्स, 10 यंत्रीकृत नाव हैं। समुद्री तट पर कुल 57 लैंडिंग सेन्टर्स हैं। मुख्य मत्स्यन संभार ड्रिफ्ट गिलनेट है जिनका समुद्री मत्स्य उपज में 40 प्रतिशत का योगदान है। अन्य मत्स्य संभार शोर सीन, हुक एवं लाइन तथा कास्टक नेट (नित्यानंदन, 2009) हैं। पूर्व में किए गए अध्ययन से अंडमान एवं निकोबार द्वीप के ईईजेड में समुद्री मात्स्यिकी की क्षमता का आकंलन किया गया हैं। जॉन एवं अन्य (2005) अनुसार 1,39,000 टन पेलाजिक, 22,500 टन बेंथिक तथा 82,500 टन सागरीय मत्स्य संसाधन दोहन के लिए उपलब्ध हैं। आंकलित क्षमता एवं वास्तविक उपज के बीच के गैप का कारण अंडमान एवं निकोबार द्वीप में समुद्री मत्स्य उत्पादन के लिए रणनीति न होना है।

अंडमान में दोहन योग्य पंख मीन एवं कवच मीन मछलियां नीचे उल्लेखित है

पंखमीन मछलियां : द्वीप में अनेक समुद्री पंखमीन उपलब्ध हैं और मेरीकल्चर के अनुकूल हैं। इनमें सिगानस एसपी. (रेबिट फिश), लुटजानस एस.पी.पी. (स्नुपर्स) इपीनेफीलस एस.पी.पी. (ग्रूपर्स); करांक्सि एसपीपी (जैक्स एवं ट्रेवल्लिस); थुन्नस एस.पी.

पी. (ट्यूनास) सम्मिलित हैं। इन प्रजातियों का अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में उच्च मूल्य है और द्वीप सामरिक दृष्टि से उस स्थान पर है जहां से दक्षिण पूर्वी एशियाई बाजारों का लाभ उठाया जा सकता है।

समुद्री रंगीन मछलियाँ: समुद्री रंगीन मछलियों का वैश्विक व्यापार मल्टी बिलियन डॉलर उद्योग है। अनुसंधान संस्थानों ने क्लौन एवं डैमसेल मछलियों की हैचरी तथा पालन प्रौद्योगिकियां विकसित की हैं। अंडमान जल के लिए स्थानिक रूप से आर्नामेंटल रीफ मछलियों का भी सफलतापूर्वक प्रजनन एवं बंद स्थितियों में पालन किया गया।

विभिन्न फीड प्रबंधन प्रयोगों के माध्यम से, ए. पर्कुला का अंडजनन प्रत्येक 10–15 दिनों के अंतराल पर प्राप्त किया गया। इस प्रजाति का अंडजन लूनार पीरियाडिसिटी से सहसंबंधित है। अंड निषेचन 100 प्रतिशत है। लार्वा का 15 दिनों के संवर्धन काल में अतिजीविता दर 90 प्रतिशत है। लार्वा को आहार के रूप में तीन प्रकार के रोटिफर्स (एसएस, एस, एल प्रकार) दिये जाते हैं। लार्वा की विभिन्न अवस्थाओं के लिए निम्नलिखित शेड्यूल एवं राशन का मानकीकरण किया गया।

प्रेमनास बियाक्यूलेटस का प्रजनक

ए. पर्कुला का हैचरी में उत्पन्न तरूण मछलियां (30 दिन आयु की)

लॉबस्टर्स : द्वीपों में पालन हेतु उपयुक्त छह प्रजातियों जैसे पनुलीरस होमोरस, पी ऑर्नाटस, पी. पेनसिल्लेटस, पी. वर्सिकोला, पी. पॉलीफेगस की पहचान की गई। ये प्रजातियाँ समेकित प्रणाली के अंतर्गत पिंजरा पालन के लिए भी अनुकूल हैं। समुद्री उत्पादों के व्यापार में लाइव लाब्स्टर काफी महंगे होते हैं।

समुद्री श्रिम्पक : मध्य अंडमान एवं दक्षिणी अंडमान के खाड़ी जल में पीनियस मोनोडॉन का संवर्धन एवं पालन की संभावनाएं हैं, चूंकि मध्य अंडमान की आबादी को हैचरी बीज उत्पादन के लिए प्रजनन एवं उत्पादन क्षमता का बेहतर अनुभव है।

मॉलस्क : अंडमान और निकोबार द्वीप समूह मॉलस्क जैव विविधता का एक आभासी स्वर्ग है। समूह में द्विगुण और गैस्ट्रोपॉड्स की विभिन्न किस्में उपलब्ध हैं।

खाद्य ऑयस्ट्र्स : इन में से, खाद्य आयॅस्टर की दो प्रजातियाँ क्रॉस्टोस्ट्रेया मद्रासेन्सिस और सोक्कोस्ट्रेया क्यूकुलाटा सामान्य रूप से पायी जाती हैं। सीएमएफआरआई प्रौद्योगिकी को अपनाते हुए स्वच्छ एवं प्रदूषणरहित खुले समुद्री क्षेत्रों में खाद्य ऑयस्टर की खेती की अपार संभावनाएं हैं। लाइव ऑयस्टर्स की मांग दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में अत्यधिक है, इसके अलावा करेन लोग (बर्मा के उपनिवेशी), बंगाली उपनिवेशी और निकोबारियों में इसकी भारी मांग है।

पर्ल ऑयस्टर : पिंकटाडा मार्गराटीफेरा केवल द्वीपों में ही पाए जाते हैं जो मूल्यवान काली पर्ल का उत्पादन करते हैं। हाल ही में आईसीएआर–सीएमएफआरआई ने काले पर्ल की उत्पादन तकनीक को मानकीकृत कर दिया है। हालांकि अभी तक उद्यमशीलता द्वीपों में विकसित नहीं की गई है।

ग्रीन मसेल पर्ना विरीडिस

ग्रीन मसेल का वितरण अंडमान तक ही सीमित है। इस प्रजाति को पहली बार दक्षिण अंडमान के सिप्पीघाट में एक ज्वार क्रीक से अप्पुकुट्टन (1977) द्वारा दर्ज किया गया था। हरे रंग की मसल पर्ना वीरिडि, द्विकपाटी जंतु के अवस्थापन और विकास के अध्ययन से पता चला है कि ज्वालरीय जल में झुलाए गए एजबेस्टस शीट कलेक्टर (20x12 से.मी.) में 12 से 46 द्विकपाटी जंतु एकत्रित हुए हैं। लगभग पांच महीने की अवधि में औसत वृद्धि 44.3 से 65 मि.मी. और इसी अवधि में अधिकतम वृद्धि 85 मि.मी. दर्ज की गई। पूर्व में, स्पैट सेटलमेंट को नगण्य पाया गया, जब दो कोरेगेटेड एस्बेस्टस शीट को मिलाकर झुलाया गया तब स्पैट सेटलमेंट में काफी वृद्धि हुई। मसल स्पैगट्स नजदीकी तौर पर बांधे गए दो एस्बेस्टोस शीट्स के अंदरूनी सतह पर बस गए थे। यह नई पद्धति मसल स्पैटट्स को पालन हेतु एकत्रित करने का मार्ग खोलता है, जो अभी तक समस्याग्रस्त थी, क्योंकि प्राकृतिक निवास स्थान में झुलाए गए स्पैट कलेक्टर महत्वहीन रहा है।

मड क्रैब : (स्काइला सेराटा और स्काइला ट्रान्कुबारिका)मड क्रेब्स नामत : स्काइला ट्रान्कुबारिका और स्काइला सेराटा, मुख्य भूमि और अंडमान निकोबार द्वीप समूह की खाड़ी, सभी समुद्री राज्यों के तटवर्ती क्षेत्र, ज्वारनदमुख, पश्च जल, तटीय झीलों और मैंग्रोव की दलदली क्षेत्र में पाए जाते हैं। दोनों प्रजातियाँ समुद्र और साथ ही अंतर्स्थलीय खारा जल में पायी जाती हैं जो दलदली एवं रेतीली तल पसन्द करती हैं।

यह तकनीक खारा पानी के क्षेत्रों में उपयुक्त हो सकती है जहां पानी के स्तर को 75 सेमी के आसपास बनाए रखा जा सकता है।

ज्वारीय जल पोषित ज्वारनदमुख, पश्चजल एवं क्रीक्स में पालन तालाबों का निर्माण किया जा सकता है। केकड़ों के लिए तालाब परम्परागत मत्स्य / श्रिम्प प्रक्षेत्र में भी स्थापित किया जा सकता है। खाराजल के कैनल के निकट एक भाग को केकड़ों के लिए परिवर्तित किया जा सकता है जिससे परम्परागत मछुआरों/श्रिम्पं पालकों की अतिरिक्त आय होगी।

तालाब से केकड़ों के पलायन रोकने के लिए 2 फीट ऊंची बांस का बाड़ लगाना आवश्यक है। केकड़ों के पालन के लिए 0.1 हे. क्षेत्र के तालाब का उपयोग किया जा सकता है। 50–60 आमाप के 500 नग/हे. की दर से संग्रहित कर छ: माह की पालन अवधि से 780 कि.ग्रा./हे. उपज प्राप्त की जा सकती है। बांस से घेरे गए तालाबों में 50–60 ग्रा. के केकड़ों को संग्रहित कर शारीरिक भार के 10 प्रतिशत की दर से मुर्गियों का कूड़ा/मल तीन माह तक दिया जाता है और बाद के तीन माह के दौरान शारीरिक भार के 5–6 प्रतिशत की दर से मुर्गियों का कूड़ा/मल दिया जाता है और छ: माह के पश्चात कुल सम्पदा की 60 प्रतिशत उपज ली जा सकती है। केकड़ों का शारीरिक भार 250–300 ग्रा. होता है। अतिजीविता दर 70 से 80 प्रतिशत आंका गया है और यह महत्वपूर्ण है कि पालन के लिए चुने गए स्थान का तल कीचड़युक्त न होकर रेतीला होना चाहिए जिससे इनकी खोदने की प्रवृत्ति को सुविधा मिल सके। एक मीटर गहरे समुद्री जल वाले स्थान को भी केकड़ों के पालन के लिए चुना जा सकता है। बड़ी समस्या यह है कि संग्रहण के लिए एक ही आमाप के तरूण केकड़ों की उपलब्धता है। वर्तमान प्रौद्योगिकी छोटे किसानों के लिए उपयुक्त है बशर्ते निरन्तर बीजों की आपूर्ति बनी रहे। वर्तमान समय में निरन्तर बीज उत्पादन के लिए कोई नर्सरी नहीं है और वन्य बीजों को एकत्रित करना लम्बी अवधि के लिए सम्भव नहीं है। जीवित कीचड़ के केकड़ों के निर्यात के अनेक अवसर हैं जिससे केकड़ों की खेती के लिए अच्छे अवसर विशेष रूप से प्रौद्योगिकी छोटे किसानों के लिए सबसे उपयुक्त है। जीवित केकड़ों का व्यापार विशेष रूप से दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के लिए निर्यात बाजार तेजी से बढ़ रहा है जो अंडमान द्वीप समूह के लिए लाभप्रद हो सकता है यदि विकसित प्रौद्योगिकी का व्यावसायीकरण किया गया हो।

पिंजरा पालन

खुले समुद्र में पिंजरा पालन हाल के वर्षों में विस्तारित हो रहा है और इससे दुनिया के कई हिस्सों में वाणिज्यिक पखंमीन का बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव हो गया है और इसे मछलियों को बढ़ाने का सबसे प्रभावी और आर्थिक रूप माना जा सकता है।

पिंजरों में समुद्री खेती की शुरुआत, 1950 के दशक में जापान में पीली पूंछ वाली सिरियोला क्विनक्यूरेडिएटा के वाणिज्यिक पालन से प्रारम्भ हुई। 1970 के दशक से थाईलैंड ने पिंजरा पालन तकनीकों को दो महत्वपूर्ण समुद्री पखमीन के लिए विकसित किया है – समुद्री ब्रीम (पैगर्स मेजर) और ग्रुपर (एपिनेफेलस एसपीपी)। फिलीपींस में ग्रुपर्स (एपिनेफेलस एसपीपी) की पिंजरा पालन 1980 के दशक से लागू की गई है। वर्तमान समय में एशिया, यूरोप और दुनिया के अन्य भागों में विभिन्न डिजाइनों और आकार के पिंजरों में कई प्रजातियों का पालन किया जा रहा है। अधिकांश देशों में पिंजरों के उपयोग से मत्स्य पालन आर्थिक रूप से व्यवहार्य साबित हुआ है! भारत में, समुद्री पखंमीन का पिंजरा पालन लगभग एक नया अनुसंधान क्षेत्र है, जिसे प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। पखमीन मछलियों को बड़े पैमाने पर पिंजरा पालन के लिए द्वीपों की खाड़ी, क्रीक्स और इनलेट्स सबसे उपयुक्त हैं। पिंजरा पालन प्रणाली प्रति यूनिट क्षेत्र में धारण क्षमता का अनुकूलन कर सकती है क्योंकि जल प्रवाह ताजा समुद्री जल लाता है और चयापचय अपशिष्ट, अतिरिक्त भोजन और मलजल पदार्थ को हटा देता है। उच्च आर्थिक फायदे के साथ पिंजरा पालन एक उच्च इनपुट पालन है। यह उपलब्ध पानी के अधिकतम उपयोग के लिए रास्ता तैयार करता है और भूमि संसाधनों पर दबाव कम करता है। यह उपलब्ध जल के अधिकतम उपयोग के लिए रास्ता तैयार करता है और भूमि संसाधनों पर दबाव कम करता है। केन्द्रीय द्वीपीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने ग्रूपर्स और स्नैपर्स का पिंजरा पालन संरक्षित खाड़ी में किया है और नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओशन टेक्नोलॉजी अंडमान के नार्थ बे में पिंजरा पालन कर रहा है। चूंकि पिंजरा पालन में कुछ समस्याएं भी शामिल हैं, जिनमें निहित पर्यावरण में रोग फैलने का, जिसके कारण इसके प्रभाव का अभी तक निदान नहीं हुआ है, चूंकि अंडमान जल कम प्रदूषित और रोग मुक्त है।

अंडमान में ग्रूपरों के पिंजरा पालन का एक दृश्य

समुद्री शैवाल (सीवीड्स) : भविष्य में द्वीपवासियों की आजीविका के लिए एक संभावित स्रोत

समुद्री शैवाल या स्थूल शैवाल तटीय इलाकों में बेंथिक आवासों में उपसतह से जुड़े हुए होते हैं। वे बहुकोशिकीय ऑटोट्रोफिक प्रकाश संश्लेषक पौधे हैं, जो समुद्री पारिस्थितिकीय तंत्र के प्राथमिक उत्पादन में काफी योगदान देते हैं। वे वास्तविक जड़ों, तनों, पत्तियों, फूल के बिना ही पौधे हैं और धारिस्त के माध्यम से उपस्ट्रेटम से जुड़े होते हैं। वे दुनिया भर के अधिकांश शोरलाइन और उथले पानी के वातावरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता हैं। वे मुख्यत: अंत:ज्वारीय और उप–ज्वारीय क्षेत्र में उस गहराई तक पाए जाते हैं जहां प्रकाशसंश्लेषण हेतु 0.01% प्रकाश उपलब्ध होता है। इनवर्टीब्रेट्स, मछलियों, स्तनपायी जीवों और पक्षियों के लिए आवास और सबस्ट्रेटा प्रदान करने की एक पारिस्थितिक भूमिका है और कई चराई करने वाले इनवर्टीब्रेट्स और वर्टीब्रेट्स के लिए भोजन का एक स्रोत है। समुद्री शैवाल को तीन व्यापक समूहों में वर्गीकृत किया जाता है जो उनके पोषक तत्व और रासायनिक संरचना के आधार पर रोडोफाइसी (लाल समुद्री शैवाल), क्लोरोफाइसी (हरी समुद्री शैवाल) और फाहियोफाइसी (भूरे समुद्री शैवाल) हैं। वैश्विक विविधता के अनुसार लाल शैवाल की 6000 प्रजातियाँ, भूरे समुद्री शैवाल की 2000 प्रजातियाँ तथा हरी समुद्री शैवाल की 1200 प्रजातियाँ हैं। समुद्री जीवों का उपयोग प्राचीन समय से चीन, जापान, कोरिया में भोजन के रूप में किया जा रहा है और वर्तमान में दुनिया भर में 125 प्रजातियों को भोजन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। भोजन और औषधियों के लिए प्राकृतिक वन्य सम्पदा से समुद्री शैवाल का संचयन या संग्रहण एशिया और यूरोप में एक प्राचीन प्रथा है। उनका उपयोग हाइड्रोकोलोइड जैसे अगार, एल्गिन और कर्राजीनान के लिए भी किया जाता है जिन्हें भोजन, औद्योगिक, कॉस्मेटिक और दवा उद्योगों में इस्तेमाल किया जाता है। विश्व भर में लाल और भूरे शैवाल की लगभग 101 प्रजातियों को हाइड्रोकोल्लाइड्स निस्साहरण के लिए उपयोग किया जाता है। एल्गिन और कर्राजीनान भूरे समुद्री शैवाल से निकाले जाते हैं, जबकि लाल समुद्री शैवाल से समुद्री सब्जियों का पौष्टिक महत्त्व है क्योंकि वे कम कैलोरी के आहार हैं, लेकिन आवश्यक अमीनो एसिड, ओमेगा –3 फैटी एसिड, पॉलीसेकेराइड्स, खनिज, विटामिन, ट्रेस तत्व और एंजाइम और आहारीय फाइबर में समृद्ध हैं।

समुद्री शैवालों का महत्व

1. समुद्री शैवाल का उपयोग अगर, एल्गीनेट्स और कर्राजीनन के उत्पादन के लिए किया जाता है।
2. कृषि में जैव उर्वरक के रूप में समुद्री शैवाल का उपयोग किया जा सकता है।
3. समुद्री शैवाल को मत्स्य आहार एवं पशु आहार में पूरक खाद्य के रूप में उपयोग किया जाता है।
4. पानी की गुणवत्ता में सुधार करने और प्रदूषण को कम करने के लिए समुद्र में पिंजरे पालन में मछली के साथ समुद्री शैवाल को एकीकृत किया जा सकता है (समन्वित मल्टीट्रॉफिक एक्वाकल्चर; आईएमटीए)।
5. मेक्रो और माइक्रोन्यूट्रेंट्स, ट्रेस खनिज, एल्जिनिक एसिड, विटामिन और अमिनो एसिड का स्रोत है।
6. समुद्री शैवाल कार्बन सिंकर्स के रूप में कार्य करते हैं जिससे ग्रीनहाउस गैस का प्रभाव कम होता है।

समुद्री शैवाल का पालन

समुद्री शैवाल की लगभग 33 प्रजातियाँ, जो कि ज्यादातर लाल और भूरे रंग की हैं, का उत्पादन और वाणिज्यिक रूप से खेती की जाती है। एफएओ, (2016) के अनुसार 2014 में समुद्री शैवाल का वैश्विक उत्पादन 27.6 मिलियन टन था, जिसमें 0.9 मिलियन टन वन्य और पालन से 26.7 मिलियन टन का उत्पादन हुआ था। यूकेमा एसपी *(यूकेमा डेन्टिकुलाटम और कप्पाफाइकस अल्वरेजी)* ने समुद्री शैवाल पालन के लिए विश्व उत्पादन में 30% का योगदान दिया। 2014 के दौरान भारत में समुद्री शैवाल पालन उत्पादन 3000 टन था, जो पूरी तरह से *कप्पा फाइकस अल्वारेजी* से संबंधित था।

समुद्री शैवाल पालन के लिए स्थान के चयन के लिए मानदंड

समुद्री शैवाल की खेती या खेती के विकास के लिए पानी में समुद्री शैवाल फसलों के अनुकूलित रोपण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। समुद्री शैवाल पालन उस क्षेत्र में की जानी चाहिए जहां प्रकाश संश्लेषण के लिए अधिकतम धूप, पर्याप्त लवणता और तापमान, पोषक तत्वों के अवशोषण और गैसों के आदान–प्रदान के लिए पानी उपलब्ध है। स्थान चयन के दौरान विचार किए जाने वाले कुछ कारक निम्नलिखित हैं

1. समुद्री जल की लवणता 25 पीपीटी से नीचे नहीं होना चाहिए और समुद्री जल का तापमान 25–30^0 से. की सीमा में होना चाहिए।
2. विकास के आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति के लिए पर्याप्त जल आवागमन (मूवमेंट)।
3. चयनित स्थान की गहराई कार्बनिक पदार्थ के संश्लेषण के लिए आवश्यक सूर्य प्रकाश के प्रवेश की अनुमति होनी चाहिए और कम ज्वार के दौरान समुद्री शैवाल लंबे समय तक बाहर एक्सपोज़ नहीं होना चाहिए।
4. समुद्री शैवाल की सम्पदा वाले स्थान (समुद्री शैवाल पालन के लिए ये पारिस्थितिक उपयुक्तता के अच्छे संकेतक हैं)
5. चयनित स्थान अपशिष्ट निर्वहन या प्रदूषण से दूर होना चाहिए।

समुद्री शैवाल की खेती की पद्धतियाँ

1. लाइन खेती: समुद्री शैवाल अलग–अलग लंबाई की रस्सियों से जुड़े होते हैं (जैसे, 10 मीटर से 50 मीटर या उससे अधिक तक) जो कि समानांतर व्यवस्था में लगाए जाते हैं, उनके बीच अलग–अलग रिक्तियों के साथ, फसल पर समुद्री शैवाल प्रजातियों के आकार के आधार पर (0.5 1.0 मीटर या उससे अधिक मी, गहराई में), जो निम्नलिखित के अनुसार अलग–अलग हाते हैं।
   क) ऑफ बॉटम : तल के करीब जहां निम्न ज्वार के दौरान भी 30 सेंटीमीटर पानी हो, वहां रोपण किया जाना चाहिए। यह पद्धति छोटी एवं बार–बार उपज लेने वाली प्रजातियों के लिए अपनायी जाती है जैसे यूकेमा और कप्पाफाइकस।
   ख) जलमग्न लटकती लाइन : तट के निकट मध्यप जल में रोपण, जहां उच्च ज्वार के दौरान अनेक मीटर गहरी हो जाए और निम्न ज्वार के दौरान सतह पर या एक्सपोज़ हो जाए।
   ग) फ्लोटिंग लाइन : सतह के करीब रोपण, शैवाल हल्का सा जलमग्न परन्तु एक्सपोज़ न हो। यह पद्धति एंकरिंग की आवश्यकता को मानते हुए सतह तक की गहराई की परवाह किए बिना खेती की अनुमति देती है।
2. नेट कल्टीवेशन : समुद्री शैवाल के प्रजनकों को दी गई गहराई पर रखे गए नेट से जुड़े होते हैं, जो आमतौर पर सतह पर तैरते हैं या थोड़ा जलमग्न रहते हैं, गहराई के संबंध में लाइन की खेती के अनुरूप होता है।
3. फ्लोटिंग राफ्ट कल्टीवेशन : रोपण सतह पर होता है, समुद्री जीवों को बांस से बने मजबूत तैरने वाले फ्रेम द्वारा दिए गए आकार के लाइन्स या नेट के साथ जोड़ा जाता है। इस तकनीक के जलमग्न राफ्ट के संस्करण को प्रयोगात्मक रूप से उपयोग किया जाता है, विशेषकर लम्बवत या कोणीय व्यवस्था ताकि सौर विकिरण को गहराई के माध्यम से बढ़ाया जा सके।

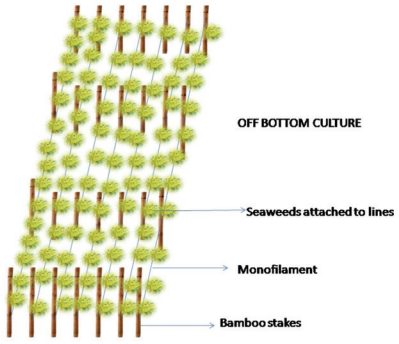

इन पालन पद्धतियों से ऑफ बॉट्टम तथा फ्लोटिंग राफ्ट पद्धतियाँ समुद्री शैवाल पालन के लिए लोकप्रिय हैं। इन पालन पद्धतियों में मोनोफिलामेंट नायलॉन लाइन्स या पॉलीप्रोपलीन रस्सियों को दो समुद्री तल पर लगे लकड़ी के स्टेक के बीच बांध दिया जाता है। समुद्री शैवाल के छोटे टुकड़े इन लाइनों के साथ बांध देते हैं।

फ्लोटिंग राफ्ट मेथड संरक्षित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है जहां पानी का प्रवाह कमजोर है या पानी गहरा होता है। आम तौर पर, समुद्री शैवाल को सतह से 50 से. मी. नीचे झुलाने हेतु फ्लोटिंग राफ्ट (3 x 3 वर्ग चौकोर बांस फ्रेम) को पॉलीप्रोपलीन रस्सियों को उपयोग किया जाता है। सीडलिंग्स रस्सियों पर बांधी जाती हैं और राफ्ट को नीचे एंकर किया जाता है। राफ्ट्स का निर्माण नेट बॉटम्स से भी किया जाता है ताकि मछलियों द्वारा समुद्री शैवाल की चराई न हो जाए।

भारतीय परिदृश्य

सीएमएफआरआई, कोच्चि और सीएसएमसीआरआई, गुजरात द्वारा एगारोफाइट्स, अल्गिनोफाइट्स और करेनजेनोफाइट्स पर अनेक प्रयोगात्मक पद्धतियों पर कार्य किया गया, विशेषकर 1964 से तमिलनाडु के मंडपम क्षेत्र में। इन प्रयोगात्मक पालन

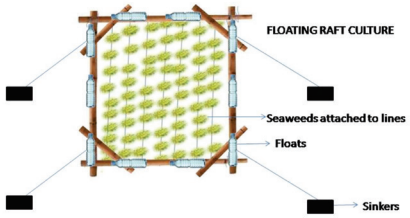

के बाद, भारत में एक औद्योगिक पैमाने पर समुद्री शैवाल का पहला पालन प्रयास पेप्सिको होल्डिंग्स इंडिया लिमिटेड (पेप्सिको) द्वारा वर्ष 2000 में कप्पा फाइकस और अल्पारेजी पालन प्रौद्योगिकी के आधार पर किया गया। प्राकृतिक स्थितियों में पालन की आर्थिक व्यवहार्यता का प्रक्षेत्र मूल्यांकन के पश्चात्, पेप्सिको ने एसएचजी सदस्यों को प्रति व्यक्ति 45 राफ्ट्स के साथ फ्लोटिंग राफ्ट पद्धति का उपयोग करते हुए अनुबंध खेती पर सम्मिलित किया। वानस्पतिक टुकड़े या बीज सामग्री (जो स्वस्थ समुद्री शैवाल के छोटे टुकड़े हैं) बांस से बने राफ्ट फ्रेम से जुड़े लाइन्स् से बांध कर समुद्र में उपयुक्त स्थान पर उगाया जाता है। समुद्री शैवाल फार्म के समुचित प्रबंधन के बाद, 75% समुद्री शैवाल 45–60 दिनों के बाद काटा जाता है जिसे प्रसंस्करणकर्ताओं को गीला या धूप में सुखाने के बाद बेचा जाता है। वर्ष 2011–12 के दौरान, के. अल्वरेजी ने भारत में समुद्री शैवाल के पूरे उत्पादन का आकलन किया, जो कि कप्पो कर्राजेनन के लिए प्रमुख स्रोत है।

कप्पाफाइकस अल्वारेजी

भारत में के. अल्वारेजी का उत्पादन (टन में)										
वर्ष	2005	2006	2007	2008	2009	2010	2011	2012	2013	2014
उत्पादन	1080	1952	2520	4704	6920	4240	4500	4500	4500	3000

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में समुद्री शैवाल की खेती

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के तटीय जल विविध प्रकार के समुद्री शैवाल का समर्थन करते हैं जिनमें व्यावसायिक रूप से महत्वपूर्ण अल्गिनोफाइट्स, अगारोफाइट्स और खाद्य हरी समुद्री शैवाल शामिल हैं। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में किए गए विविध अध्ययनों में समुद्री जल की लगभग 250 प्रजातियों का प्रलेखन किया गया है। दक्षिण अंडमान, उत्तरी अंडमान और मध्य अंडमान और लिटिल अंडमान में समुद्री जल के दस्तावेज खड़ी फसल बायोमास (गीला वजन) क्रमशः 19,111 टन, 6,817 टन और 1,260.18 टन है। यह द्वीप समूह उष्णकटिबंधीय समुद्री पर्यावरण और 1962 किलोमीटर की तटीय रेखा के साथ समुद्री शैवाल पालन के लिए उत्कृष्ट पर्यावरण है। समुद्री शैवाल को पोषक तत्वों को अवशोषित करने और जल प्रदूषण को कम करने के लिए समेकित मल्टीट्रॉफिक मत्स्य पालन के अंतर्गत मछलियों और शेलफिश के साथ पालन किया जा सकता है। समुद्री शैवाल पालन बेरोजगार तटीय आबादी और महिलाओं के लिए आजीविका के वैकल्पिक स्रोत के रूप में रोजगार के अवसर प्रदान कर सकती है।

द्वीपों में समुद्री शैवाल का पालन प्रारम्भ करने हेतु आवश्यक कदम

- द्वीप की स्थितियों में खेती की उपयुक्त पद्धति के चयन के लिए कुछ उपयुक्त स्थानों पर वाणिज्यिक रूप से महत्त्वपूर्ण समुद्री शैवालों का क्षेत्र स्तर पर व्यवहार्यता का अध्ययन करना।
- मीडिया तथा अन्य संचार माध्यमों से लोगों में समुद्री शैवाल पालन की लाभप्रदता में प्रति जागरूकता उत्पन्न करना।
- पणधारियों के लिए समुद्री शैवाल की खेती से संबंधित उपयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों का निरूपण एवं कार्यान्वयन।
- उपयोगकर्ताओं के बीच संघर्ष टालने हेतु समुद्री शैवाल की खेती के लिए उपयुक्त स्थानों को चिन्हित करने और उनके संरक्षण हेतु नीतियों का निर्माण करना।
- इच्छुक व्यक्तियों के बीच स्वयंसेवी संगठनों के रूप में समुद्री शैवाल उत्पादक संघ की स्थापना हेतु प्रोत्साहित करना।

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में आम समुद्री शैवाल

हरित समुद्री शैवाल

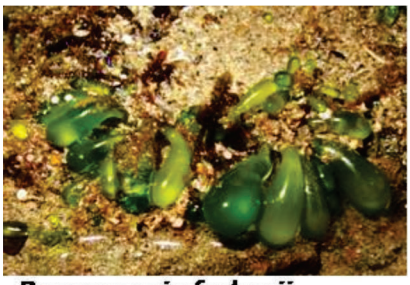

Boergesenia forbesii

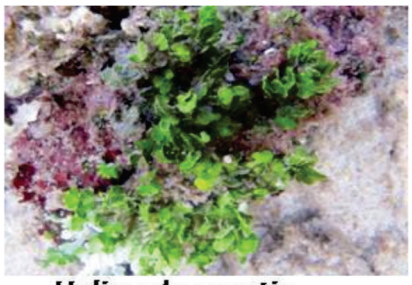

Halimeda opuntia

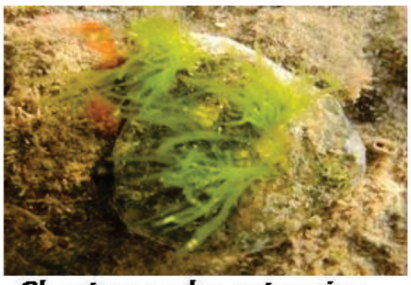

Chaetomorpha antennina

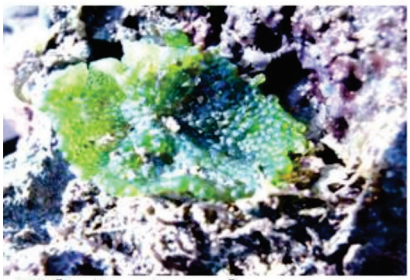

Valoniopsis pachynema

Caulerpa racemosa

Acetabularia crenulata

भूरे समुद्री शैवाल

Padina boergesenii

Sargassum cristaefolium

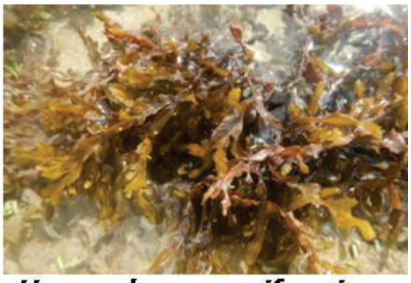

Hormophysa cuneiformis

Sargassum tenerrimum

Turbinaria triquetra

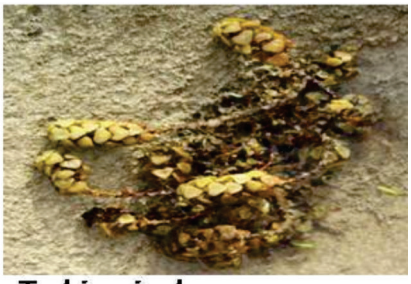

Turbinaria decurrens

लाल समुद्री शैवाल

Portieria hornemannii

Amphiroa anceps

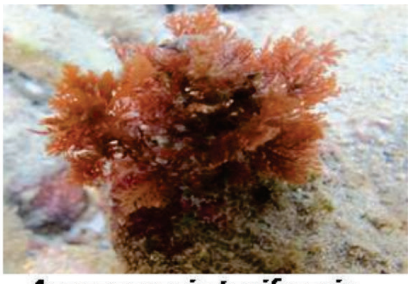

Asparagopsis taxiformis

Gracilaria corticata

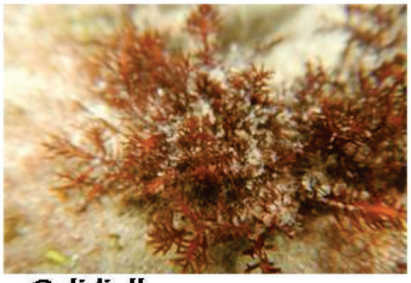

Gelidiella acerosa

Acanthophora spicifera

खारा जलीय मात्स्यिकी

दक्षिण–पश्चिम और उत्तर–पूर्व दोनों ही मानसून द्वीपों में सक्रिय रहते है और वार्षिक वर्षा 2600 से 3100 मि.मि. होती है। गर्मियों में जलवायु उष्णकटिबंधीय, गर्म और उमस भरी होती है। द्वीपों में तीन अलग–अलग मौसम अनुभव किए जाते हैं। मॉनसून–गीला मौसम मई से नवंबर तक, दिसंबर से फरवरी तक ठंडे महीनें और मार्च से अप्रैल तक गर्म शुष्क महीनें। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में खारा जलीय संसाधन बहुत सीमित हैं। हालांकि लगभग 33,000 हैक्टेयर क्षेत्र उपलब्ध है, अधिकांश क्षेत्रों में मैंग्रोव और आरक्षित वन हैं। इसके अलावा, अंडमान के कुछ हिस्सों में नमकीन पानी, मगरमच्छ और

शत्रुतापूर्ण प्रजातियों की मौजूदगी के कारण मछली उत्पादन के लिए इन क्षेत्रों को विकसित करने में बाधा है। सुनामी से पहले, लगभग 680 हेक्टेयर में खारे जलीय कृषि के विकास के लिए उपयुक्त माना गया। सुनामी के बाद, नमक पानी की घुसपैठ के कारण 4000 हैक्टेयर खारे हो गए हैं और इनमें से 1000 हैक्टेयर, जलीय कृषि के लिए उपयुक्त माना गया है। अब विकास के लिए कुल क्षेत्रफल 1680 हेक्टेयर उपलब्ध है जहां तालाबों / पिंजरों / पेन आदि में मत्स्यपालन किया जा सकता है। मल्लेट्स (लिजा पारसिया), समुद्री बास (लेट्स कैलकैरीफर), स्कैट (स्कैटोफैगस अर्गस), और स्काइला ट्रांकूबारिका द्वीप में खारा जलकृषि की अपार सम्भावनाएं उपलब्ध कराती है। जैसे मैंग्रोव केकड़ों, स्काइला साराटाटा द्वीपों में खारे पानी के जलीय कृषि के लिए एक विशाल क्षेत्र प्रदान करते हैं। पहले किए गए मेक्रो–स्तरीय सर्वेक्षण के आधार पर, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में 618.80 हैक्टेयर में कुल खारे पानी का क्षेत्र है, जिसमें से निकोबार जिले में 17.65 हैक्टेयर स्थित है। क्षेत्रवार जल वितरण सरकार के अधीन है और निजी श्रेणियां – तालिका 1 में दी गई हैं। इस खारा पानी का लगभग 380 हैक्टेयर भूमि निजी कब्जे के अंतर्गत है। चूंकि यह सर्वेक्षण एक दशक से भी अधिक समय पहले किया गया था, अत: खारे जल की जलीय कृषि के लिए उपयुक्त क्षेत्र स्थापित करने के लिए एक नए सर्वेक्षण करने के लिए आवश्यकता है। सामान्य तौर पर इनमें से अधिकतर क्षेत्र मैंग्रोव वनों के करीब स्थित हैं। वर्तमान में निजी क्षेत्र में चिंगट खेती द्वीपों में कहीं भी नहीं है।

मीठा जल मात्स्यिकी

अंडमान और निकोबार द्वीप समूह की अंतर्स्थलीय मत्स्य संसाधन तालिका–1 में दर्शाया गया है।

कुल अंतर्स्थलीय जल निकाय (लाख हे.)	1.24
नदी एवं कैनल (कि.मी.)	115
जलाशय (लाख हे.)	0.01
टैंक व तालाब (लाख हे.)	0.03
बाढ़कृत आर्द्र झील/डेरीलिक्ट वाटर्स (लाख हे.)	–
खारा जल (लाख हे.)	1.20
बीएफडीए की संख्या	1

सौजन्य : www- dahd-nic-in

79. अंतर्स्थलीय मत्स्य उत्पादन बढ़ाने के अवसर

के. सरवनन, आर.किरूबासंकर, वेंकटेश आर. ठाकुर, अनुराज एं, एवं एस.दाम राय

मिश्रित मत्स्य पालन

अन्य कृषि क्षेत्रों के विकास की तुलना में, मत्स्य पालन का विकास सबसे तेज गति से हुआ है। यह विकास मीठे जल में मत्स्य उत्पादन के कारण ही संभव हुआ है। इसमें मृदा, जल और मत्स्य पालन के प्रबंधन शामिल हैं। प्रति युनिट क्षेत्र से अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु विभिन्न आहारीय गुणों वाली पालन योग्य मछलियों का सामूहिक देखभाल ही मिश्रित मत्स्यपालन है। मछलियाँ जिनका आहार पादपप्लवक या जन्तु प्लवक है, उन्हें अधिकतम भंडारित ऊर्जा प्राप्त होती है और ये मछलियाँ मांसाहारी मछलियों की तुलना में तेजी से बढ़ती हैं। सभी मछलियाँ एक ही स्थान पर नहीं रहती हैं और आहार भी अलग अलग स्थान पर लेती हैं। अत: यदि हम इन तीनों प्रजातियों का एक साथ पालन करते हैं तो आहार एवं स्थान का उपयोग अधिकतम स्तर पर होता है और प्रजातियों में कोई स्पर्धा भी नहीं होती है। मिश्रित मत्स्य पालन एक प्रौद्योगिकी है जो भारत में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा वर्ष 1970 में विकसित की गई। इस प्रणाली के अंतर्गत देशी एवं विदेशी मत्स्य प्रजातियों, पांच या छ: मत्स्य प्रजातियों का एक ही तालाब में पालन किया जा सकता है। इन प्रजातियों को इस प्रकार चयन किया जाता है कि वे आपस में आहार के लिए प्रतिस्पर्धा न करें चूंकि इनकी आहार प्रवृत्ति अलग अलग होती हैं। इसके परिणाम स्वरूप तालाब के सभी भागों में उपलब्ध आहार का सम्पूर्ण उपयोग होता है। इस प्रणाली में उपयोग की जाने वाली प्रजातियों में कतला और सिल्वर कार्प है जो ऊपरी सतह पर आहार ग्रहण करती हैं। रोहू एक कॉलम फीडर है तथा मृगाल एवं कॉमन कार्प जो निचली सतह पर आहार ग्रहण करती हैं। अत: हम इन तीनों प्रजातियों का एक साथ पालन करें ताकि आहार और स्थान का अधिकतम उपयोग हो सके और प्रजातियों के बीच प्रतिस्पर्धा न हो। अन्य मछलियाँ कॉमन कार्प मछलियों के मल को आहार के रूप में लेती हैं इससे प्रणाली की क्षमता में योगदान होता है और सामान्य स्थितियों में एक हैक्टेयर क्षेत्र से प्रतिवर्ष 3000–6000 कि.ग्रा. मत्स्य उपज प्राप्त होती है। मिश्रित मत्स्य पालन का यह निहित सिद्धांत है, जिसमें तालाब में उपलब्ध सभी शरण स्थलों का औचित्यपूर्ण उपयोग साथ ही साथ तालाब के सम्पूर्ण स्तर का उपयोग करना सम्मिलित है। इन द्वीपों में मांग एवं उपभोजन के संदर्भ में मेजर कार्प मछलियां सर्वश्रेष्ट मानी जाती हैं। अत: मिश्रित मत्स्य पालन में उपयुक्त जलजीव पालन निहित है।

संग्रहण प्रबंधन

संग्रहण तालाबों में प्रजातियों के संयोजन और संग्रहण दर के रखरखाव से उच्च मत्स्य उत्पादन प्राप्त होता है। तालाब की धारण क्षमता इसकी उर्वरता, प्राकृतिक असहार की उपलब्धता, जल में घुलित आक्सीजन, फिश बायोमास और फीडिंग पर निर्भर करती है। जब तालाब की धारण क्षमता उच्चतम अवस्था तक पहुंच जाती है तो मत्स्य विकास घट जाता है। परन्तु इसे संतुलित आहार, अनुकूल पर्यावरण, वातन आदि से निपटाया जा सकता है।

1. संग्रहण : मछलियों को 5000– 6000 प्रति हैक्टेयर की दर से तालाब में संग्रहित किया जाता है। अंगुलिकाओं या इयरलिंग्स का आकार लम्बाई में 10–15 से.मी. होना चाहिए जिससे ये मछलियां तेजी से बढेंगी और मृत्यु दर भी कम होगी। जब संग्रहित किए जाने वाली मछलियां बाहर से लायी जाती हैं तो इन्हें संग्रहण से पूर्व पोटेशियम परमैगनेट (5%) से उपचार किया जाना चाहिए।
2. मत्स्य आहार देना : आमतौर पर कार्बनिक और अकार्बनिक उर्वरकों के अनुप्रयोग के पश्चात प्लवकों का उत्पादन होता है। जब हम अधिक संख्या में मछलियों का संग्रहण करते हैं, पूरक आहार की आवश्यकता हो जाती है।

   यह पूरक आहार चावल की भूसी और मूंगफली या सरसों की खली (1:1 अनुपात में) मिलाकर तैयार किया जाता है और मछलियों को दिया जाता है। साथ ही, इस फीड में 1% विटामिन–खनिज मिश्रण जोड़ा जा सकता है।
3. आहार देने की विधि : संग्रहण के दो माह तक आहार को सतह पर फैला दिया जाता है। तत्पश्चात् तालाब के दो निश्चित स्थानों पर आहार देने हेतु फीडिंग ट्रे/बास्केट/बैग लगाया जाता है। दिन के दौरान एक निश्चित समय पर आहार दिया जाना चाहिए और आहार की मात्रा को मछली के शारीरिक भार के अनुसार (2–3%) समायोजित किया जाना चाहिए।

   उदाहरण: ग्रास कार्प का आहार जलीय पौधों जैसे हाइड्रिला, नगास आदि या मवेशियों का हरित कटा हुआ चारा जैसे नेपियर घास, मक्के की पत्तियां आदि ग्रास कार्प को दिया जाता है।
4. मत्स्य उपज प्राप्ति : मत्स्य उपज की प्राप्ति ड्रैगनेट के उपयोग से ग्रीष्मकाल के दौरान जब जलस्तर कम हो जाता है या मानसून के दौरान जब बाजार की मांग के आधार पर की जाती है, आंकलित उत्पादन 3–3.5 टन/हे. तालाब है।

मीठे जल के मत्स्य रोग और उनका प्रबंधन

विश्व के मत्स्य उत्पादन में जलजीव पालन का योगदान लगभग 50 प्रतिशत है। भारत समृद्ध जलीय संसाधनों से सम्पन्न है, अर्थात अंतर्स्थलीय, खारा जल और समुद्री जल जिनमें वैश्विक जैवविविधता का लगभग 10% विविधता मौजूद है। भारत में जलजीव पालन कार्प पालन का लगभग समानार्थक है, क्योंकि कार्प मछलियों का देश के कुल मत्स्य उत्पादन में 80% से अधिक का योगदान है। कार्प पालन में मुख्य रूप से तीन भारतीय मेजर कार्प (आईएमसी) जैसे कतला (कतला कतला), रोहू (लेबियो रोहिता) और मृगल (सिरहिनस मृगला), घरेलूकृत विदेशी कार्प मछलियां सिल्वर कार्प (हाइपोथलामीमिचथैस मॉलिट्रिक्स)), ग्रास कार्प (सीटेनोफारिंग आइडेल्ला) तथा कॉमन कार्प (सिप्रिनस कार्पियो) सम्मिलित हैं। देश के विभिन्न राज्यों में कार्प पालन बड़े पैमाने पर की जाती है। इस पालन पद्धतियों की तीव्रता से रोगों की समस्या उत्पन्न होती है, जिससे उद्योग की वृद्धि कम हो गई है। धीमे विकास और पालित प्रजातियों के निम्न उत्पादन के लिए विभिन्न कारणों को सुझाया गया है, जिनमें तनावपूर्ण पालन परिवेश भी सम्मिलित है जैसे अम्लीय जल एवं मृदा, गुणवत्तापूर्ण बीज एवं फीड की अनुपलब्धता, उच्च और निम्न संग्रहण घनत्व, रोगों की घटना आदि। मछली में होने वाले रोग मुख्य रूप से विभिन्न प्रकार के इटियोलॉजिकल एजेंटों के कारण होते हैं, जैसे बैक्टीरिया, परजीवी, कवक और पोषण संबंधी कमियाँ आदि।

जीवाणुवीय रोग

उष्णकटिबंधीय जल में अधिकांश जीवाणुवीय मत्स्य रोगजनक सर्वव्यापी हैं और मेजबान की तनावपूर्ण स्थिति में रोग उत्पन्न कर सकते हैं। इस खंड में अतिसामान्य जीवाणुवीय रोग सूचीबद्ध किए गए हैं।

1. अल्सर या एरोमोनियासिस

यह रोग एरोमोनास स्पीशीज से होता है, जो शरीर की सतह और आंतरिक अंगों को प्रभावित करता है। क्लिनिकल चिकित्सीय लक्षणों में रक्तयुक्त त्वचा के घाव, उथले खुले घाव, क्षीणित पंख और मुंह सम्मिलित हैं। इस रोग का उपचार आक्सी टेट्रासाइक्लिन से किया जा सकता है या आहार में टेरामाइसिन 75 मि.ग्रा./ कि.ग्रा मछली की दर से 7–21 दिनों तक दिया जा सकता है। तालाब को पोटाशियम परमैगनेट 5 मि.ग्रा./ली. की दर से कीटाणुशोधन किया जाना चाहिए।

2. ड्राप्सी

मीठे जल की मछली में जलोदर (ड्राप्सी) एरोमोनस हाइड्रोफिला के कारण होता है। यह रोग मछली की बॉडी कैविटी और स्केल पॉकेट को प्रभावित करता है। क्लिनिकल चिकित्सीय लक्षणों में अंतरित उदर, स्केल फैलाव और मछली में हल्के व्रण सम्मिलित हैं। इसे 2 मिनट के लिए 5 पीपीएम पोटाशियम परमैगनेट में डुबोकर उपचार किया जा सकता है। तालाब में पोटाशियम परमांगनेट से कीटाणुशोधन किया जाना चाहिए।

3. पंख और पूंछ सड़न

इस रोग के कारक एजेंट एरोमोनास और सूडोमोनास हैं जो मछली के पंख और पूंछ को प्रभावित करते हैं। क्लिनिकल लक्षणों में सफेद मार्जिन पंख तथा पंख एवं पूंछ का गलन सम्मिलित है। इस रोग के नियंत्रण के लिए मत्स्य आहार में टेरामाइसिन 100 मि.ग्रा / कि.ग्रा या सल्फाडियाजिन 100 मि.ग्रा / कि.ग्रा की दर से मिलाकर दिया जा सकता है।

परजीवीय रोग

परजीवीय रोग, प्रोटोजोन सिलिएट्स (इचथियोफथिरियस मल्टीहफिलिस), मोनोजेनेटिक ट्रेमाटोड्स (डाक्टीजलोजीरस एसपी एवं गैरोडेक्टीलस एसपी) तथा बड़े क्रस्टेशियन पैरासाइट्स (लेरनेया एसपी एवं आर्गुलस एसपी) से होता है और इस रोग से मत्स्य पालन प्रणाली में भारी आर्थिक क्षति होती है।

1. सफेद धब्बा रोग

इस रोग के कारक एजेंट इक्थ्योपथिरियस मल्टीफिलिस है, जो गलफड़ों और त्वचा को प्रभावित करता है। नैदानिक लक्षणों में अनियमित तैराकी, त्वचा, गलफड़ा और पंख पर सफेद धब्बों के रूप में परजीवी दिखाई पड़ते हैं। मालाचाइट ग्रीन ऑक्सालेट से 4–6 घंटे के लिए 0.15–0.20 मि.ग्रा. / लीटर से उपचार। इसी तरह, सोडियम क्लोराइड द्रव्य में 7 दिन या इससे अधिक समय के लिए स्नान उपचार इस रोग का निदान कर सकता है।

2. गिल फ्लूक और स्किन फ्लूक इन्फेक्शन

ये संक्रमण डेक्टी्लोजीरस एसपी (गलफड़ों का संक्रमण) और गैरोडैक्टीलस एसपी (त्वचा का संक्रमण) द्वारा होता है। प्रभावित अंग शरीर की सतह और गलफड़े हैं। नैदानिक लक्षणों में मछलियां हवा लेना, कुम्हलाये गलफड़े, मोटी बलगम परत

से ढकी गलफड़ें सम्मिलित हैं। पूरा शरीर नीले ग्रे बलगम परत से ढका हुआ होता है। डिप्टेरेक्स 0.25– 0.50 मिलीग्राम / लीटर में स्नान उपचार और फॉर्मालिन स्नान उपचार 100 मि.ग्रा. / ली. दर से रोग को नियंत्रित कर सकते हैं।

3. एंकर वर्म इनफेक्शन

एंकर वर्म इनफेक्शन लेरनेया एसपी के कारण होता है। मुख्यतः मछली के शरीर की सतह को प्रभावित करता है। चिन्हित दुर्बलता, जलन तथा परिगलन इस रोग के नैदानिक लक्षण हैं। उपचार में डीप्टेरेक्स 0.25–0.50 मि.ग्रा. / लीटर सांद्रणता से स्नान उपचार शामिल है। इसके अलावा सोडियम क्लोराइड द्रव्य 0.8 – 1.1% में स्नान उपचार 3 दिनों के लिए करना चाहिए।

4. आर्गुलोसिस या फिश लाइस इंफेक्शन

यह रोग आर्गुलोसिस स्पीशीज के कारण होता है, जो शरीर की सतह को संक्रमित करता है।

छोटे लाल धब्बे, हेममॉरहाजिक व्रणकारी घाव, इस रोग के नैदानिक लक्षण हैं। ट्राइक्लोनरफॉन 0.2 मि.ग्रा./ली में 24 घंटों तक स्नान उपचार। इसके अलावा पोटाशियम परमांगनेट 10 मि.ग्रा./ली. में 30 मिनट का छोटा स्नान उपचार संक्रमण को नियंत्रित कर सकता है।

कवकीय रोग

यद्यपि मछलियों में रोग उत्पन्न करने के लिए अनेक कवकदायी होते हैं परन्तु सामान्य रूप से पाए जाने वाले मत्स्य रोगजनक कवक सप्रोलेगनिया एसपीपी, ब्रांचियोमाइसेस एसपीपी तथा एफानोमाइसेस इन्वेडन्स हैं।

1. कॉटन वूल रोग

यह रोग सेप्रोलेगनिया पैरासिटिका के कारण होता है। यह शरीर के सभी हिस्सों को संक्रमित करता है। नैदानिक लक्षणों में चोट लगने वाले स्थान पर ऊन की तरह सूजन और रक्तस्राव सम्मिलित हैं। उपचार पद्धति में सोडियम क्लोराइड / 3–4% में स्नान उपचार शामिल है। इसी तरह, पोटाशियम परमांगनेट 60 मि.ग्रा. / लीटर में 5 दिनों के लिए स्नान उपचार।

2. गिल रॉट रोग

मछलियों में गिल सड़न रोग *ब्रांचियोमाइसेस डेमिग्रन्स* और *ब्रांचियोमाइसेस सांगुइनिस* के कारण होता है, जो मुख्य रूप से मछलियों के गहरे घावों को संक्रमित करती है। नैदानिक लक्षणों में कवक गिल रक्त वाहिकाओं के माध्यम से बढ़ता है और आसपास के ऊतकों के परिगलन का कारण बनता है। इसके अलावा गिल ऊतकों के मलिनिकरण और विघटन का कारण बनता है। 5–10 मिनट के लिए सोडियम क्लोराइड (3–4%) में स्नान उपचार और इसके अलावा 5–10 मिनट के लिए 5 मिग्रा / ली. पोटाशियम परमांगनेट से स्नान उपचार रोग का इलाज कर सकता है।

3. महामारी व्रणकारी सिंड्रोम

महामारी व्रणकारी सिंड्रोम *एफानोमाइसेस इन्वेडन्स* के कारण होता है। यह पूरे शरीर और मछली के आंतरिक अंगों को संक्रमित करता है। नैदानिक लक्षणों में शरीर पर लाल रंग के पैच में अल्सर शामिल होते हैं। गंभीर रूप से प्रभावित मछलियों के पंख और मांसपेशियां ढीले पड़ जाते हैं जिससे मछलियों की मृत्यु हो जाती हैं। उपचार विधि में चूना 200 किलो / हैक्टेयर पानी और सीआईएफएक्स @ 0.1 पीपीएम का उपयोग शामिल है।

पौषणिक कमी संबंधी रोग

लम्बे समय तक कुछ पौषणिक तत्वों की कमी या कुपोषण से पौषणिक कमी संबंधी रोग उत्पन्न हो सकते हैं। मछलियों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों में अमिनो एसिड्स – प्रोटीन, शूगर्स – कार्बोहाइड्रेट्स, ऑयल्स – लिपिड्स एवं फैटी एसिड्स, विटामिन्स एवं मिनरल्स सम्मिलित हैं। पालित कार्प मछलियों में व्याप्त पौषणिक कमी संबंधी रोग स्कोलियोसिस, लारडोसिस तथा पिन हेड रोग हैं।

(i) स्कोलियोसिस एवं लारडोसिस : मछलियों में स्कोडलियोसिस, लारडोसिस रोग आवश्यक अमिनो एसिड्स की कमी के कारण होता है, नामत: ट्रिप्टोफान तथा विटामिन सी की कमी से स्कोलियोसिस, लारडोसिस रोग होता है जिससे मछलियों में कंकालीय विकृतियां आ जाती हैं। यह रोग मुख्यत: मछली के मेरूदण्ड को प्रभावित करता है। स्कोलियोसिस स्पाइनल कार्ड के लेटरल कर्वेचर को तथा लारडोसिस वर्टीकल कर्वेचर को प्रभावित करता है। इस कमी को आहार में आवश्यक मात्रा में ट्रिप्टोफान और विटामिन सी मिलाकर दिया जा सकता है जिससे यह समस्या दूर हो सकती है।

(ii) पिन हेड रोग : प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और लिपिड की कमी से धीमी गति से विकास, अवरुद्ध विकास, शरीर पर स्कम की कमी, सुस्त संचरण, निष्क्रिय और उत्तेजना के लिए अनिच्छुक होती है। सिर व्यापक और बड़ा आकार दिखता है, जबकि शरीर दुबला होता है और शरीर पर से स्केल्स का नुकसान होता है। ऐसी मछलियों को 'पिन सिर' कहा जाता है। पोषण की कमी के रोग को संतुलित पौषणिक आहार, उचित आहार प्रबंधन, तालाब में आवश्यक प्लवकों की मात्रा तथा प्लवकों की गुणवत्ता बनाए रखने से रोग को कम किया जा सकता है।

निष्कर्ष

हालांकि पालित मछलियों में कई प्रकार के रोगजनक पाए गए हैं, लेकिन रोगजनक जो गंभीर बीमारी फैलाते हैं और उत्पादन का नुकसान करते हैं, ऐसे रोगजनक कम ही हैं। हालांकि, जलजीव पालन में रोग मेजबान, रोगजनक और पर्यावरण के बीच जटिल संपर्क की अभिव्यक्ति है। गहन पालन प्रणाली और साथ ही खराब पर्यावरणीय स्थिति रोग फैलाने के लिए अनुकूल स्थिति प्रदान करती है, क्योंकि इस तरह की प्रणाली में मेजबान पर जोर देते हैं और जहरीले रोगजनकों के अनुकूल होते हैं। रोग नियंत्रण के लिए सबसे महत्वपूर्ण दृष्टिकोण रोगों की स्थिति को कम करने के लिए पालन इकाई का प्रबंधन करना है। अनुकूलतम संग्रहण घनत्व के माध्यम से रोगजनकों के प्रवेश की रोकथाम, जल की गुणवत्ता का रखरखाव, तनाव से बचना और पर्याप्त पोषण का प्रावधान किया जा सकता है।

प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन

80.द्वीपीय परितंत्र में आजीविका सुरक्षा के लिए समेकित पालन पद्धतियां

ए. वेलमुरुगन

आजीविका सुरक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि आय एवं संसाधनों तक की पहुंच, जिससे आहार, पेयजल, स्वास्थ्य सुविधाएं, शिक्षा के अवसर, आवास, सामुदायिक कार्यों में सहभागिता तथा सामाजिक समन्वयन सहित मूल आवश्यकताएं प्राप्त हो सकें। आजीविका सुरक्षा ऑन फार्म एवं ऑफ फार्म (फार्म पर एंव फार्म के बाहर) गतिविधियों की एक श्रृंखला है, जो आहार एवं नकदी प्राप्त करने हेतु विभिन्न रणनीतियां उपलब्ध कराती है। आजीविका सुधार हेतु घरेलू रणनीतियों में उत्पादन का विविधीकरण एक रणनीति है। समेकित पालन प्रणाली न केवल विविधीकरण की अनुमति देती है, बल्कि उत्पादन एवं उत्पादकता की वृद्धि के लिए विभिन्न घटकों के बीच सहक्रियता प्रदान करती है। द्वीप की विशेषताएं यह हैं कि सामान्यत: दूरस्थ क्षेत्र, सीमित प्राकृतिक संसाधन जैसे भूमि तथा खाद्य उत्पाद के बाजारों की उपलब्धता तथा मजदूरों की उपलब्धता सीमित होती है। बढ़ती जनसंख्या और घटते संसाधनों के दौर में द्वीपीय जनसंख्या की आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु रणनीतियों का विकास करना अनिवार्य हो गया है।

अंडमान एवं निकोबार द्वीपों में समेकित पालन प्रणालियां

क. पहाड़ी ऊंची भूमि

पहाड़ी क्षेत्र वह क्षेत्र है जिसमें 25% की ढलान होती है, जहां रोपण फसलें, जैसे नारियल और सुपारी की प्रचुरता होती है। यहां की मृदाओं में कम उर्वरता और मृदा अपरदन होता है। इस प्रकार की स्थितियों में रोपण आधारित फसल प्रणालियां, जिनमें फसल + डेरी + घर के पीछे के आंगन में कुक्कुट पालन से फार्म का उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि देखी गई है। इस प्रकार के क्षेत्र के बागानों में काली मिर्च, लौंग सहित मसालों को अंत:फसल के रूप में उगाना उत्तम विकल्प है। समेकित प्रयासों से बागानों की एकल आय की तुलना में फार्म की शुद्ध आय 3.9 लाख/हे./वर्ष तक बढ़ायी जा सकती है और 163 कार्य दिवस/हे./वर्ष का अतिरिक्त रोजगार भी उत्पन्न किया जा सकता है।

ख. मध्यम ऊंचाई वाली भूमि/मध्यम ढलान वाली भूमि

मध्य, भाग यानी मध्यम ऊंचाई वाले क्षेत्र के बागानों में केला तथा अनान्नास का अंत:फसलीकरण किया जाता है। इन क्षेत्रों में 10–15% तक की ढलान, खुरदरी मृदा, निम्न पोषक तत्व एवं जल धारण क्षमता में कमी के साथ मध्यम गहराई होती है। मृदा अपरदन एवं पोषक स्तर की कमी प्रमुख समस्याएं हैं। यहां ऊंची भूमि में चावल के साथ दलहन, सब्जियां, फूल तथा गन्ना उगाया जाता है। फसलों के साथ डेरी + कुक्कुट पालन + मात्स्यिकी या डेरी + बकरी पालन + कुक्कुट पालन + मात्स्यिकी के समेकन से लगभग 1 लाख रुपए का अतिरिक्त शुद्ध लाभ तथा 198 कार्य दिवस/हे./वर्ष का रोजगार उत्पन्न किया जा सकता है।

ग. निचली घाटी क्षेत्र/तटीय मैदानी क्षेत्र

निचली घाटी क्षेत्र में केवल चावल उत्पादन ही संभव है, क्योंकि यहां 6 माह से अधिक अवधि तक जल भराव रहता है। इन क्षेत्रों के कृषि निष्पादन में सुधार के लिए क्यारी एवं फरो प्रणाली अपनायी जा सकती है। अल्पावधिक चावल की मौजूद फसल प्रणाली और दलहन या सब्जियों के साथ मवेशियों, कुक्कुट पालन एवं मात्स्यिकी के समेकन से फार्म की अतिरिक्त शुद्ध आय 1.70 लाख प्राप्त होने की आशा की जा सकती है तथा 201 कार्य दिवस/हे./वर्ष रोजगार उत्पन्न हो सकता है।

घ. तालाब आधारित समेकित पालन प्रणाली

छोटे तालाब किसानों की गृहस्थी का अभिन्न अंग हैं जो मानसून के पश्चात उन्हें जल आपूर्ति करते हैं तथा साथ ही मीठे जल की मछलियों के संवर्धन के अवसर भी देते हैं। इन तालाबों की उत्पादन प्रणाली में मछलियां, अंडे, सब्जियां, कुक्कुट के समेकन से तटबंधों पर उपलब्ध स्थान का प्रभावकारी रूप से उपयोग किया जा सकता है। फल और सब्जियां तालाब के तटबंधों पर, भारतीय मेजर कार्प को तालाब में संग्रहित किया जा सकता है। कुक्कुट पालन तथा बत्तखों का समेकन भी तालाब के ऊपर नाइट शेल्टर बनाकर किया जा सकता है और इनका मल मछलियों के आहार में उपयोग किया जा सकता है। मौजूदा तालाब की उत्पादन प्रणाली में विविधीकरण से परिवार की विभिन्न खाद्य पदार्थों की मांग पूरी हो सकती है।

ङ. निकोबार द्वीपों के लिए गृहस्थ आधारित समेकित पालन प्रणाली

इस क्षेत्र की सुदूरता, आहारीय आदतें, भूमि की सीमित उपलब्धता, जल्द खराब होने वाले उत्पादों के लिए बाजार की अनुपलब्धता पर विचार करते हुए जनजातीय गृहस्थियों की पौषणिक सुरक्षा में सुधार के अलावा फार्म उत्पादन में वृद्धि तथा रोजगार उत्पन्ने करने हेतु छोटे पैमाने पर गृहस्थ आधारित समेकित पालन प्रणाली विकसित की गई है, जिसमें होम गार्डन (400 वर्ग मीटर), घर के पीछे के आंगन में कुक्कुट पालन (20 पक्षी), बकरी पालन (2 बकरियां) तथा कम्पोस्टिंग सम्मिलित हैं। इस के उपरांत गृहस्थी में मांस, कुक्कुट, अंडे, फल एवं सब्जियों की खपत की बारम्बारता में 71 से 380% तक की वृद्धि

हुई। फार्म उत्पादन के कारण शाक सहित सब्जियों फलों एवं अंडों के उपभोग में उल्लेखनीय वृद्धि हुई और कंदों की खपत में कमी आई जिससे आहारीय पद्धति में बदलाव सूचित होता है जो संतुलित पौषणिकता की ओर जाता है।

निष्कर्ष

बढ़ती जनसंख्या् तथा आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने की आवश्यकता से यह अनिवार्य है कि ऑन फार्म तथा ऑफ–फार्म गतिविधियों के माध्यम से उत्पादन को बढ़ाने के लिए उपयुक्तम रणनीतियां बनाई जाएं। संसाधनों की देन तथा विभिन्न स्थानों की समस्याओं के आधार पर विविध कृषि गतिविधियों के समेकन से फार्म उत्पादन में सुधार के साथ–साथ वैयक्तिक फार्म गृहस्थियों के लिए रोजगार के अवसर उत्पन्न करना संभव है। इससे द्वीप में आजीविका के लिए बाहरी स्रोतों पर निर्भरता में कमी आएगी।

81.मृदा स्वास्थ्य कार्ड

बी. गंगय्या

मृदा स्वास्थ्य कार्ड, फरवरी, 2015 में लोकार्पित कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार का फ्लैगशिप कार्यक्रम है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य मृदा की गुणवत्ता का आकंलन कर तदनानुसार खाद एवं उर्वरक निवेशों के अनुप्रयोग से किसान द्वारा अच्छी उपज प्राप्त करना है। तब से संघ शासित प्रदेशों सहित भारत के समस्त राज्यों ने इस कार्य को प्रारम्भ किया है। इसके अंतर्गत, कृषि विभाग, अंडमान एवं निकोबार प्रशासन ने 10,000 मृदा स्वास्थ्य कार्डों का लक्ष्य निर्धारित किया है। इस लक्ष्य में से आईसीएआर–सीआईएआरआई तथा इसके तीन कृषि विज्ञान केन्द्रों (सिप्पीघाट, दक्षिणी अंडमान निम्बूडेरा, उत्तरी एवं मध्य अंडमान तथा निकोबार जिले के कार निकोबार) को 2000 मृदा स्वास्थ्य कार्ड जारी करने तथा सीआईएआरआई के प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन प्रभाग को मृदा विश्लेषण कार्य करने का दायित्व सौंपा गया है।

अब तक 1000 मृदा नमूनों (उत्तरी एवं मध्य अंडमान से 400 तथा दक्षिणी अंडमान से 600) को एकत्रित किया गया। इनमें से 250 मृदा स्वास्थ्य कार्ड {(उत्तरी एवं मध्य अंडमान : निम्बूडेरा : 63 एवं दिगलीपुर : 38 नमूने) (दक्षिणी अंडमान जिले : मीठाखाड़ी : 17 : नमूनाघर : 19 : रंगाचांग : 16 : बर्मानाला : 20 : छोलदारी : 20 : गुप्तापाड़ा : 20 : शोलबे : 20 एवं हंफरीगंज : 17)} 5 दिसम्बंर, 2015 को विश्व मृदा दिवस पर जारी किये गये (मृदा स्वास्थ्य कार्ड चित्र 1 में दर्शाया गया है)।

एकत्रित मृदा नमूनों को प्रसंस्कृत कर 10 मृदा उर्वरता प्राचलों (पीएच, विद्युत चालकता, जैविक कार्बन, उपलब्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाशियम, सल्फर, डीटीपीए निष्कर्षणीय जिंक, आयरन, मैंगनीज तथा कॉपर) के लिए विश्लेषण किया गया। विश्लेषण रिपोर्ट के आधार पर मानक पद्धतियों को अपनाते हुए प्रत्येक प्राचल के लिए मृदा को निम्न, मध्यम तथा उच्च स्तर में वर्गीकृत किया गया (तालिका 1)। किसान की पसन्द की फसल से लक्षित उपज प्राप्त करने हेतु पोषण तत्वों एवं खाद की सिफारिश की गई।

इन 250 मृदा स्वास्थ्य कार्ड विश्लेषण के आंकड़ों के अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि मृदाओं में जैविक कार्बन मात्रा उच्च स्तर की है। पीएच एवं विद्युत चालकता के आधार पर मृदाओं को सामान्य रूप से अम्लीय तथा गैर–क्षारीय रूप में वर्गीकृत किया गया। मृदाओं में उपलब्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा सल्फर की मात्रा निम्न स्तर की है। यद्यपि उच्च जैविक कार्बन वाली मृदाओं में उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा उच्च स्तर की होती है, सम्भवत: उच्च वर्षापात (300 से.मी./वर्ष) के कारण घुलनशील नाइट्रोजन के बहाव से मृदा में उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा कम हो गई है। उपलब्ध फास्फोरस, पोटाशियम (केवल दक्षिणी अंडमान) तथा सल्फर (केवल उत्री एवं मध्य अंडमान) के संदर्भ में मृदाओं को निम्न स्तर के रूप में वर्गीकृत किया गया। सूक्ष्म पोषक तत्वों में से डीटीपीए निष्कर्षणीय लौह, मैंगनीज तथा कॉपर की उपलब्ध मात्रा संबंधित नाजुक स्तर क्रमश: 8.0, 4.5 एवं 0.45 कि.ग्रा./हे. से अधिक है। तथापि मृदाएं जिंक के संदर्भ में निम्न स्तर की पायी गयीं हैं जिसका मान नाजुक स्तर 13 कि.ग्रा./हे. से कम है। मृदाओं में आयरन, मैंगनीज तथा कॉपर की उच्च मात्रा मृदाओं की अम्लीय प्रकृति के कारण है। मृदा में उच्च ऑयरन, मैंगनीज पोषक तत्व फास्फोरस से मिलकर योगिक बना देते हैं और इससे मृदाओं में उपलब्ध फॉस्फोरस में कमी आयी है। उपरोक्त आंकड़ों से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्थिर एवं उच्च उपज प्राप्ति के लिए खाद तथा नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाशियम, सल्फर तथा जिंक के उर्वरकों का अनुप्रयोग आवश्यक है।

तालिका 1. उत्तरी एवं मध्य अंडमान तथा दक्षिणी अंडमान जिलों की मृदा उर्वरता प्राचलों के मीन, सांख्यिकी आँकड़े

उर्वरता प्राचल	उत्तरी एवं मध्य अंडमान			दक्षिणी अंडमान		
	औसत		निम्नतम / न्यनाम व उच्चतम मान	औसत		निम्नतम व् उच्चतम मान
पी.एच	5.48		4.60 – 6.95	5.70		3.80 – 7.00
ई.सी. (एस/एम)	12.84		4.75– 58.80	25.50		5.10–112.80
जैविक कार्बन (%)	0.93		0.11 – 3.31	1.30		0.10 – 5.90
उपलब्ध नाइट्रोजन (कि.ग्रा./हे.)	108.86		74.00–171.00	230.40		53.00–541.00
उपलब्ध फॉस्फोरस (कि.ग्रा./हे.)	7.23		0.18– 38.37	8.00		0.10 – 42.30
उपलब्ध पोटाश (कि.ग्रा./हे.)	–		–	243.00		36.00707.00

उपलब्ध सल्फर (कि.ग्रा./हे.)	0.77		0.09 – 4.25	–		–
डीटीपीए जिंक (कि.ग्रा./हे.)	1.61		0.10 – 4.30	1.60		0.20 – 5.90
डीटीपीए आयरन (कि.ग्रा./हे.)	52.34		14.10105.40	45.80		0.20–121.90
डीटीपीए मैंगनीज (कि.ग्रा./हे.)	44.82		14.60–65.00	34.10		6.10 – 72.00
डीटीपीए कॉपर (कि.ग्रा./हे.)	1.64		0.10 – 8.10	9.90		0.10 – 67.90

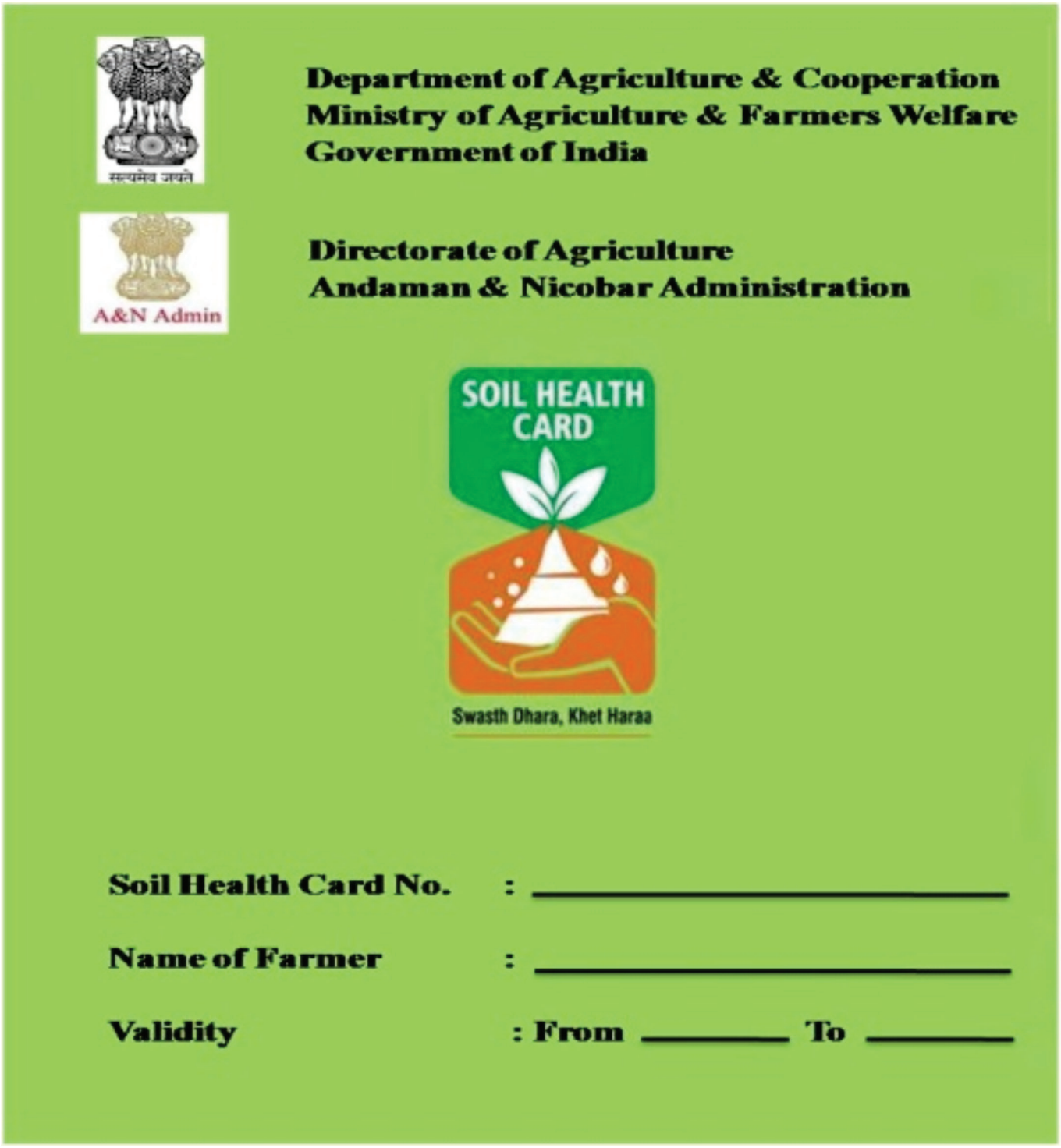

ISBN : 978-93-85418-36-5